प्रकाशक—श्री महावीर ग्रंथ अकादमी प्रतियां ११००
८६७, अमृत कलश, बरकत नगर
किसान मार्ग, टोंक फाटक, जयपुर।
मुद्रक—मनोज प्रिन्टर्स
७६६, गोदीको का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर
फोन ६७९६७

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी-प्रगति चर्चा

श्री महावीर ग्रथ अकादमी की स्थापना का उद्देश्य सम्पूर्ण हिन्दी एव राजस्थानी जैन साहित्य के प्रतिनिधि कवियो के व्यक्तित्व एव कृतित्व के मूल्याकन के साथ उनकी विशिष्ट कृतियो को २० भागो मे प्रकाशित करना है। इसके अतिरिक्त शोधार्थियो को दिशा निर्देशन एव युवा विद्वानो को जैन साहित्य पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना रहा है। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि दोनो ही दिशाओ मे वह निरन्तर आगे बढ रही है। अकादमी द्वारा प्रस्तुत पुष्प सहित ९ पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं तथा १० वें पुष्प की तैयारी चल रही है। इस तरह अकादमी अपने उद्देश्य मे ५० प्रतिशत सफलता प्राप्त करने की दिशा मे प्रयत्नशील है। इसी तरह अमृत कलश स्थित अकादमी कार्यालय मे शोधार्थी विद्वानों का बराबर आगमन होता रहता है।

अकादमी द्वारा प्रकाशित आठवें भाग में मुनि सभाचन्द एव उनके हिन्दी पद्मपुराण को अविकल रूप मे प्रकाशित किया गया था। इस प्रकाशन के पूर्व कवि एव उनकी रचना पद्मपुराण दोनो ही हिन्दी जगत् के लिये अज्ञात एव अचर्चित थे। पद्मपुराण हिन्दी का बेजोड काव्य ग्रन्थ है जो सीधी सादी एव सरल भाषा मे सवत् १७११ मे लिखा गया था। यह महाकवि तुलसीदास की रामायण के समान जैन रामायण है। जो दोहा, चौपाई, सोरठा एव अडिल्ल छन्दो मे निबद्ध है। इस प्रकार मुनि सभाचन्द की इस रचना की खोज, सम्पादन एव प्रकाशन का समस्त कार्य अकादमी द्वारा किया गया। इसके पूर्व के भागों में भी बाई अजीतमति, कवि धनपाल, भ महेन्द्रकीर्ति, सागु, बुलाखीचन्द, गारवदास, चतुरूमल एव ब्रह्म यशोधर जैसे अज्ञात एव अचर्चित कवियो को प्रकाश मे लाने का श्रेय अकादमी को जाता है। महाकवि ब्रह्म जिनदास का सागोपाग वर्णन अकादमी के तृतीय भाग मे प्रकाशित हो चुका है। मुझे तो यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि अकादमी के इन सभी प्रकाशनो मे आये हुए कवियो पर अब विश्वविद्यालयो में शोध प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं जो अकादमी के उद्देश्य की महती सफलता है।

प्रस्तुत भाग में कविवर बुधजन के जीवन, व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। डा. मूलचन्द शास्त्री ने अपनी पी.एच.डी उपाधि के लिये बुधजन कवि को लिया और कवि के व्यक्तित्व पर विशद प्रकाश डालते हुए उसकी कृतियो का जो मूल्याकन किया है वह नि सन्देह प्रशसनीय है। उज्जैन मे प. सत्यन्धर कुमार जी सेठी द्वारा आयोजित सेमिनार में जब शोध प्रबन्धों के प्रकाशन की चर्चा आयी और डा मूलचन्द जी ने अपने शोध निबन्ध के प्रकाशन की आवश्यकता बतलायी उस

समय हिन्दी कवि पर शोध प्रबन्ध लिखा होने के कारण मैंने तत्काल उसे अकादमी द्वारा प्रकाशित करने का प्रस्ताव रखा जिसका सभी ने समर्थन किया। शोध प्रबन्ध के प्रकाशन मे थोडा विलम्ब अवश्य हो गया लेकिन अकादमी के प्रकाशनो का कार्यक्रम बन चुका था इसलिये उसे तत्काल हाथ मे लेना सभव नही था। फिर भी अकादमी द्वारा शोध प्रबन्ध को नवम पुष्प के रूप मे प्रकाशित करते हुए हमे प्रसन्नता है।

अकादमी के १०वें भाग मे १८वीं शताब्दि के पांच कवियो को चुना गया है। इनमे टीकम, नेमिचन्द, खुशालचन्द काला, किशनसिंह, एव जोधराज गोदीका जैसे कवियो का विस्तृत परिचय एव मूल्याकन रहेगा। ये सभी कवि साहित्य गगन के जगमगाते सितारे हैं।

प्रस्तुत नवम भाग के प्रकाशन मे दि जैन महासभा के अध्यक्ष माननीय श्री निर्मलकुमार जी सा. सेठी एव श्री हुकमीचन्द जी सा. सरावगी ने जो आर्थिक सहयोग देने का आश्वासन दिया है, अकादमी उसके लिये दोनो ही महानुभावो की आभारी है। सेठी सा. की अकादमी पर असीम कृपा है और वे अपने भाषणो एव साहित्यिक चर्चा के प्रसग मे अकादमी के कार्यों की प्रशसा करते रहते हैं।

नये सदस्यो का स्वागत

अष्टम भाग के पश्चात् जिन महानुभावो ने अकादमी की सदस्यता स्वीकार की है उनमे श्री ब्रिजेन्द्र कुमार जी सा. जैन सर्राफ देहली एव श्री राजेन्द्रकुमार जी ठोलिया जौहरी जयपुर के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। श्री ब्रिजेन्द्र कुमार जी देहली के लाल मन्दिर के प्रमुख पदाधिकारी हैं। वे अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति एव सरल स्वभावी हैं। समाज सेवा की बात उन्हे अपने पिताजी रघुवीरसिंह जी से प्राप्त हुई है। साहित्यिक कार्यों मे आपकी विशेष रुचि रहती है।

इसी तरह श्री राजेन्द्र कुमार जी ठोलिया जयपुर के प्रसिद्ध बन्जी ठोलिया परिवार मे जन्मे युवा समाज सेवी हैं। आप अत्यधिक विनम्र, मधुर भाषी एव सरल स्वभावी हैं। अकादमी के नये उपाध्यक्ष के रूप में हम आप दोनो का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। अन्य सदस्यो मे सर्व श्री निहालचन्द जी कासलीवाल बम्बई, कस्तूरचन्द जी सर्राफ कोटा, ज्ञानचन्द जी भवरलाल जी सर्राफ कोटा, प्रकाशचन्द जी शान्ति लाल जी जैन सर्राफ कोटा, विजयकुमार जी पाड्या कोटा, रिखबचन्द जी जैन कानपुर, मांगीलाल जी पहाडे हैदराबाद, एव श्री सुमेरचन्द जी पाटनी लखनऊ के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीमती चमेली देवी कोठिया धर्मपत्नी डा० दरबारी लाल जी कोठिया का निधन अकादमी परिवार की गहरी क्षति है। श्रीमती कोठिया अकादमी के उपाध्यक्ष पद पर थी तथा अकादमी की साहित्यिक कार्यों के प्रति गहरी रुचि रखती थी। आपने अकादमी को सर्व प्रथम सदस्य और फिर उपाध्यक्ष के पद की स्वीकृति

अपनी अन्त प्रेरणा से दी थी। एक महिला के मन मे साहित्य के प्रति इतनी लगन एव आर्थिक सहयोग एक अनुकरणीय उदाहरण है। उनके निधन से हमे गहरी वेदना हुई है। उनकी आत्मा को शाति लाभ की कामना करते हैं। आदरणीय डा. कोठिया सा से अकादमी पर अपना पूर्ववत स्नेह एव वरद हस्त रखने का अनुरोध करते हैं।

अमृत कलश मे विद्वानो का आगमन

अमृत कलश स्थित अकादमी कार्यालय मे समाज एव देश के विशिष्ट महानुभावो एव विद्वानो का आगमन होता रहता है। जिनके पधारने से हमे भी कार्य करने की प्रेरणा मिलती रहती है तथा वे अपने सुझावो से हमे लाभान्वित करते हैं। ऐसे महानुभावो मे प विमल कुमार जी जैन सौंरया सम्पादक वीतरागवाणी, राजकुमार जी सेठी प्रकाशन मत्री, दि जैन महासभा, जवाहर तरुण एव डा. अनिल कुमार जैन अ कलेश्वर, डा जगदीश प्रसाद शर्मा हवाई विश्वविद्यालय होनालूलू। डा इन्दुराय लखनऊ, डा. भागचन्द भास्कर नागपुर एव श्री अश्विनी कुमार जयपुर के नाम उल्लेखनीय हैं। हम अमृत कलश मे पधारने के लिये सभी महानुभावो के आभारी हैं।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रस्तावना

किसी भी देश के साहित्य का जन्म शून्य मे नही होता। लेखक अपने युग जीवन, परिस्थितियो से सदा प्रभावित होकर युगधर्मी साहित्य की रचना करता है, किन्तु कुछ ऐसे भी साहित्यकार होते हैं जो तात्कालिक युग, समाज तथा राजनैतिक परिस्थितियो से प्रभावापन्न होकर भी शाश्वत, चिरतन सत्य का ही अकन साहित्य मे करते हैं। लोकोपकार से भी अधिक आत्मपरितोष की भावना उनमे अन्तर्निहित रहती है। कविवर बुधजन एक ऐसे ही सत परम्परा के कवि थे, जो ज्ञानरूपी राम की अन्तर्छवि का अन्तर्दर्शन कराना चाहते थे।

कविवर जिस युग मे उत्पन्न हुए थे वह अठारहवी शताब्दी का महत्त्वपूर्ण भाग था। इस समय तक महाराजा सवाई पृथ्वीसिहजी राजस्थान के प्रमुख नगर जयपुर मे भली–भाति राज्य–सिहासन पर आरूढ हो चुके थे। उनके कुछ समय पश्चात् ही महाराजा सवाई प्रतापसिह विद्या-रसिक नरेश हुए। उन्होने अमृतसागर, शतकत्रय मजरी और वृजनिधि ग्रथावली आदि कई ग्रन्थो की रचना की। उनके अनन्तर महाराजा सवाई जगतसिह हुए। उनके स्वर्गवास के अनन्तर महाराजा सवाई जयसिह (तृतीय) राज्य गद्दी पर आरूढ हुए। उनका शासन काल वि० स० १८७५ पौषवदी ६ से १८९२ माह सुदी चतुर्थी तक माना जाता है। इनके ही शासनकाल मे कविवर बुधजन ने अनेक रचनाओ का प्रणयन किया। स्वय कवि ने अपनी रचनाओ मे सवाई जयसिह (तृतीय) तथा महाराजा रामसिह (द्वितीय) का नामोल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट है कि कवि ने इन दो नरेशो का शासनकाल अपने जीवन मे देखा था।

यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से यह शान्ति-पूर्ण काल नही रहा, क्योकि महाराजा सवाई जयसिह के समय मे काबुलियो ने उपद्रव किये थे, किन्तु कुल मिलाकर आलोच्यकाल मे शान्ति रही। शासन में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। जयपुर नगर को वसाने का श्रेय महाराजा सवाई जयसिह (द्वितीय) को है।

कवि की आलोच्यमान कृतियो के आधार पर यह अनुमानित किया गया है कि उनका जन्म वि० स० १८२० के लगभग एव मृत्यु वि० स० १८९५ के पश्चात् हुई होगी। प्राप्त प्रमाणो के आधार पर यह निश्चित है कि इनकी प्रथम कृति का रचनाकाल वि० स० १८३५ है। अत यदि कवि ने १५ वर्ष की अवस्था मे रचना प्रारभ की हो तो भी उनका जन्म वि० स० १८२० ठहरता है। इसी प्रकार उनकी अतिम कृति "योगसार" भाषा का रचनाकाल वि० स० १८९५ है। अत उस समय

तक वे जीवित थे। उसके वाद ही उनकी मृत्यु हुई होगी। अत मृत्यु तिथि वि० स० १८९५ अनुमानित है। यह कवि की निम्नतम समय-सीमा है। अधिक से अधिक वि० स० १८१५ से लेकर १९०० तक कवि का समय माना जा सकता है। क्योकि उक्त समय (१८३५–१८९५) कवि का रचनाकाल है।

कविवर वुधजन तथा उनकी परपरा मे कई हिन्दी लेखको तथा कवियो की लम्वी परपरा प्रकाशमान होती है। जैन कवियो मे प० दौलतराम, चैनसुख, जैतराम, पारसदास, जवाहरलाल, जयचद, प० महाचद और प० टोडरमल आदि के नाम इतिहास का विवरण प्रस्तुत करने वाले आलेखो मे अ कित है, किन्तु कविवर वुधजन का नाम इस प्रकार की सूचियो मे नहीं मिलता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि १९वी शताब्दी के प्रारभ मे जव ये आलेख प्रस्तुत किये गये, तव तक हिन्दी नई चाल मे ढल चुकी थी और इस परपरा को विकसित करने वाले कवि अपनी साहित्यिक साधना से जन-मानस तक नही पहुच सके थे। फिर अठारहवी शताव्दी में आध्यात्मिक चेतना को लेकर भैया भगवतीदास, प० भागचन्द, द्यानतराय भूधरदास, दौलतराम (द्वितीय) तथा चेतन कवि आदि अनेक जैन साहित्यकारो की एक दीर्घ परपरा ही विलासमान होती रही। इस युग के अधिकतर जैन कवि अध्यात्म के रग मे रगे हुए लक्षित होते हैं। अतः "कविवर वुधजन" भी उससे अछूते नही रहे। उनका मुख्य विवेच्य विषय ही तत्वार्थ या अध्यात्म है।

यद्यपि अद्यावधि सकलित जानकारी तथा प्रकाशित सूचियो के अनुसार कविवर वुधजन की रची हुई १४ रचनाए ही उपलब्ध हो सकी हैं जिनकी सूची इस प्रकार है :—

(१) नदीश्वर जयमाला (वि० स० १८३५)
(२) विमल जिनेश्वर की स्तुति (वि० सं० १८५०)
(३) वन्दना जखडी (वि० सं० १८५५)
(४) छहढाला (वि० स० १८५९)
(५) वुधजन-विलास (वि० स० १८६०)
(६) दोषवावनी (वि० स० १८६६)
(७) जिनोपकार स्मरण स्त्रोत (वि० स०)
(८) इष्ट–छत्तीसी
(९) वुधजन सतसई (वि० स० १८७९)
(१०) तत्वार्थ बोध (वि० स० १८७९)
(११) पद सग्रह (वि० स० १८००-९१)
(स्फुटपद)
(१२) पचास्तिकाय भाषा (वि० स० १८९२)
(१३) वर्द्धमान पुराण सूचनिका (वि० स० १८९५)
(१४) योगसार भाषा (वि० स० १८९५)

मृत्यु महोत्सव, चर्चाशतक, सरस्वती पूजा और भक्तामर स्तोत्रोत्पत्तिकथा इन रचनाओ के नामो का उल्लेख भी मिलता है। इन रचनाओ मे से मृत्यु महोत्सव और चर्चा शतक नाम की कोई पृथक् रचना आज तक लेखक के देखने मे नही आई। कई जैनग्रन्थ भडारो का निरीक्षण करने पर भी यह निश्चित नही हो सका कि इस नाम से कोई स्वतत्र रचना कविवर द्वारा रचित है। डा० कामताप्रसाद जैन, डा० नेमिचन्द्र शास्त्री तथा प० परमानन्द शास्त्री ने कवि की जिन रचनाओ का उल्लेख किया है उनमे भी उक्त रचनाओ का उल्लेख नहीं किया गया है। हमारे विचार मे मृत्यु महोत्सव तथा चर्चाशतक पद सग्रह (स्फुट पद) के ही अ श प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार सरस्वती पूजा का समावेश "बुधजन विलास" मे लक्षित होता है। अब केवल भक्तामर स्तोत्रोत्पत्ति कथा ही रह जाती है। वास्तव मे राजस्थान के जैन ग्रन्थ भडारो की सूची मे भूल से इस रचना का नाम मुद्रित हो गया है या फिर यह किसी अन्य कवि की ही रचना है।

उक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कवि की १३ मौलिक व १ अनूदित रचना है। प० परमानन्दजी शास्त्री ने तत्त्वार्थबोध को तत्वार्थसूत्र के विषय का पल्लवित अनुवाद माना है। परन्तु नाम सादृश्य या विषय सादृश्य के आधार पर न तो हम उसे तत्वार्थ सूत्र का ही अनुवाद कह सकते हैं और न गोम्मटसार का, क्योकि इसमे जैन धर्म तथा सिद्धान्तो के आधार पर मुख्य रूप से सात तत्वो का तथा अ गभूत विषयो के रूप में लगभग एक सौ विषयो का वर्णन किया गया है। हा, यह अवश्य कहा जा सकता है कि रचनाकार की मुख्य शैली आचार्य उमास्वामी के तत्वार्थ सूत्र का अनुवर्तन करती है।

आलोच्य कवि मूल मे सत परपरा के कवि थे। मध्यकालीन हिन्दी-सत-कवियो की भाति कविवर बुधजन ने भी ज्ञानधारा मे डूबकर निर्गुण, निरजन, निराकार परमात्मा की विविध अनुभूतिमयी भाव छवियो का वर्णन किया है। एक सत कवि की भाति गुरु का महत्व भी उन्होने गाया हैं। वे कहते है कि गुरु ने ही हमे ज्ञान-प्याला पिलाया है। मैं आज तक ज्ञानामृत का रसास्वादन नही कर पाया था; पर भावो के रस मे ही मतवाला था। अत परमात्मा की सुध-बुध नही थी। किन्तु गुरु कृपा से ज्ञानाभृत का पान करते ही मैं उस ज्ञानानन्द को उपलब्ध हो गया हू और इतना थक गया हू कि क्षणभर मे ही समस्त जजाल (सकल्प-विकल्प) मिट गये हैं। अब मैं ध्यान मे मग्न होकर अद्‌भुत आनन्द–रस मे केलि कर रहा हूं।

कविवर ने स्थान-स्थान पर स्वात्मानुभूति तथा अनत गुणज्ञान से भरपूर परमात्मा–राम का स्मरण किया है। वे यह भी कहते हैं कि मेरा सांई मुझ मे ही है। वह मुझ से भिन्न नही है। जो उसे जानने वाला है, वही जानता है। वह अनत दर्शन, अनतज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तशक्ति का धारक है, वह ज्ञायक है।

जिस प्रकार अखड द्रव्य अपने गुणो से और पर्यायो से युक्त है। गधकुटी मे जैने सर्वज्ञदेव शोभायमान होते है वैसे ही एक अखड चिदानन्द-चैतन्य स्वरूप, विज्ञान-घन-स्वभावी मेरा परमात्मा मुझ में विलसित है। इतना ही नही, कविवर ने भरम का विनाश करने के लिये और तत्व को प्रकाशित करने के लिये जिनवर के चरणो की शरण ग्रहण की है और उनके ही प्रसाद से अपने आपको ज्ञायक माना है तथा परको व शरीरादि को जड जाना है। स्व-सवेदनगम्य, ब्रह्मानुभूति स्वरूप, आत्मानुभव का वर्णन करता हुआ कवि कहता है आज निजपुर मे (आत्मा मे) होली मची है। आनन्द से उमगकर सुमति रूपी गोरी (जीवात्मा) चिदानन्द परमात्मा के आने का उत्सव मना रही है। आज सभी प्रकार की लोकलाज को छोडकर ज्ञानरूपी गुलाल से अपनी झोली भरकर होली खेलने के लिये सम्यकत्वरूपी केशर का रग घोलकर चारित्ररूपी पिचकारी छोड रही है। तत्क्षण ही अजपा–गान होने लगा और अनहद नाद की झडी लग गई। कविवर वुधजन कहते हैं कि स्वय उस आनन्द धारा मे निमज्जित होकर अलौकिकता का वेदन करने लगा हू।

हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास मे जैन साहित्यकारो ने पर्याप्त-योगदान दिया है। उन्होने हिन्दी साहित्य को सदा आध्यात्मिक, साहित्यिक, सामाजिक एव नैतिक पृष्ठभूमि मे प्रतिष्ठित किया है। उनके साहित्य ने अज्ञानान्धकार मे भ्रमित-प्राणियो का दिशा निर्देशन कर ज्ञान आलोक प्रदान किया। हिन्दी के मूर्द्धन्य जैन कवियो मे सरलता से वुधजन का नाम लिया जा सकता है। सरलता और सादगी, सतत अध्यवसाय और चिंतन उनके जीवन के अभिन्न अ ग थे। उनकी रचनाओ मे भी हम सरलता (प्रसाद गुण) और भव्यता की झाकी देख सकते हैं। इस प्रतिभा शाली साहित्यकार के विषय मे डा० नेमिचद्रजी ज्योतिषाचार्य, आरा, डा० कस्तूर चन्दजी कासलीवाल, जयपुर, डा० राजकुमारजी जैन, आगरा, डा० रामस्वरूप आदि ने कविवर वुधजन के सम्बन्ध मे प्रकरणवश सक्षेप मे प्रकाश डाला है किन्तु उनके विवेचन से कविवर वुधजन की महत्ता एव रचना कौशल का हिन्दी जगत को यथावत परिज्ञान नही हो सका।

महापडित राहुल साकृत्यायन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा. हीरालाल जैन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि विद्वानो के शोधपूर्ण लेखो के परिणाम स्वरूप एव उनकी इस स्वीकारोक्ति के कारण कि "हिन्दी साहित्य का इतिहास जैन साहित्य के अध्ययन मनन के विना अपूर्ण एव पगु ही रहेगा," आज भी मनन, चिंतन के लिये प्रेरणाप्रद है।

हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने पर एक बात सदा मन को कचोटती रही कि अनेक जैन कवियो एव साहित्यकारो ने सोलहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी तक हिन्दी साहित्य की पर्याप्त सेवा की, तथापि उनकी रचनाओ को साम्प्रदायिक कहकर साहित्य की कोटि मे नही लिया गया। इसका विवेचन तथा विश्लेषण करना

मेरी अन्न प्रेरणा का स्रोत रहा है। मेरी हार्दिक इच्छा विगत कई वर्षों से थी कि मैं कुछ कार्य करूं, परन्तु ऐसा करने का सिलसिला तब तक जम न सका। सौभाग्य से इन्दौर में साक्षात्कार होने पर आदरणीय डा० देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री, नीमच ने मेरा उत्साह बढाया एव प्रेरित भी किया एवं श्रद्धेय गुरुवर्य पं. नाथूलाल जी शास्त्री, सहितासूरि इन्दौर ने मुझे शुभाशीर्वाद दिया।

उक्त शोध प्रबध मे डा० देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री ने मुझे जितना सभाला है, उनके प्रति कृतज्ञता करना धृष्टतामात्र होगी। उनके पवित्र निर्देशन मे यह शोध कार्य पूर्ण हुआ है। वे नि.संदेह एक आदर्श निर्देशक हैं। यदि डाक्टर साहब की प्रेरणा एव निर्देशन प्राप्त न होता तो मैं भी ढूढारी (राजस्थानी) लोकभाषा के माध्यम से विक्रम की १९ वी शताब्दी मे हिन्दी साहित्य की सेवा करने वाले अनेक ग्रथो के रचयिता कविवर बुधजन के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर शोधकार्य करने को उद्यत न हुआ होता।

प्रस्तुत शोध-प्रबध मे कविवर बुधजन की प्राप्त सभी रचनाओ और उनकी जीवनी का अध्ययन एवं मथन करने का प्रयत्न किया गया है। कवि की जीवनी एव रचनाओ मे मौलिक तत्वो की गवेषणा के साथ विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक एव धार्मिक प्रभावो को स्पष्ट करना रहा हैं। अन्तर्साक्ष्य और वहिर्साक्ष्य के आधार पर कवि का काल निर्णय किया गया है।

आज का हिन्दी सेवी ससार जैन हिन्दी पदकारों की अध्यात्म रसमयी काव्य धाराओ मे अवगाहन कर ब्रह्मानद सहोदरी रसानुभूति करे और इस उपेक्षित धारा का भी भारती माता के मदिर में यथोचित समादर प्राप्त हो, मुख्यत. हमारी यही दृष्टि है।

कविवर बुधजन की रचनाओ मे उनका जीवन त्यागमय, सयत, अध्यात्मपरक एव मानवैक्य से ओतप्रोत परिलक्षित होता है। उनकी उज्जवल रचनाए उनके हृदय की उज्जवलता का आभास देती है। उनकी रचनाओ के अध्ययन से स्पष्ट है कि पर्याप्त अध्ययन-मनन के बाद ही लिखी गई हैं।

कवि की अध्यात्म प्रधान रचनाए जनहित के शाश्वत पाथेय होने के कारण वर्तमान मे तथा भावी पीढ़ी के लिये भी सदैव एक आदर्श प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेंगी। वे बहुश्रुत विद्वान् थे। वे अपनी विद्वत्ता एव रचना चातुर्य के कारण हिन्दी के साहित्य-जगत् में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनका नाम हिन्दी साहित्य जगत् में सभवत इसलिये प्रसिद्ध नही हो सका क्योकि उनकी अधिकाश रचनाए अप्रकाशित थी। उन्होने अपनी रचनाओ के लिये तत्कालीन लोक भाषा ढूढारी (राजस्थानी) को चुना था जो उस समय जयपुर क्षेत्र की लोक भाषा थी।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय मे ऐतिहासिक, राजनैतिक एव तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो के साथ-साथ साहित्यिक गतिविधियो पर विचार किया

गया है। द्वितीय अध्याय मे अन्तः बाह्य प्रमाणो से पुष्ट कवि की जीवनी प्रस्तुत की गई है एव कवि की समस्त रचनाओ की प्रामाणिकता की चर्चा की गई है।

तृतीय अध्याय मे कृतियो का भाषा विषयक एव साहित्यिक अध्ययन एव वस्तु पक्षीय विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे हिन्दी साहित्य के विकास मे बुधजन का योगदान हिन्दी के कतिपय कवियो की रचनाओ से उनकी रचनाओ की तुलना एव उनकी भक्ति भावना पर विचार प्रकट किये गये हैं।

शोध के समय न तो कवि का प्रामाणिक चित्र ही उपलब्ध हुआ और न उनकी मृत्यु की निश्चित तिथि ही उपलब्ध हुई। उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध मे भी विशेष जानकारी उपलब्ध न हो सकी। लेकिन कविवर बनारसीदास एव प० टोडरमलजी के समान कवि का जीवन अन्तर्द्वन्दमय नही रहा। वे एक साधारण धार्मिक प्रकृति के सद्गृहस्थ व्यक्ति थे। बनारसीदासजी एव टोडरमलजी की तुलना मे उनकी रचनाओ मे अध्यात्म का विस्तृत विवेचन नही है, परन्तु भाव की व्यजना अवश्य सघन है, जिससे कविवर के व्यक्तित्व का सहज मे ही आकलन किया जा सकता है।

कविवर बुधजन की रचनाओ के लगभग २८० पृष्ठो का अध्ययन कर लिया गया है। उनका साहित्यिक जीवन विक्रम सवत् १८२० से १८९५ तक का उन्ही की कृतियो के आधार पर निश्चित होता है। ७५ वर्ष के अपने साहित्यिक जीवन मे उन्होने लगभग १४ रचनाओ का सृजन किया जो एक महान् उपलब्धि है। प्रस्तुत शोध प्रबध मे कवि का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व, साहित्यिक कृतित्व एव उनकी प्रतिनिधि रचनाओ पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी साहित्य मे उनके स्थान को मूल्याकन करने का प्रयत्न रहा है।

कवि के समस्त साहित्य का अनुशीलन करने के पश्चात् हम देखते हैं कि उनका समस्त साहित्य पद्यमय है एव देशी भाषा मे है। विविध रचनाओ के अवलोकन से यह भी स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उनका प्रतिपाद्य मुख्यत आध्यात्मिक विवेचन है। उनके मौलिक ग्रन्थ उनके अनुभवो तथा तत्वचिंतन को प्रतिफलित करते हैं। उनके टीका ग्रन्थ भी मात्र अनुवाद नही हैं, उनका चितन वहा भी जाग्रत है।

डा. मूलचन्द शास्त्री

३३० भवानी रोड
सनावद

प्रधान सम्पादक की कलम से

हिन्दी भाषा के विकास मे जैनाचार्यों, सन्तो एव कवियो का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। जैन कवियो ने पहिले अपभ्र श के रूप मे और फिर हिन्दी के रूप मे ८ वीं शताब्दि से ही रचनायें लिखना आरम्भ कर दिया था। राजस्थान के जैन ग्रथागारो मे उनके द्वारा निबद्ध हिन्दी ग्रथो की हजारो पाण्डुलिपियो के आज भी दर्शन किये जा सकते हैं। लेकिन हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उनकी सबसे अधिक उपेक्षा हुई और आज भी उनको उतना स्थान नही मिल रहा है जितने स्थान की ये रचनाए अधिकारी हैं।

श्री महावीर ग्रथ अकादमी की स्थापना समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों मे प्रकाशित करके उन्हें हिन्दी जगत् के समक्ष प्रस्तुत करने के उद्देश्य से की गयी है। यद्यपि २० भागो मे समस्त हिन्दी कवियो एव उनकी कृतियो को समेटना कठिन है फिर भी हिन्दी के प्रतिनिधि जैन कवियो का परिचय, मूल्याकन एव उनके काव्यो के मूलपाठ प्रकाशित किये जा सकेंगे ऐसा हमारा दृढ विश्वास है।

बुधजन ऐसे ही कवि हैं जिनके नाम से तो हम परिचित हैं। कभी-कभी उनके द्वारा रचित पदो को भी गाकर अथवा सुनकर हर्षित होते हैं लेकिन कवि के जीवन से एव उसकी दूसरी कृतियो से हम प्राय अपरिचित हैं। डा० मूलचन्द शास्त्री ने ऐसे कवि पर शोध कार्य करके अकादमी के कार्य को हल्का कर दिया है। जिसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं।

बुधजन जयपुर नगर के कवि थे। वे महापडित टोडरमल एवं दौलतराम कासलीवाल के बाद मे होने वाले कवि हैं। उनके समकालीन कवियो मे प जयचन्द छाबडा, ऋषभदास निगोत्या, प. केशरीसिह, जोधराज कासलीवाल, पं. उदयचन्द, प सदासुख कासलीवाल, प मन्नालाल पाटनी, नेमिचन्द, नन्दलाल छाबडा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी कवि जयपुर नगर के थे। जयपुर के बाहर राजस्थान, आगरा, देहली आदि मे और भी कवि हुए हैं। लेकिन उनमे से किसी भी कवि ने बुधजन के बारे मे कुछ नही लिखा। स्वय बुधजन भी प. जयचन्द छाबडा; मन्नालाल पाटनी, नेमिचन्द के अतिरिक्त अपने दूसरे साथियो के बारे मे मौन ही रहे।

कवि का पूरा नाम वृद्धीचन्द, वधीचन्द अथवा भदीचन्द था। बुधजन तो उन्होंने काव्यो मे लिखने, पदो मे लिखने के लिये रख लिया था। ये बज गोत्रीय खण्डेलवाल जाति के श्रावक थे। इनके पूर्वज पहिले आमेर मे फिर सागानेर मे और

अन्त मे जयपुर आकर रहने लगे थे। उनके पिता का नाम निहालचन्द था। वे सोभाचन्द के पौत्र एव पूरणमल के पुत्र थे। उन्ही के वश मे होने वाले प्रोफेसर नवीन कुमार जी वज ने जो अपनी वशावली दी है वह पूरी की पूरी अलग से दे दी गयी है।

कवि का जन्म, लालन पालन, शिक्षा दीक्षा, आदि के बारे मे कोई उल्लेख नही मिलता। आज भी जैसे हम हमारे इतिहास को कोई महत्त्व नही देते वैसे उस युग मे हमारे पूर्वजो की यही भावना रही होगी। कवि ने अपनी प्रथम कृति सवत् १८३५ मे निबद्ध की थी। डा शास्त्री ने कवि का समय सवत् १८२० से १८९५ तक का माना है। इसलिये जब वे १५ वर्ष के थे तभी उन्होने लिखना प्रारम्भ कर दिया जो उनकी प्रखर बुद्धि का परिचायक है। कवि ६० वर्ष तक अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षण तक जिनवाणी की सेवा मे लगे रहे और एक के पश्चात् दूसरे ग्रंथ का निर्माण करते रहे। वे स्वय सगीतज्ञ थे इसलिये उन्होने सैकडो पदो की रचना की थी।

बुधजन राज्य सेवा मे थे अथवा व्यापार आदि करते रहे इसका भी कही उल्लेख नही मिलता लेकिन उस समय भी जयपुर के अधिकाश जैन बन्धु राज्य सेवा मे रहते थे इसलिये कवि भी किसी न किसी पद पर कार्य करते होगे। तत्कालीन दीवान अमरचन्दजी का उनसे विशेष स्नेह था इसलिये यह भी सभव है कि कवि दीवान अमरचन्द जी के यहा कार्य करते होगे। पचास्तिकाय भाषा मे उन्होने दीवान अमर चन्द का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

सगही अमर चन्द दीवान, मोकू नही दयावर आन।
पचास्तिकाय की भाषा रचो, तो अघ हरो धर्म विस्तरो ॥५७८॥

कवि ने अपने जीवन काल मे पाच राजाओ का राज्य देखा था। वे उस समय पैदा हुये थे जब जयपुर जैन समाज एक ओर राज्य के भय से आतकित था। शैव एव जैनो के झगडे, मन्दिरो की लूटपाट प्राय आम बात थी। दूसरी ओर तेरहपथ बीस पथ के झगडो ने समाज को दो भागो मे विभक्त कर दिया था। समाज मे एक ओर महापडित टोडरमल जैसे तेरहपथी विद्वान् थे तो दूसरी ओर सुरेन्द्र कीर्ति भट्टारक एव उनके समर्थक प बख्तराम शाह जैसे बीसपथ का प्रचार कर रहे थे। लेकिन जब वे वयस्क हुये होगे तब सभी ओर शान्ती थी। अशान्त वातावरण से उन्हे जूझना नही पडा। स्वय कवि तेरहपथी थे लेकिन उन्होने अपनी कृतियो मे किसी पथ का समर्थन नही किया क्योकि वे दोनो ही समाजो मे लोकप्रिय थे।

बुधजन साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे। काव्य रचना उनके स्वभाव मे समा गया था। एक ओर वे भक्त कवि के रूप मे अपने आपको प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर आत्मा की ऊँची उडान भरते हैं। उनकी प्रमुख रचनाओ में छहढाला,

बुधजन सतसई, योगसार भाषा, पचास्तिकाय भाषा एव ढेर सारे पद है जिनमे कवि ने अपनी आत्मा ऊडेल कर रख दी है। हमने अभी तक बुधजन के महत्त्व को स्वीकारा ही नही। वे अत्यधिक सरल हृदय कवि थे। अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर उन्होने जो कुछ लिखा है वह ऊचाइयो को छूने वाला है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे शोधकर्त्ता ने उनकी तुलना कबीर, तुलसी, वृन्द एव सूरदास से की है वह एक दम तथ्यपूर्ण हैं।

बुधजन १९ वी शताब्दि के प्रतिनिधि कवि थे। गद्य एव पद्य दोनो पर उनका समान अधिकार था। डा शास्त्री ने उनकी जितनी रचनाओ के नाम गिनाये हैं यदि राजस्थान के शास्त्र भण्डारो की गहन खोज की जावे तो इनमे और भी नाम जुड सकते हैं। कवि ने विलास, बावनी, छत्तीसी, पच्चीसी, शतक सज्ञक रचनायें लिखी और अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया। वे एव उनकी कृतिया इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त करने मे सफल हुई हैं कि रचना समाप्ति के कुछ समय पश्चात् ही उनकी प्रतिया अन्य शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत की जाने लगी। छहढाला की प्रति अपने निर्माण काल के कुछ ही महिनो पश्चात् तो टोडारायसिंह जैसे दूर नगर मे पहुच गयी। इसी तरह बुधजन विलास जैसी बडी एव महत्त्वपूर्ण कृति भी अपने निर्माण काल के कुछ ही महिनो मे तो भरतपुर, कामा एव अन्य नगरो मे प्रतिलिपि की जाकर पढी जाने लगी। इस प्रकार १५० वर्ष पूर्व समाज मे नयी-नयी कृतियो को पढने की कितनी इच्छा रहती थी यह इन घटनाओ से जाना जा सकता है।

डा० मूलचन्द जी ने कवि की कृतियो का भाषा, भाव एव शिल्प की दृष्टि से गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके लिये शास्त्री जी बधाई के पात्र हैं। वास्तव मे जैन कवियो की अधिकाश कृतिया काव्यगत सभी गुणो से आप्लावित रहती हैं। उनमे वे सभी गुण विद्यमान रहते हैं जो किसी भी अच्छी कृति मे होने चाहिये। अकादमी द्वारा प्रकाशित पिछले आठ पुष्पो मे जितनी कृतिया प्रस्तुत की गयी हैं वे सभी साहित्यिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कविवर बुधजन भी इस पक्ष मे खरे उतरे है।

राजस्थान विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के रीडर डा० शम्भूसिंह जी मनोहर ने प्रस्तुत पुस्तक पर अपने दो शब्द लिखे हैं इसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं। डा० मनोहर बहुत ही खोजी विद्वान् हैं तथा जैन साहित्य के योगदान की सदैव प्रशसा करते हैं। श्री नानगरामजी जैन जौहरी जयपुर ने जो अकादमी के सह सरक्षक हैं, दो शब्द लिखने की कृपा की है हम उनके भी पूर्ण आभारी है।

अन्त मे मैं उन सभी विद्वानों, शास्त्र भण्डारो के व्यवस्थापको एवं प्रोफेसर नवीन कुमार जी बज का आभारी हू जिन्होंने कविवर बुधजन को प्रकाश मे लाने मे हमे पूर्ण सहयोग दिया है। नवीन कुमार जी हमारे कवि के वश मे हैं तथा राजस्थान विश्वविद्यालय मे कार्यरत हैं वे भी समाजशास्त्र के प्रवक्ता हैं। डा० मूलचन्द जी शास्त्री का भी मैं अत्यधिक आभारी हू जिन्होने अपना शोध प्रबन्ध अकादमी को प्रकाशनार्थ दिया। इस शोध प्रवन्ध मे छहढाला एव सतसई के पाठ नही थे वे हमने इसमे और जोड दिये जिससे पाठको के कवि मूल ग्रथो को भी पढने का अवसर प्राप्त हो। इस बार प्रूफ रीडिंग का अधिकाश कार्य श्री महेशचन्द्र जी जैन ने किया है इसलिये उनका भी मैं हृदय से आभारी हू।

अमृत कलश, बरकत नगर
जयपुर
५-७-८६

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रास्ताविक

विद्वद्वर डॉ. कस्तूरचदजी कासलीवाल के वैदुष्यपूर्ण निदेशन मे महावीर-ग्रंथ-अकादमी जयपुर द्वारा राजस्थान के जैन कवियो की अप्रकाशित रचनाओ की प्रकाशन शृ खला मे एक और नई और महत्वपूर्ण कडी जुडी है–'कविवर बुधजन. व्यक्तित्व और कृतित्व,' जिसके लेखक सम्पादक हैं–डॉ. मूलचन्दजी शास्त्री। डॉ. मूलचन्दजी का यह शोध प्रबध है, जिस पर विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन ने उन्हे पी एच डी की उपाधि से अलकृत किया है।

कविवर बुधजन १९वी शताब्दी के जैन कवि थे, जिन्होंने जयपुर के दो राजाओ–जयसिंह (तृतीय) और रामसिंह का राज्यकाल देखा था। जैसा कि जैन कवियो की परम्परा रही है, कविवर बुधजन ने भी अपने समय की प्रचलित जन-भाषा मे काव्य रचना की। वस्तुत इस अनूठी परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय भगवान् महावीर को है, जिन्होने अपनी जनपदीय भाषा में धर्मोपदेश कर यह सिद्ध कर दिया कि धर्म का बिरवा साहित्यिक भाषा के 'कूपजल' से नही, अपितु लोकगिरा के 'बहते नीर' से सिंचित होकर ही जन-जन के लिए फलदायी होता है। धर्म को लोक मानस मे प्रतिष्ठित करने तथा उसे लोक जीवन का अग बनाने के लिए लोक भाषा ही सर्वोत्तम माध्यम है। शास्त्रीय भाषा मे उपदिष्ट धर्मोपदेश यदि कल्पतरु है–धरती से ऊपर उठा हुआ। तो लोकभाषा में प्रचलित धर्म कल्पलता है। धरती पर प्रसरित, अत. सर्वसुलभ! कविवर बुधजन सहित राजस्थान के जैन कवियो ने लोक भाषा मे साहित्य 'रचना कर धर्म की इसी कल्पलता को सर्वसुलभ किया है। इस दृष्टि से, इन जैन कवियो ने न केवल जैन-धर्म की ही महती सेवा की, अपितु अपने समय की जनभाषा को साहित्य-सृजन का एक सशक्त माध्यम बनाकर राजस्थानी भाषा और साहित्य की समृद्धि मे भी स्तुत्य योगदान दिया है।

डा. मूलचन्दजी ने विवेच्य कृति मे इस अद्यावधि अज्ञात कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करते हुए एक अत्यन्त प्रामाणिक, गभीर एव विद्वत्तापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। विवेचन की इस प्रक्रिया मे विद्वान् लेखक ने अपने को एकान्तत' कवि की रचनाओ तक ही सीमित न रख, पृष्ठ भूमि के रूप मे, जैन कवियों की सुदीर्घ साहित्य-सेवा एव यशस्वी काव्य-परपरा पर भी प्रकाश डाला है, जिसके फलस्वरूप उसका यह शोध प्रबध भारतीय-वाङ्मय मे जैन-काव्य-धारा के महत्व का बोध कराने की दृष्टि से भी उपादेय हो गया है।

युग और परिस्थितिया शीर्षक प्रथम-खण्ड मे जैन कवियो के इसी ऐतिहासिक योगदान का सम्यक् मूल्याकन करते हुए लेखक ने तद्युगीन परिस्थितियो का

सारगर्भित विवेचन-विश्लेषण किया है। जीवन-परिचय खण्ड के अन्तर्गत लेखक ने कवि का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत करते हुए उसके व्यक्तित्व की बहुमुखी विशेषताओ को अत्यन्त चारुता के साथ उभारा है। कवि की निस्पृह वृत्ति, धार्मिक भावना, सात्विक जीवन-चर्या तथा पारमार्थिक साधना जहा उसके व्यक्तित्व को आध्यात्मिक महिमा से मडित करती है, वहा नि स्वार्थ भाव से प्रेरित उसका लोकोपकारी एव समाज सेवी रूप उसके व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष के प्रति हमारी श्रद्धा जगाते हैं। साथ ही, बुधजन एक कुशल गायक एव सरस्वती के अनन्य आराधक भी थे। डा. मूलचन्दजी ने कवि के व्यक्तित्व के इन्ही सब आयामो को अपनी अशेष महत्ता के साथ उजागर किया है।

प्रस्तुत कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग कवि-कृतित्व के परिचय तथा उसके मूल्याकन से सम्बद्ध है। लेखक ने कवि द्वारा प्रणीत सभी रचनाओ का, जो छोटी-बडी कुल मिलाकर १७ हैं, उनके रचनाक्रमानुसार परिचय देते हुए साहित्यिक दृष्टि से विशद् मूल्याकन किया है। इसके अन्तर्गत इन रचनाओ के भाषा, शिल्प व भावपक्षीय विश्लेषण के साथ-साथ उनका तुलनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध मे, विद्वान् लेखक ने काव्य के पारम्परिक प्रतिमानो के आधार पर कवि के रचना-वैशिष्ट्य का मूल्याकन करते हुए यत्र-तत्र अपनी मौलिक अन्तर्दृष्टि का भी परिचय दिया है। उदाहरणत. उसने साहित्य को व्यापक अर्थ मे ग्रहण किए जाने पर बल देते हुए यह सर्वथा उचित ही कहा है कि भारतीय मनीषा ने कभी भी साहित्य को सस्कृति से विच्छिन्न कर नही देखा है। अत सस्कृति के प्राण-भूत तत्व-धर्म और दर्शन को साहित्य से बहिर्गत नही किया जा सकता। यही कारण है कि हमारे प्राचीन साहित्य, विशेषत सत व भक्ति-साहित्य मे जीवन के पारमार्थिक लक्ष्य की प्राप्ति का सन्देश है, उच्चतम नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा है, जीवन के शाश्वत सत्यो का उद्घोष है। वह मात्र अनुरजनकारी साहित्य- नही, अपितु कालजयी चेतना का चिरन्तन आलेख है! हमारा कृत्स्न भक्ति-साहित्य ऐसा ही मूल्य धर्मी साहित्य है, जिसका सम्यक् महत्वाकन हमारे इसी सास्कृतिक सदर्भ एव आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य मे सभव है।

डा मूलचन्दजी शास्त्री ने साहित्य की इसी व्यापक अवधारणा के आधार पर कविवर बुधजन के कृतित्व का मूल्याकन कर उसे साहित्य के साथ-साथ धर्म और दर्शन की गौरवमयी पीठिका पर भी प्रतिष्ठित किया है, जो निश्चय ही अभिनद्य है।

आशा है, विद्वत् समाज, शारदा के निर्माल्य-रूप महावीर-ग्रन्थ-अकादमी के इस ९ वें पुष्प को अपनी अ जलि मे समोद धारण करेगा!

दि० १६-६-८६

शभुसिह मनोहर
एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी,
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

सह संरक्षक की कलम से

श्री महावीर ग्रथ अकादमी द्वारा प्रकाशित "कविवर बुधजन-व्यक्तित्व एव कृतित्व को पाठको के हाथो मे देते हुए हमे अतीव प्रसन्नता है। यह अकादमी का नवम पुष्प है। इसके पूर्व अकादमी द्वारा आठ पुष्प और प्रकाशित किये जा चुके हैं समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने की योजना के अन्तर्गत अकादमी निश्चित रूप से आगे वढ रही है जो अत्यधिक उत्साहवर्धक है। वास्तव मे किसी भी दिशा मे योजनावद्ध कार्य करना कठिन होता है लेकिन डा कस्तूरचन्द कासलीवाल का दृढ सकल्प एव साहित्य के प्रति अभिरूचि इस योजना की आधार शिला है। डा कासलीवाल जी को इस योजना मे समाज का प्राप्त सहयोग भी निश्चित रूप से उनके कार्य को सुगम बनाने वाला है। अकादमी द्वारा जैन हिन्दी साहित्य के २० भाग प्रकाशित हो जावेंगे तो हिन्दी जगत मे यह एक आश्चर्यजनक कार्य होगा। इसलिये हम उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जव हम हिन्दी जगत को यह अमूल्य भेंट कर सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक मे जिस कवि का परिचय दिया जा रहा है वे जयपुर के निवासी थे। उन्होंने इसी नगर मे रहते हुए काव्य रचना की थी और अपनी काव्य कृतियो से नगर वासियो को आध्यात्मिक एव भक्ति रस मे सरोबार कर दिया था। बुधजन कवि का "प्रभु पतित पावन मे अपावन चरण आयो शरण जी" जैसा भक्ति गीत आज भी लाखो जैन भाई-वहिनो को कठस्थ है और वे प्रतिदिन उसका पाठ करते हैं। उनके पचासों हिन्दी पद, छहढाला एव अन्य पाठ समाज मे अत्यधिक लोकप्रिय है इसलिये बुधजन कवि जो जन-जन के कवि हैं उनके कण्ठ से निकला हुआ प्रत्येक गीत एव काव्य पाठक के हृदय को छूने वाला होता है। उनकी कृतियो मे मे इतना आकर्षण है कि जो भी एक वार उन्हें पढ लेता है वह उन्ही मे डूव जाता है। डा मूलचन्द जी शास्त्री ने ऐसे जनप्रिय भक्त कवि एव आध्यात्मिक कवि पर शोध प्रवन्ध लिखकर प्रशसनीय कार्य किया है जिसके लिये वे वधाई के पात्र हैं।

अकादमी अपने उद्देश्य मे निरन्तर आगे बढती रहे इसके लिये समाज का सहयोग भी आवश्यक है। यद्यपि अभी तक का प्रकाशन कार्य मे उनका सहयोग मिला है लेकिन उसकी गति इतनी धीमी है कि एक भाग को निकालने मे काफी समय लग जाता है। हम चाहते हैं कि अकादमी की यह योजना सन् १६६० तक पूरी हो जावे। इसलिए मेरा समाज से यही अनुरोध है कि वह अकादमी के सदस्य बन कर इसकी प्रकाशन योजना को पूर्ण करने मे सहायक बनें। आशा है मेरे इस निवेदन पर समाज का ध्यान अवश्य जावेगा।

महावीर भवन
हास्पिटल रोड जयपुर

नानगराम जैन

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खंड-प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

विषयानुक्रमणिका — पृष्ठ सख्या

द्वितीय खंड

प्रथम अध्याय जीवन परिचय

द्वितीय खंड

(द्वितीय अध्याय)

तृतीय खंड

(प्रथम अध्याय)

तृतीय खंड

(द्वितीय अध्याय)

तृतीय खंड

(तृतीय अध्याय)

चतुर्थ खंड

(प्रथम अध्याय)

तुलनात्मक अध्ययन

पृष्ठ सख्या

प्रथम खण्ड

१—युग और परिस्थितियां

प्रथम अध्याय . पृष्ठभूमि

शताब्दियो तक समान रूप से व्याप्त रहने वाली मानवीय सभ्यता तथा सस्कृति का इतिहास प्राय लिपिबद्ध किया जाता रहा है। इतिहास की घटनाओ की समय-समय पर आवृत्ति होती रही है। सभ्यता तथा सस्कृति को मुखरित करने वाला साहित्य उसका प्रमुख माध्यम रहा है। साहित्य मे ऐसी घटनाओ का भी सजीव वर्णन उपलब्ध होता है, युग और परिस्थितियो का चित्रण मिलता है, जिनका उल्लेख इतिहास का विषय होने पर भी आज तक इतिहास के परिवेश के अन्तर्गत स्थान प्राप्त नही कर सका है। इसलिए हम केवल यही समझते रहे हैं कि इतिहास की पुस्तको मे जिनका विवरण नही मिलता, वे इतिहास से परे हैं। इतिहास की दृष्टि से उनकी चर्चा करना भी क्या अप्रयोजनीय है ?

युग-युगो मे उपलब्ध होने वाले सभी आलेखो के आधार पर व्यापक भारतीय सस्कृति का आलेखन नही हो सका है। इसीलिये वर्तमान मे भी नित नवीन अनुसधानो के द्वारा हमे समीचीन तथ्य उपलब्ध होते हैं, जो प्राय ऐतिहासिको की दृष्टि से ओझल रहे हैं। इतिहास मे जिन तथ्यो का अकन नही हो पाया है, उसके मुख्य दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम तो इतिहासविदो के समक्ष सभी प्रकार की सामग्री का उपलब्ध न होना और दूसरे उनकी अपनी दृष्टि मे मान्यता विशेष का होना।

अपनी रुचि तथा दृष्टि विशेष के कारण सभी प्रकार के लेखक युग तथा परिस्थितियो के अनुसार साहित्य-सर्जन करते रहे हैं। राजनीतिक तथा सास्कृतिक सक्रमण के युग मे उनमे जो परिवर्तन लक्षित होते रहे हैं, उनका स्पष्ट प्रतिविम्ब साहित्य मे भी चित्रित होता रहा है। किन्तु वास्तविकता यह है कि सभी रचनाओ मे इस प्रकार की प्रवृत्ति लक्षित नही होती। फिर भी साहित्यिक रचनाओ मे बहुविध चित्रण मे उनका समावेश यथा स्थान पाया जाता है। "देश और काल से साहित्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है और प्रत्येक देश के विभिन्न कालो की सामाजिक,

राजनैतिक और धार्मिक आदि स्थितियो का प्रभाव उस देश के साहित्य पर पडता है।"[1] "इस अर्थ मे साहित्य और सस्कृति परस्पर निकट हैं क्योकि दोनो का उद्देश्य सत्य, शिव तथा सौंदर्य का समन्वय कर मनुष्य को उदात्त भूमिका पर प्रतिष्ठित करना है, सम्यक् दृष्टि प्रदान करना है।"[2]

"भारत के इस परिवर्तन के प्रभाव से जैन साहित्यकार अछूते नही रहे। वे भी यहा के निवासी थे और अपने पडौसियो से पृथक् नही रह सकते थे। जैन जगत मे इस परिवर्तन की प्रक्रिया सर्वांगीण हुई।"[3] "सत्रहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी तक के काल मे हिन्दी-जैन-साहित्य-गगन मे ऐसे कवि नक्षत्रो का उदय हुआ, जिन्होने अपनी भास्वर-प्रतिमा, ज्ञान-गरिमा एव अनुराग-विरागात्मक ससार के अनुभवों द्वारा इस साहित्य को अक्षय-निधि से परिपूर्ण किया। महाकवि तुलसीदास, केशवदास, सुन्दरदास के समान इन कवियो ने भी अपनी साहित्य-सर्जना द्वारा एक नवीन सृष्टि उत्पन्न की जो भारतीय साहित्य की अक्षय-निधि है।"[4]

गद्य एव पद्य दोनो दिशाओ मे इन शताब्दियो मे पर्याप्त साहित्य लिखा गया। कविवर बनारसीदास, रूपचन्द, द्यानतराय, भूधरदास, बुधजन, दौलतराम, भागचन्द जैसे कवि रत्नो ने इस काल मे आत्मप्रभावक साहित्य द्वारा मानव समाज का वास्तविक दिशा निर्देशन किया।

"इस समय तक खडन-मडन एव शास्त्रार्थों की कटुप्रथा से जनता घृणा करने लगी थी। उसे धर्म का आडम्बर युक्त रूप अत्यन्त खोखला प्रतीत होने लगा था। मानव अब अपने उद्धार का सरल, युक्ति-सगत एव निर्विवाद मार्ग पाने के लिए छटपटा रहा था। निश्चय ही इन शताब्दियो मे आध्यात्मिक सतो-कवियो ने अपना सम्पूर्ण जीवन, मानव-कल्याण की मौलिक समस्या के सुलझाने मे लगा दिया। परिणामस्वरूप सच्चे आत्म-स्वरूप की ऐसी पावन स्रोतस्विनी प्रवाहित

---

१ डॉ० श्याम सुन्दरदास हिन्दी साहित्य, प्रथम सस्करण, पृ० २५।

2. The purpose of culture is to inhence and intensity once-vision of that synthesis of truth and beauty which is the highest and deepest reality.

J C. Powys, the meaning of culture Page 164

३. जैन कामता प्रसाद हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६३। प्र० संस्करण २४७३, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन।

४ जैन डॉ० रवीन्द्र कुमार : कविवर बनारसीदास जीवनी एवं कृतित्व, पृ० ७५ भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, १९६६।

हुई कि सपूर्ण भारत अपने पुरातन एव बोझिल निर्भीक को शतखडकर इसी मे निमज्जित होने लगा।"[1]

जैन साहित्यकारो ने भारतीय साहित्य और सस्कृति की अपनी रचनाओ द्वारा अपूर्व सेवा की है। उन्होने सस्कृत, अपभ्र श, प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषा मे श्रेष्ठ रचनाएँ की। इतना ही नही, जैन साहित्यकारो ने दर्शन, धर्म और कला के क्षेत्र मे भी अपनी कलम चलाई। सक्षेप मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सभी क्षेत्रो मे जैन विद्वानो एव कवियो की रचनाएँ मिलती हैं। उनमे धर्म और राजनीति विषयक दृष्टिकोण की स्पष्ट छाप है। सौंदर्य, कल्पना और भाषा की दृष्टि से हिन्दी जैन साहित्य अनुपम है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जैन साहित्य एव साहित्यकारो का न्यूनाधिक रूप मे उल्लेख मिलता है, पर भाषा और भाव-धारा की दृष्टि से उनका सही मूल्याकन आज तक नही हो सका। इसका कारण सभवत यही हो सकता है कि जैन कवियो की रचनाए धर्म और उपदेश के तत्वो से परिपूर्ण हैं। परन्तु इस दृष्टिकोण से साहित्य रचना करना कोई बुरी बात नही है। इस सम्बन्ध मे जैन आचार्य स्पष्ट करते हुए लिखते हैं —

"वे ही कवि वास्तव मे कवि हैं, वे ही विद्वान् हैं, जिनकी लेखनी से नैतिकता की बात लिखी जाय। वही कविता प्रशसनीय है जो नैतिकता का बोध कराये। इनके अतिरिक्त जो रचनाए की जाती हैं वे केवल पाप को ही बढाने वाली हैं।"[2]

हिन्दी साहित्य के मध्य युग मे भक्ति की धारा सबसे अधिक परिपुष्ट है। उसके सगुण-निर्गुण दो रूप हैं। जैन विचारधारा के कवियों ने भी अनेक भक्ति-विषयक रचनाए की हैं, परन्तु उनका भावधारा की दृष्टि से अध्ययन नही हो सका है।

भक्तिकाल के पश्चात् भी भक्ति की धारा का प्रवाह सूखा नहीं। जैन साहित्य मे तो भक्ति की धारा अजस्र रूप से भक्तिकाल के पश्चात् भी प्रवाहित

---

१. जैन, डॉ० रवीन्द्र कुमार : कविवर बनारसीदास जीवनी एवं कृतित्व पृ० ७५, प्र० सस्करण १९६६, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन।

२. त एव कवयो धीरा:, त एव विचक्षणा:।
येषाधर्म कथागत्व, भारती प्रतिपद्यते ॥
धर्मानुबन्धिनी या स्यात्, कविता सैव शस्यते।
शेषा: पापाश्रवायैव, सुप्रयुक्तापि जायते ॥
आचार्य जिनसेन : महापुराण प्र० पर्व : पद्य क्रमाक ६२–६३ भारतीय ज्ञान-पीठ काशी प्रकाशन : वि० स० २०००, १९४४ ई०।

होती रही। इस काल की समस्त प्रवृत्तिया न्यूनाधिक रूप मे जैन कवियो के पदो मे उपलब्ध हैं। जैन कवियो ने लोक-प्रचलित कथाओ मे भी स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर सुन्दर काव्य रचनाए की हैं।

मध्यकाल के प्रारम्भ मे समाज और धर्म के बाह्यरूप सकीर्ण हो रहे थे। अत जैन लेखको ने अपने पुरातन कथानको और लोकप्रिय परिचित कथानको मे जैनधर्म का पुट देकर अपने सिद्धान्तो के अनुकूल हिन्दी भाषा मे काव्य लिखे। वाहरी, वेश-भूषा पाखड आदि से समाज विकृत होता जा रहा था, अतएव अत्यन्त ओजस्वी वाणी मे हिन्दी के जैन कवियो ने उनका खण्डन किया। यही वह समय था जब जैन कवि व्रज और राजस्थानी मे प्रबधकाव्य और मुक्तक काव्यो की रचना करने मे सलग्न रहे। इतना ही नहीं, जैन कवि मानव-जीवन की विभिन्न समस्याओ का समाधान करते हुए काव्य-रचना मे प्रवृत्त रहे, धर्म-विशेष के कवियो द्वारा लिखा जाने पर भी जन-साधारण के लिये भी यह साहित्य पूर्णतया उपयोगी है। इसमे सुन्दर आत्म-पीयूष-रस छल-छलाता है और मानव की उन भावनाओ और अनुभूतियो को सहर्ष अभिव्यक्ति प्रदान की गई है, जिनसे समाज एव व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

जैन कवियो ने मानव के अन्तर्जगत् के रहस्य के साथ वाह्य रूप से भी होने वाले सघर्षो, परिवर्तनो एव पारस्परिक कलह तथा सामाजिक वितडावादो का काव्यात्मक शैली मे वर्णन किया। कविवर के युग मे स्वाध्याय शालाओ के रूप मे "सैलियो" का प्रचार था।

"उस समय समाज मे धार्मिक अध्ययन के लिए आज के समान सुव्यवस्थित विद्यालय महाविद्यालय नही चलते थे। लोग स्वय ही सैलियो के माध्यम से तत्व-ज्ञान प्राप्त करते थे। तत्कालीन समाज मे जो आध्यात्मिक-चर्चा करने वाली दैनिक गोष्ठिया होती थी, उन्हें ही सैली कहा जाता था। ये सैलिया सम्पूर्ण भारतवर्ष मे यत्र-तत्र थी। कविवर बनारसीदास जैसे कवि आगरा की अध्यात्म सैली के प्रमुख सदस्य थे।"[1] इसी तरह प टोडरमल, प जयचन्द छाबडा, कविवर बुधजन आदि प्रमुख विद्वान जयपुर की "सैली" मे शिक्षित हुए थे।

इस प्रकार की आध्यात्मिक सैली के सम्बन्ध मे डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं —

वीकानेर जैन लेख सग्रह मे आध्यात्मी सप्रदाय का उल्लेख भी ध्यान देने योग्य है। वह आगरे के ज्ञानियो की मडली थी, जिसे "सैली" कहते थे। ज्ञात होता है कि अकबर की दीने-इलाही प्रवृति भी इसी प्रकार की आध्यात्मिक खोज

---

१. जैन सदेश शोधांक : जून १९५७ पृष्ठ १३५।

का परिणाम थी। बनारस मे भी आध्यात्मियो की "सैली" या मण्डली थी। किसी समय राजा टोडरमल के पुत्र गोवर्द्धनदास इसके मुखिया थे।

१८वी और १९वी शताब्दी मे भैया भगवतीदास, द्यानतराय एव बुधजन जैसे कवियो ने इस परम्परा का प्रतिनिधित्व किया। इस समय अध्यात्म प्रधान कवित्त, पद एव बड़े-बड़े पुराणो के अनुवाद देशभाषा मे बहुत ही अधिक सख्या मे हुए। प. दौलतराम ने गद्यानुवादो एव विस्तृत-व्याख्याओ द्वारा साहित्य-जगत मे एक नई दिशा का निर्देशन किया, इससे भाषा का सौंदर्य निखरा तथा प्राचीन कवियो के ग्र थरत्नो का उचित मूल्याकन हो सका। आगे चलकर प. टोडरमलजी ने एव जयचन्द जी छाबड़ा, कविवर बुधजन आदि विद्वानो ने पर्याप्त मात्रा में ग्रथ प्रणयन् किया। ये केवल अनुवाद कर्त्ता ही न थे, सफल कवि भी थे। लेकिन वर्तमान २०वी शताब्दी मे अनुवादो की परम्परा क्षीण पड़ गई और कलाकार स्वतत्र रचनाए करने लगे।

२. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जैनाचार्यों और धर्मोपदेशको की एक विशेषता यह भी रही है कि उन्होने ग्रथ रचना के लिए तत्कालीन प्रचलित लोकभाषा को ही माध्यम बनाया। यही कारण है कि जैन साहित्य, मागधी, अर्धमागधी, सस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्र श, हिन्दी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड आदि सभी प्रचलित भाषाओ मे उपलब्ध होता है। ७वी व ८वीं शती मे जैन लेखको ने प्राकृत और सस्कृत का पल्ला छोड दिया था और तत्कालीन लोक-प्रचलित अपभ्र श भाषा मे विचारो को सुरक्षित रखने का प्रयास किया था। ८वीं शताब्दी में स्वयभू में कवि ने पद्मचरित (पउमचरिउ) तथा हरिवश पुराण की रचना की। १० वी शती मे पुष्पदत कवि ने महापुराण की रचना की। १२वी शताब्दी मे तथा १३वी शताब्दी मे योगसार, परमात्म प्रकाश आदि रचनाए हुई। अपभ्र श की ये रचनाए पुरानी हिन्दी के अति निकट हैं। इस शताब्दी मे विमलकीर्ति की रचनाए भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

१४ वीं और १५ वी शताब्दी मे जैन कवियो ने व्रज और राजस्थानी भाषा मे "रासा" ग्रथो की रचनाए की। गौतमरासा, सप्तक्षेत्ररासा आदि इस काल की रचनाए हैं। "मयण पराजय चरिउ" (भारतीय ज्ञान पीठ काशी से मुद्रित) इस काल की सुन्दर रचना है। १५ वी और १६ वी शती मे ब्रह्म जिनदास ने आदि पुराण, श्रेणिक चरित्र आदि कई रचनाए लिखी। १७ वी शताब्दी मे प बनारसी दास, रूपचन्द आदि अनेक जैन कवियो एव साहित्यकारों ने व्रज और राजस्थानी भाषा मे गद्य-पद्यात्मक रचनाए लिखी। १८ वीं और १९ वीं शताब्दी मे भूधरदास, प. टोडरमल, जयचन्द छाबड़ा, बुधजन, दौलतराम आदि अनेक कवियो एव साहित्यकारो ने अनेक ग्रन्थो का हिन्दी में निर्माण किया।

जयपुर के राजघरानो के इतिहास पर एक विहगम दृष्टि डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि इन नरेशो ने जयपुर के इतिहास को बनाने मे अभूतपूर्व सहयोग प्रदान किया था। वि. स. १६७८ से १६७९ तक होने वाले जयपुर के राजवश की तालिका इस प्रकार है —

क्र०	शासन काल	शासक
१	१६७८ से १७२४ तक	मिर्जा राजा जयसिंह–प्रथम
२	१७२५ से १७४६ तक	महाराजा रामसिंह–प्रथम
३	१७४७ से १७५६ तक	महाराजा विष्णुसिंहजी
४	१७५७ से १८०० तक	सवाई जयसिंह द्वितीय
५	१८०१ से १८०७ तक	सवाई ईश्वरसिंहजी
६	१८०८ से १८२४ तक	सवाई माधोसिंह जी
७	१८२५ से १८३३ तक	महाराजा पृथ्वीसिंह जी
८.	१८३४ से १८६० तक	महाराजा प्रतापसिंह जी
९.	१८६१ से १८७५ तक	महाराजा जगतसिंह जी
१०	१८७६ से १८९२ तक	महाराजा जयसिंहजी (तृतीय)
११	१८९३ से १९३७ तक	महाराजा रामसिंहजी (द्वितीय)
१२	१९३८ से १९७९ तक	महाराजा माधोसिंहजी (द्वितीय)

कविवर बुधजन १९वी शताव्दी के कवि थे। उन्होंने अपने जीवन काल मे जयपुर मे दो शासको का शासन-काल देखा था, यह कवि की रचनाओ के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है। कवि ने "बुधजन सतसई" की रचना वि. स. १८७९ मे की थी। कवि की अन्तिम रचना वर्द्धमान पुराण सूचनिका है। इसका रचनाकाल वि सं १८९५ है। इस काल मे महाराजा रामसिंहजी (द्वितीय) कुछ काल तक जयपुर के शासक रहे। दोनो ही शासको का जयपुर के निर्माण मे अभूतपूर्व योगदान रहा है। कविवर ने उक्त दोनो ही शासको का अपनी रचनाओ मे सादर उल्लेख किया है। जिस प्रकार जयपुर नगर को बसाने का सुयश महाराजा सवाई जयसिंह को है, उसी प्रकार जयपुर की सजावट तथा प्रजाहित के कार्यों की वृद्धि करने वाले महाराजा सवाई रामसिंह जी (द्वितीय) को दिया जा सकता है।

३. तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ

"बुधजन" १९ वी शती के कवि थे। उस काल की सामाजिक परिस्थितिया अच्छी नही थी। समाज-वाह्य आडवरों और पाखण्डो से विकृत हो रहा था। जैन समाज दिगवर-श्वेताम्बर ऐसे दो सम्प्रदायो मे विभक्त था। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साधुओ को लज्जा-निवारण के लिए बहुत सादा वस्त्र रखने की छूट दी थी।

कालान्तर मे उसमे शिथिलता आ गई। दिगम्बर-श्वेताम्बर प्रतिमाओ मे कोई भेद न था। प्राय दोनो ही नग्न प्रतिमाओ को पूजते थे, परन्तु भविष्य मे किसी प्रकार का झगडा न हो इस दृष्टि से श्वेताम्बर सघ ने प्रतिमाओ के पाद-मूल मे वस्त्र का चिन्ह बना दिया और कालान्तर में मूर्तियो को आँख, अगी, मुकुट आदि द्वारा अलकृत किया जाने लगा जो आज तक प्रचलित है।"[1]

"दिगम्बर सम्प्रदाय मे भी शिथिलाचार प्रविष्ट हुआ। मठाधीश भट्टारको का प्रभुत्व वढने लगा। वे उद्दिष्ट भोजन करते थे। एक ही स्थान पर बहुत समय तक रहते थे, तेल मालिश करते थे, मत्र-तत्र आदि विद्याओ का उपयोग करते थे।"[2]

समाज मे शिथिलाचार वढ रहा था। विद्वानो और साधुओ के वढते शिथिलाचार को देखकर ही प आशाधरजी को लिखना पडा कि —

"इस काल के भ्रष्टाचरणी पंडितो ने एव मठाधिपति साधुओ ने (भट्टारको ने) पवित्र जैन शासन को मलिन कर दिया है।"[3]

यह सामाजिक विकृति न केवल जैन सम्प्रदाय मे ही उत्पन्न हुई थी, अपितु सपूर्ण भारतीय समाज को भी विकृत कर रही थी।

राजस्थान के इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि "उस समय औरगजेब का शासन काल था, जिसमें मुगल सत्ता उतार पर थी। मुगलो की पिछली सतान बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी। शिक्षा की कमी और असभ्य समाज के कारण उनका पतन हो गया था। असयम तथा मद्यपान ने उन्हे अवनति के गर्त मे फेंक दिया था। देश मे स्थित प्रत्येक वर्ग के लोग, घोर अधकार मे पडे हुए थे। निर्धन और धनवान प्रत्येक के जीवन का प्रत्येक कार्य ज्योतिष के अनुसार ही होता था।"[4]

उस समय राजस्थान के शासक भी निष्क्रिय थे। जयपुर के राजा सवाई जयसिह ने अवश्य मुगलो के इस विघटन का लाभ उठाया, उन्होने हिन्दू-प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया। परन्तु सवाई जयसिह के पुत्र ईश्वरसिंह के शासनारूढ होते ही (१७४४–१७५०) विघटन प्रारम्भ हो गया। उसके पश्चात्

---

१ भारिल्ल डॉ हुकमचन्द शास्त्री : पं टोडरमल व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ ६।

२ प्रेमी नाथूरामजी जैन साहित्य का इतिहास, पृ. ४६९ भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन।

३. पंडितैर्भ्रष्ट चारित्रैः बठरैश्चतपोधनैः। शासनं जिनचंद्रस्य, निर्मलंमलिनी कृतम् अनगार–धर्मामृतः अध्याय २/९६ टीका। पं. आशाधर-प्रज्ञा पुस्तक माला का १६ वा पुष्प प्रका मोहनलाल काव्यतीर्थ, सिवनी, सी पी।

४. डॉ. विश्वेश्वर प्रसाद डी लिट् : भारतवर्ष का इतिहास, पृ २२२

उनका अनुज माधोसिंह जयपुर का शासक बना, इन्ही की परपरा मे सवाई जयसिंह (तृतीय) हुए। कविवर बुधजन इन्ही के समय मे हुए थे, क्योकि कविवर बुधजन का समय वि स १८३० से १८९५ तक निश्चित होता है। सवाई जयसिंह (तृतीय) का समय भी वि. सवत् १८७५ से १८९२ तक का है।

यद्यपि वह समय राजनैतिक अस्थिरता का था। जैन विद्वानो की विशेष रुचि धार्मिक विचारो से परिपूर्ण थी, तथापि राजनीति मे भी जैनो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। बगाल मे मुर्शिदावाद के जगत सेठ, दिल्ली के शाही खजाची हरसुखराय और सुगनचन्द, भरतपुर के नथमल विलाला आदि उस काल के प्रसिद्ध व्यक्तियो मे से थे। राजपूत राज्यो की राजनीति मे भी उस काल के जैनों ने मत्त्हवपूर्ण भाग लिया था। बुन्देलखण्ड मे देवगढ़ का शासक जैन था जिससे सिंधिया का युद्ध हुआ था।

"जयपुर मे मिर्जा राजा जयसिंह के समय मे बल्लूशाह जैनी एक उच्च पद पर नियुक्त था, उसका पुत्र विमलदास राजा रामसिंह और विशनसिंह के समय मे दीवान था, वह वीर योद्धा भी था, इसका पुत्र रामचन्द्र छावडा, महाराजा सवाई जयसिंह (१७०१–४३) का दाहिना हाथ एव प्रधान दीवान था, वह भी वीर योद्धा एव कुशल सेनानी था। तदुपरान्त राव कृपाराम, शिवजीलाल, अमरचन्द आदि प्रसिद्ध दीवान जयपुर राज्य मे हुए।"[1] दीवान अमरचन्द के सम्बन्ध मे डॉ ज्योतिप्रसाद का मत है कि दीवान अमरचन्द विद्वानो का भारी आश्रयदाता था, निर्धन छात्रो को छात्रवृत्ति देता था। स्वय भी बडा विद्वान् और धर्मात्मा था। उसने अनेक जैन मन्दिरो का निर्माण एव ग्रन्थो की रचना भी कराई थी। राजा का सारा दोष अपने ऊपर लेकर और अपने प्राणो की बलि देकर अंग्रेजो के कोप से उसने जयपुर राज्य की रक्षा की थी। इस काल मे जयपुर राज्य के जैन साहित्यकारो ने विशेषरूप से हिन्दी खडी बोली के गद्य का अभूतपूर्व एव महत्त्वपूर्ण विकास किया। जयपुर के विद्वानो का देश के अन्य प्रदेशो के जैन विद्वानो के साथ भी बराबर सपर्क रहता था। ग्रथो की प्रतिलिपिया करने का एक विशाल कार्यालय भी इस काल मे वहा स्थापित हुआ, जहा से ग्रन्थ भेजे जाते थे। अनेक जैन मदिरो के अतिरिक्त जैन मूर्तिकला के निर्माण का भी केन्द्र जयपुर बना। केवल जयपुर नगर मे ही उस काल मे लगभग दस-बारह हजार जैनी थे।"[2]

कविवर बुधजन के समय मे जयपुर मे लगभग १५० जैन चैत्यालय थे। उनमे एक शाति जिनेश का मन्दिर बडे मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध था। वहा तेरापंथ

---

१ शर्मा पं हनुमान प्रसाद, हितैषी पत्रिका, पृ० ८८ जयपुर प्रकाशन।

२ जैन, डॉ ज्योति प्रसाद : भारतीय इतिहास एक दृष्टि, द्वितीय संस्करण पृष्ठ ५९३।

की अध्यात्म शैला चलती थी अर्थात् वहा प्रतिदिन एक गोष्ठी होती थी। उसमे अध्यात्म चर्चा और पठन-पाठन ही प्रमुख था। गोष्ठी मे नाटक त्रय सदैव पढे जाते थे, यह क्रम प्रात और सध्या दोनो समय चलता था। सभी श्रोता तत्वज्ञान के जानकार होते थे। बुधजन भी उनमे से एक थे। कवि की लगन विशेष थी, अत उन्हे शास्त्रो का अच्छा ज्ञान हो गया था। उस समय टीकाए और वचनिकाए ढूढारी हिन्दी मे लिखी जाती थी। टीका मे मूलग्रथ के विचार और शब्दो का अनुवाद भर होता था। टीकाकार अपनी ओर से कुछ घटाने या बढाने को स्वतन्त्र नहीं था। वचनिका मे अनुवाद तो होता ही था, साथ मे विश्लेषण भी रहता था। वहा वचनिकाकार अपना मत भी स्थापित कर सकता था।

४. लोक-परम्परा

लोक मे प्रचलित परम्परा को लोक-परम्परा कहते हैं। लोक-साहित्य में ये परम्पराए आज भी सुरक्षित हैं। लोक-प्रिय हैं। लोक-साहित्य मे लोक-गीतो की प्रमुखता है। ये लोक-गीत स्त्रियो को बहुत प्रिय हैं। होली, विवाह, वियोग सस्कार, वनडा, वाना बैठना, वडा विनायक, चाक पूजना, धार्मिक गीत, सती गीत, भावरे, विदाई आदि अवसरो पर स्त्रियाँ लोक-परम्परागत लोक-गीत गाती रहती हैं।

"लोक भाषाओ मे अनेक गीतो, वीर गाथाओं, प्रेमगाथाओ तथा लोकोक्तियो आदि की भी भरमार है। यह सामग्री अधिकाश मे अभी तक अप्रकाशित है। लाक कथा और लोक कथानको का साहित्य साधारण जनता के अन्तस्तर की अनुभूतियो का प्रत्यक्ष निदर्शन है।"[1]

लोक भाषा मे हमारी लोक-परम्परा दीर्घकाल से सुरक्षित है। सिद्ध लोगो ने उस समय लोक भाषा मे कविता प्रारम्भ की। जिस समय शताब्दियो से भारत के सभी धर्म वाले किसी न किसी शास्त्रीय भाषा द्वारा अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे और इसी कारण उनके धर्म के जानने वाले बहुत थोडे हुआ करते थे। सिद्धो के ऐसा करने के कारण थे, वे आचार, धर्म-दर्शन आदि सभी विषयो मे एक क्रान्तिकारी विचार रखते थे। वह सभी अच्छी-बुरी रूढियो को उखाड फेंकना चाहते थे।

"जैन विद्वानो ने लोक रुचि और लोक-साहित्य की कभी उपेक्षा नही की। जन-साधारण के निकट तक पहुचने और उनमे अपने विचारो का प्रचार करने के

---

१. राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, षोडश भाग पृ. ५, वि स २०१७।

लिए वे लोक भाषाओ का आश्रय लेने से भी कभी नही चूके। यही कारण है कि उन्होने सभी प्रान्तो की भाषाओ को अपनी रचनाओ मे समृद्ध किया है। अपभ्रंश भाषा द्रविड प्रान्तो और कर्नाटक को छोडकर प्राय सारे भारत मे थोडे बहुत हेर-फेर के साथ समझी जाती थी, अतएव इस भाषा मे भी जैन कवि विशाल साहित्य का निर्माण कर गये हैं।"[1]

सिद्धो, जैनियो और नाथ गुरुओ ने वेद शास्त्र, तीर्थ सेवन, बाह्याचार एव जन्मगत उच्चता के विरोध मे जो तीव्र व्यग किये हैं, लगभग इसी शैली और इसी तीव्रता के साथ आगे चलकर सत-कवियो ने किये।

अन्य सन्तो की भाँति कविवर बुधजन ने भी बाह्य-आडबरो का खण्डन किया, सर्व-सुलभ भक्ति मार्ग का प्रचार किया। बाह्य कर्मकाण्ड की अपेक्षा वे भी आन्तरिक तन्मयता मूलक भावना को प्रश्रय देते थे। कवि की सबसे बडी विशेषता उनकी सर्वतोन्मुखी व्यापकता थी जिसमे धनी-निर्धन, सवर्ण-असवर्ण, गृहस्थ-विरक्त तथा ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक का स्थान था। धर्म का द्वार, स्त्री-पुरुष सभी के लिए समान भाव से खुला हुआ था। किसी प्राचीन परम्परा के बन्धन मे न बधकर अपनी वैयक्तिक अनुभूति एव स्वतन्त्र पद्धति से अपने समय की सामाजिक विकृतियो को सुधारने की चेष्टा करते रहे। उन्होने बडे विश्वस्त भाव से कहा—कि हमे आत्म-स्वरूप का अन्वेषण करने के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही। सत्य के श्रेष्ठतम प्रतिष्ठान हमारी आत्मा मे ही विद्यमान हैं। जैसे मृगनाभि मे कस्तूरी है वैसे ही प्रयत्न पूर्वक खोज करने पर वह दुर्लभ वस्तु (आत्मा मे ही) स्फुरित हो जाती है। उन्होने स्वसवेद्य ज्ञान को प्रधानता दी। उनकी आध्यात्मिक-चेतना, शास्त्रीयता से परे, जीवन के प्रति सहज, व्यापक और उदार-दृष्टिकोण से ओत-प्रोत है। वह न तो ग्रहण की पक्षपातिनी है और न त्याग की विरोधिनी।

जीवन के साधारण कार्य-व्यापारो के प्रति वह एक सुसगत, सतुलन खोजकर तद्वत् आचरण करने पर विशेष बल देती है। उन्होने वह भूमिका तैयार की जो जन-सामान्य के आत्म-विकास का निर्माण करती है। प्रत्येक व्यक्ति मे आध्यात्मिक तत्त्व का होना उन्हे स्वीकार है। व्यक्तिगत-चिंतन के द्वारा परमतत्त्व (आत्मा) के चरम सौंदर्य का साक्षात्कार होना उनकी दृष्टि से असम्भव नही है।

५. खडी बोली की परम्परा तथा विकास

कविवर बुधजन ने जिस ढूढारी भाषा (लोक भाषा) का अपनी साहित्यिक रचनाओ मे प्रयोग किया है वह हिन्दी भाषा के अत्यन्त निकट है। केवल उसके

---

१. जैन कामता प्रसाद : हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १०, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन।

क्रिया पदो मे सामान्य-सा परिवर्तन करने की आवश्यकता है। इस सामान्य से परिवर्तन से वह खडी बोली का (हिन्दी का) शुद्ध रूप प्रतीत होने लगता है।

जिस हिन्दी भाषा का आज हम प्रयोग करते हैं उसका स्रोत अपभ्र श भाषा है। अपभ्र श भाषा के अध्ययन के बिना हम हिन्दी भाषा एव तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एव ऐतिहासिक विकास क्रम को समझ ही नही सकते। स्मरणीय है कि अधिकतर अपभ्र श साहित्य जैन साहित्य है। जैन धर्मोपदेष्टा जन-जन तक धार्मिक विचारधारा को लोक भाषा मे पहुचाना चाहते थे। उस काल मे अपभ्र श भाषा लोक भाषा थी, अत उन्होने इस भाषा को धर्मोपदेश के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना।

अपभ्र श भाषा के सम्बन्ध मे डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं —

"हिन्दी की काव्यधारा का मूल विकास सोलह आने अपभ्र श काव्यधारा मे अन्तर्निहित है, अत हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक क्षेत्र मे अपभ्र श भाषा को सम्मिलित किये बिना हिन्दी का विकास समझ मे आना असम्भव है। भाषा, भाव शैली तीनो दृष्टियो से अपभ्र श भाषा का साहित्य हिन्दी भाषा का अभिन्न अग समझा जाना चाहिये।"

दडी ने अपने काव्यादर्श मे इस बात का उल्लेख किया है कि यह अपभ्र श भाषा आभीर आदिको की बोली है।

"आभीरादिक गिर काव्येष्वपभ्र श इतिस्मृता" इस उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अपभ्र श भाषा आभीर आदिको की बोली है और इसमे काव्य-रचना भी होती थी।

अपभ्र श मे काव्य-रचना लगभग ७वी शताब्दी से प्रारम्भ हुई। ७वी से ११वी शताब्दी तक अपभ्र श भाषा प्रचलित रही एव उसमे साहित्य-रचना होती रही। जैन साहित्यकारो ने भारतीय प्रादेशिक भाषाओ मे साहित्यिक रचनाए की हैं क्योकि सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया को उन्होने सदैव स्वीकार किया था। बगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि प्रादेशिक भाषाओ मे लिखा गया जैन साहित्य इस बात का प्रमाण है।

कविवर बुधजन की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है। उनके पदो मे राजस्थानी प्रवाह और प्रभाव दोनो ही विद्यमान हैं। एक उदाहरण देखिये —

"मैं देखा आतमरामा ॥ टेक ॥
रूप फरस रस गध तें न्यारा, दरस ज्ञान गुनधामा।
नित्य निरजन जाके नाही, क्रोधलोभ मद कामा ॥"[1]

---

१ बुधजन . बुधजन विलास, पद्य क्रमाक ६१, जिनवाणी प्रचारक कार्या, १६१/१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

एक और उदाहरण देखिये —

"भजन विन यो ही जनम गमायो ।। टेक ।।
पानी पेल्या पाल न बाधी, फिर पीछे पछतायो ।
रामा मोह भये दिन खोवत, आशा पाश बधायो ।।
जपतप सजम दान न दीनो, मानुप जनम हरायो ।।"[1]

तमिल भाषा के प्रमुख महाकाव्यो मे से "चितामणि" तथा "सीलापदिकरम्" जैन लेखको की कृतिया हैं। प्रसिद्ध "नलदियर" का मूल भी जैन है। कहाकवि राहुल साकृत्यायन की खोज के अनुसार भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी मे प्राप्त सर्वप्रथम प्राचीन ग्रथ "स्वयभू रामायण" है जो स्वयभू नामक जैन कवि की रचना है।

कविवर बनारसीदास जैन द्वारा विक्रम की १७वी शताब्दी मे लिखित छन्दोबद्ध "आत्मकथा" हिन्दी साहित्य की प्रथम आत्मकथा है, जो आज भी महत्त्व-पूर्ण मानी जाती है।

हिन्दी मे जैन लेखको ने विविध छन्द व अलकारयुक्त रचनाए करके साहित्य की समृद्धि मे बडा योग दिया है। जैन धर्म मे त्याग तथा आत्म-कल्याण का विशेष महत्त्व होने से उनकी रचनाओ मे इन बातो का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि कवियो एव लेखको ने धर्म प्रचारार्थ रचनाए की हैं, तथापि हिन्दी साहित्य के विकास मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अपभ्र श से हिन्दी का विकास होने से विकास की प्रथमावस्था म भी उसमे जैन सिद्धान्तो का समावेश हुआ। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से एव हिन्दी साहित्य के प्रारभिक विकास की दृष्टि से जैन साहित्य का बहुत महत्त्व है। प्राचीन हिन्दी का जो ऐतिहासिक रूप हमे उपलब्ध है, वह भी जैन विद्वानो की ही देन है। जैन विद्वानो ने लोक रुचि का समादर करते हुए कुछ ऐसी रचनाए मानव-समाज को दी हैं, जिनका सास्कृतिक दृष्टि से बडा महत्त्व है।

हिन्दी जैन साहित्य मे कुछ ऐसी सर्वोपयोगी साहित्यिक रचनाए है, जो ससार के साहित्य मे बेजोड हैं और उनके कारण लोक-साहित्य मे हिन्दी का मस्तक ऊचा हुआ है।

साराश यह है कि "जैन साहित्य के अध्ययन के विना हिन्दी साहित्य का अध्ययन अपूर्ण रहेगा। काव्य के दोनो पक्षो मे जैन कवियो ने अपनी काव्य प्रतिभा दिखाई है। जैन साहित्य सपूर्ण रूप से शान्त-रस मे लिखा गया है। हिन्दी गद्य के निर्माण का आरम्भ भी इसी युग से माना जाता है। गद्य चितामणि तिलक-मजरी आदि सुन्दर गद्य रचनाए इस काल मे लिखी गई।"[2]

---

१ बुधजन बुधजन विलास, पद्य क्रमाक ६३, जिनवाणी प्रचारक कार्या, १६१/१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

२ अहिंसावाणी : वर्ष ९ अक ६, जून १९५९।

६. साहित्य-सर्जन

"ससार मे कवि और लेखक तो बहुत होते हैं पर वास्तव मे उन्ही का जीवन सफल है जिन्होने आध्यात्मिक रचनाए करके अपनी कवित्व शक्ति का उपयोग स्व-पर कल्याण के लिये किया । बुधजन ऐसे ही कवि थे, जिन्होने अपनी काव्य प्रतिभा का उपयोग स्व-पर कल्याण के लिए किया ।"[1]

भारतीय साहित्य का मध्यकाल काव्य सृजन की दृष्टि से महत्त्व का माना गया है । इस युग मे जैन कवियो ने जो भी लिखा वह मात्र "कला के लिए कला" का आयोजन नही था, वरन् उसमे तत्कालीन जन-जीवन स्पदित था ।

इन कवियो ने कवि दृष्टि के साथ-साथ सस्कृति, नीति और धर्म को भी अपने काव्य की प्रमुख भूमि बनायी और ऐसा साहित्य लिखा, जिसने जन-जीवन को ऊचा उठाया और श्रमण सस्कृति की निर्मलताओ को उजागर किया ।

हिन्दी के जैन कवियो की रचनाओ ने हमारे जीवन को प्रतिक्षण नया उत्थान दिया है । हमारे लोक जीवन को आध्यात्मिक ऊचाई प्रदान की है । मानव को पशुता से मनुष्यता की ओर ले जाना ही उनका लक्ष्य रहा है ।

हिन्दी के जैन कवियो ने अपनी रचनाओ मे वर्णिक व मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है । वर्णिक छन्दो का प्रयोग, अधिकाशतया सस्कृत की अनूदित कृतियो मे और मात्रिक छन्दो का प्रयोग मौलिक कृतियो मे किया जाता है । कवि की रचनाओ मे यथा स्थान मुहावरो एव लोकोक्तियो के सुन्दर प्रयोग हुए है ।

बुधजन की रचनाए प्रसाद गुण युक्त हैं । इस युग के सभी जैन कवियो ने खडी बोली का प्रयोग किया है । उनकी भाषा पर फारसी का स्पष्ट प्रभाव है । फारसी, व्रज एव राजस्थानी के शब्दो के तत्सम और तद्भव दोनो रूपो मे प्रयोग मिलते हैं ।

बुधजन सदृश जैन साहित्यकारो ने साहित्य-सर्जना करते समय जन-साधारण की भाषा प्राकृत अपभ्र श, हिन्दी आदि को अपनाया क्योकि उनका उद्देश्य चमत्कार एव चातुर्य प्रदर्शन न होकर जन-मानस मे जीवन के प्रति धर्ममय लगन को जागृत करना था ।

---

१ त एव कवयो धीरा त एव विचक्षणा ।
येषा धर्म कथागत्व, भारती प्रतिपद्यते ।।
आचार्य जिनसेन महापुराण, अध्याय–१ पद्य ६२–६३, पृ. ५, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वि स. २००० ।

जैन साहित्य मे मुख्यत अहिंसा सिद्धान्त की अभिव्यक्ति हुई है। उसमे लोक-जीवन के स्वाभाविक चित्र अकित हैं। उसमे सुन्दर आत्म-पीयूष-रस छलछलाता है। धर्म विशेष का साहित्य होते हुए भी उदारता की कमी नही है। मानव स्वावलवी कैसे बने, इसका रहस्योदघाटन इसमे किया गया है। तत्त्व-चिंतन और जीवन-शोधन ये दो जैन साहित्य के मूलाधार है।

जीवन-शोधन (आत्म-शोधन) मे सम्यक् श्रद्धा, सम्यक ज्ञान तथा सदाचार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन सदाचार, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप है।

प्रत्येक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व है। प्रत्येक आत्मा राग-द्वेष एव कर्ममल से अशुद्ध है। वह पुरुषार्थ से शुद्ध हो सकती है। प्रत्येक आत्मा परमात्मा बनने की क्षमता रखती है। जैन दर्शन निवृत्ति प्रधान है। रत्नत्रय ही निवृत्ति मार्ग है। सात तत्त्वो की श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। आत्मा की तीन अवस्थाए हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। विचारो को अहिंसक बनाने के लिए अनेकान्त का आश्रय आवश्यक है।

हिन्दी भाषा का जो रूप गाधीजी चाहते थे, वह इन जैन कवियो की रचनाओ मे उपलब्ध होता है। परन्तु साधु सप्रदाय मे पले इन कवियो की भाषा सस्कृत निष्ठ थी। जैन कवियो ने अनेको महाकाव्य भी लिखे, मुक्तक काव्य भी लिखे। उनकी मुक्तक कृतिया उत्तम काव्य की निदर्शन है।

वि. स १८००–१६०० तक जो भक्ति परक रचनाए हुई, उन पर रीतिकाल का प्रभाव था। उनकी भाषा मे भी अलकारो की भरमार थी।

जैन कवियो की भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण थी। उन्होने अनेक नये छन्द, नई राग-रागिनियो मे प्रयुक्त किये। अलकारो के प्रयोग मे वे मर्यादाशील बने रहे। भक्ति-काव्य का कोई अश-अलकारो के कारण अपनी स्वाभाविकता न खो सका।

अनेक जैन कवि प्रकृति के प्रागण मे पले और वही उनका साधना क्षेत्र बना। अत वे प्रकृति चित्रण भी स्वाभाविक ढग से कर सके।

साहित्य-सर्जन की दृष्टि से उत्तर भारत मे इस काल मे जैनो के प्रमुख केन्द्र गुजरात, दिल्ली और जयपुर थे। इन केन्द्रो पर सस्कृत, हिन्दी, गुजराती राजस्थानी आदि भाषाओ मे साहित्य सृजन चलता रहा किन्तु उसमे गद्य एव पद्य के हिन्दी साहित्य की ही बहुलता रही। उसकी रचना मे जयपुर केन्द्र सर्वाग्रणी रहा। य भी राजस्थानी साहित्य प्रेरणा और शक्ति का साहित्य रहा है।

इस काल मे लगभग ५०–६० जैन कवियो एव साहित्यकारो के नाम मिलते हैं, जिनमे निम्न लिखित साहित्यकार उल्लेखनीय हैं —

"दौलतराम, बुधजन, यशोविजय, जयचन्द छावडा, सदासुख, लालचन्द, देवदत्त, वृन्दावन, देवचन्द, चन्द्रसागर, रगविजय, क्षमाकल्याण, नयनसुखदास आदि।"[1]

जैन साहित्य को प्रकाश मे लाने का श्रेय पाश्चात्य विद्वान, डॉ हर्मन जैकोबी, डॉ हीरालाल जैन, डॉ ए. एन उपाध्ये, प जुगल किशोर मुख्तार, नाथूराम प्रेमी, डॉ कामता प्रसाद जैन, डॉ नेमीचन्द शास्त्री, प परमानन्द शास्त्री, अगरचन्द नाहटा, प्रभृति विद्वानो एव वर्तमान मे डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल, पं कैलाश चन्द शास्त्री, डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन प्रभृति विद्वानो को है, जिन्होने जैन धर्म का अध्ययन कर उसके साहित्य को खोज निकाला।

यद्यपि जैन कवियो एव लेखको ने धर्म प्रचारार्थ ही लिखा है तथापि हिन्दी साहित्य के विकास मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। जैन लेखको ने साहित्य-निर्माण करते समय लोक भाषाओ को अपनाया। अपभ्रश भाषाओ को भी जैन कवियो ने अपनाया क्योकि जैन लेखको ने साहित्य सर्जना करते समय जन-साधारण की भाषा का पूर्ण ध्यान रखा। यही कारण है कि अधिकाश जैन साहित्य अपभ्रश भाषा मे लिखा गया, क्योकि उनका उद्देश्य चमत्कार एव चातुर्य प्रदर्शन न होकर जन-मानस मे जीवन के प्रति धर्ममय लगन को जागृत करना था।

अपभ्रश से हिन्दी का विकास होने से हिन्दी विकास की प्रथमावस्था मे भी उच्च कोटि के प्रबधकाव्यो की रचनाए हुई। अतएव भाषा विज्ञान की दृष्टि से ही नही, वरन् हिन्दी साहित्य के प्रारभिक विकास की दृष्टि से भी जैन साहित्य का बहुत महत्त्व है।

प्राचीन हिन्दी का जो ऐतिहासिक रूप हमे उपलब्ध है वह जैन विद्वानो की ही देन है। उन्होंने लोक रुचि का समादर करते हुए कुछ ऐसी रचनाए मानव समाज को दी हैं, जिनका सास्कृतिक दृष्टि से बडा महत्त्व है।

कविवर बुधजन ने साहित्य रचनाकर भारतीय सस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। डॉ देवेन्द्र कुमार शास्त्री लिखते हैं, "प्रत्येक देश और जाति के मूल सस्कार उसकी अपनी भाषा, साहित्य तथा सस्कृति मे निहित रहते हैं। जातीय जीवन, लोक परम्परा एव सामाजिक रीति-नीतियो के अध्ययन से हमे उनकी पूरी जानकारी मिलती है। अतएव भाषा और साहित्य का प्रत्येक अग लोक-मानस की अभिव्यक्ति का ही लिपिबद्ध स्वर होता है।"[2] कवि का सम्पूर्ण साहित्य नैतिक मूल्यो की महत्ता का प्रतिपादक है। कही भी विषय आसक्ति को महत्त्व नही दिया है।

---

१. जैन, डॉ. ज्योति प्रसाद भारतीय इतिहास एक दृष्टि, पृष्ठ ५६२, द्वितीय सस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

२ डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री · अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियां, पृ १, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन।

द्वितीय खण्ड

१—जीवन-परिचय

कविवर बुधजन का पूरा नाम विरधीचन्द था। कुछ लोग प्रेमपूर्वक उन्हें वृद्धिचन्द या भदीचन्द भी कहते थे।[1] वे जयपुर (राजस्थान) के निवासी थे। खण्डेवाल जाति मे उनका जन्म हुआ था। उनका गोत्र बज था।

काव्य-प्रतिभा उनमे बचपन से ही थी। वे गभीर प्रकृति के आध्यात्मिक पुरुष थे। संसार से उदास, निरभिमानी, विवेकी, अध्ययनशील, प्रतिभावान, दृढश्रद्धानी, आत्मानुभवी, श्रावकोचित नियमो के पालक, परोपकारी एव सरल-स्वभावी सत-पुरुष थे। उनका जीवन आध्यात्मिक था। समकालीन विद्वान प दौलतराम ने अपनी प्रसिद्ध कृति "छहढाला" मे उनका आदर पूर्वक स्मरण किया हैं।[2]

जन्म तिथि :

कविवर बुधजन की जन्मतिथि के बारे मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता तथापि उनकी अपनी कृतियो से तथा समकालीन विद्वानो के उल्लेख से कवि का जन्म सवत् १८२० के आसपास निश्चित होता है।

जन्म स्थान :

कविवर बुधजन की जन्म तिथि के समान जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे भी कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता, केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि कवि के

---

१ ठारा से पैंतीस को साल चौथ शनिवार।
चैतजन्म जयमाल को, भदीचन्द हितकार॥
बुधजन विलास (हस्तलिखित प्रति) की जयमाला शीर्षक रचना से।

२ इकनव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख।
करयो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख॥
दौलतराम छहढाला अध्याय ६, पद्य संख्या १६, तेरहवां सस्करण, सरल जैन ग्रन्थ भण्डार, उदयपुर।

पूर्वज आमेर मे रहते थे, जो जयपुर के पूर्व ढूढाड राज्य की राजधानी थी। वहा से वे सागानेर जा बसे, परन्तु जीवन-निर्वाह मे कठिनाई का अनुभव होने से वे जयपुर जाकर रहने लगे, वही सवत् १८२० के आसपास उनका जन्म हुआ।

मृत्यु तिथि

कविवर बुधजन की मृत्यु-तिथि का भी कही कोई उल्लेख प्राप्त नही हुआ। उनकी अतिम रचनाए वर्धमान पुराण सूचनिका एव योगसार भाषा हैं, जिनकी रचना वि स १८९५ मे हुई। अत यह निश्चित है कि कवि की मृत्यु वि स १८९५ के पश्चात् ही हुई होगी।

साहित्य सेवा

उनका जीवन, चिन्तन और साहित्य-साधना के लिए समर्पित जीवन था। वे सभी प्रकार के भौतिक द्वन्द्वो से परे थे। सदैव आतम-साधना व साहित्य-साधना मे निरत रहते थे। राजनैतिक व सामाजिक विवादो से परे रहकर श्रावक धर्म का पालन करते थे। उनका कार्यक्षेत्र व अध्ययन क्षेत्र जयपुर था।

"साहित्य-प्रेम उन्हे बचपन से ही था। वे बचपन से ही कविताए किया करते थे। उन्होने अपने उस साहित्य प्रेम को अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक निभाया। वे सदा साहित्य-चितन मे लीन रहा करते थे, पर आज हमे उनके जीवन की रूपरेखा भली-भाँति ज्ञात नही है।"[1]

कविवर बुधजन अध्यात्म-शैली के सदस्य थे। शैली गोष्ठी को कहते हैं, जो हिन्दी जैन साहित्य के निर्माण-केन्द्र थे। आगरा, अजमेर, ग्वालियर, जयपुर, दिल्ली आदि केन्द्रो पर १८वी और १९वी शताब्दी मे हिन्दी-जैन-साहित्य के प्रमुख ग्रन्थो का प्रणयन उक्त केन्द्रो पर होता रहा है।

"बुधजन कवि के जीवन के २०० वर्ष पूर्व आगरे मे एक गोष्ठी थी, जिसमें निरन्तर आध्यात्मिक चर्चाए होती थी। कविवर बनारसीदास जी उसके प्रमुख सदस्य थे। इस गोष्ठी के माध्यम से ही उन्होने शिक्षा पाई तथा कवि व पडित बने।"[2] इस मण्डली के अन्य प्रमुख विद्वान थे—"प रूपचन्द पाडेय, जगजीवन, धर्मदास, कुवरपाल, कवि सालिवाहन, नदकवि, हीरानन्द, बुलाकीदास, भैया भगवतीदास, जगतराम, भूधरदास, नथमल विलाला आदि।"[3]

---

१. कवि बुधजन · बुधजन सतसई, प्रशस्ति पृष्ठ ५, सपादक नाथूरामजी प्रेमी हि सा का स इति हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई प्रकाशन।

२. जैन डॉ प्रेमसागर : हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि पृ १७, प्र संस्करण १९६४ भारतीय ज्ञान पीठ काशी प्रकाशन।

३. देखिये हीरानन्द कृत समवसरण विधान।

इसी प्रकार दिल्ली मे भी एक गोष्ठी थी, जो सुखानन्द की सैली कहलाती थी। कविवर द्यानतरायजी ने इस गोष्ठी के माध्यम से अपनी काव्य-शक्ति बढाई। जयपुर मे तेरापथी सैली थी, जिसके प टोडरमलजी आदि अनेक सुप्रसिद्ध विद्वान सदस्य रहे थे। कविवर बुधजन ने इसी सैली के माध्यम से अपनी काव्य-प्रतिभा को विकसित किया और उच्चकोटि के सुकवि बन गये।

साहित्य-सृजन की दृष्टि से उत्तर भारत मे उस काल मे जैनो के प्रमुख केन्द्र गुजरात, दिल्ली, आगरा और जयपुर थे। सस्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओ मे साहित्य-सृजन चलता रहा। किन्तु उसमे गद्य एव पद्य के हिन्दी साहित्य की ही बहुलता रही और उसकी रचना मे जयपुर केन्द्र सर्वाग्रणी रहा। इस डेढ सौ वर्ष के अराजकता काल मे लगभग ५०-६० जैन कवियो एव साहित्यकारो के नाम मिलते हैं, जिनमे लगभग एक दर्जन पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं।

कविवर बुधजन के समय मे आचार्यकल्प प टोडरमल की विशेष ख्याति थी। उनकी अपूर्व साहित्यिक सेवाओ के कारण जयपुर भारत का प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्र बन चुका था, अत कविवर बुधजन भी स्वत उधर मुड गये। यद्यपि कविवर बुधजन ने अपने विषय मे विशेष कुछ नही लिखा है, किन्तु "बुधजन सतसई" की अतिम प्रशस्ति से सकेत मिलता है कि "जिस प्रकार नायको के मध्य मे सरपच होता है उसी प्रकार ढूढार प्रदेश के मध्य मे जयपुर नगर था। वहा का राजा जयसिह था जो इन्द्र के समान था और वह प्रजा का हित करने वाला था।"[1]

राजस्थान राज्य का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि कविवर बुधजन ने अपनी प्रसिद्ध कृति "बुधजन सतसई" मे जिस जयपुर के शासक सवाई जयसिह का नामोल्लेख किया है वह सवाई जयसिह तृतीय थे। उनका शासन काल १८७६ से १८९२ तक था कवि का जीवन काल भी वि स १८२० से १८९५ तक का रहा है। कवि की रचनाए भी वि स १८३५ से १८९५ तक की उपलब्ध हैं। अत स्पष्ट है कि कवि ने सवाई जयसिह की जो प्रशसा की है वह सही है, क्योकि कवि के समय मे (सवाई जयसिह) तृतीय जयपुर के शासक थे।

२. अनुश्रुति एवं वंश परिचय

कविवर बुधजन के पूर्वज पहले आमेर मे रहते थे, जो जयपुर के पूर्व राजस्थान की राजधानी थी। वहा जब जीवन-निर्वाह मे कठिनाई होने लगी, तो वे

---

१. मधिनायक सरपच ज्यो, जैपुर मधि ढूंढार।
नृप जयसिह सुरिंद तह, पिरजा को हितकार॥
कवि बुधजन : बुधजन सतसई : अन्तिम प्रशस्ति पृ. ५२ सपादक प नाथूरामजी प्रेमी हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

मागानेर जा वसे, वहा भी जव जीवन-निर्वाह मे कठिनाई होने लगी, तो इनके वावा पूरनमलजी जयपुर आकर रहने लगे। इनके पिता का नाम निहालचन्द जी था। धार्मिक प्रवृत्तिमय दैनिक पट्कर्म आपकी नित्यचर्या के विशेप अग थे। वे पवित्र-जीवन निर्वाह करने मे दत्तचित्त रहते थे। इन्ही के घर कवि ने सवत् १८२० के आस-पास जन्म लिया।

"शैशवकाल व्यतीत होने पर, विद्याध्ययन के लिए आपने गुरुचरणो का आश्रय लिया। आपके विद्यागुरु प मागीलालजी ने आपको वडी ही तत्परता से पढाया।"[1]

"वुधजन" प्रत्युत्पन्न मति थे। अत अल्प समय मे ही उन्होने पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन दिनो आज जैसे विश्वविद्यालय नहीं थे। शिक्षा का विशेप प्रचार नही था। सैलियो के माध्यम से ही विद्याध्ययन करने की परम्परा थी। कविवर वुधजन का अधिकाश जीवन ढूढार प्रदेश मे वीता। पवित्र जीवन-निर्वाह के लिए दीवान अमरचन्दजी के यहा प्रधान मुनीम के पद पर कार्य करते थे। ये अपने पिता की तृतीय सतान थे।

आजीविका सचालन हेतु उन्होंने और क्या किया इसका उल्लेख कही से भी प्राप्त नही हो सका। प टोडरमलजी ने जिस तेरापथ परम्परा को दृढ वनाया, वुधजन भी उसी परम्परा के प्रवल समर्थक थे।

प्रयत्न करने पर भी कवि की जन्म व मृत्यु तिथि का प्रामाणिक परिचय प्राप्त न हो सका। उनके जन्म स्थान व वश-परम्परा का भी यथेष्ट परिचय अप्राप्त ही रहा। सतान पक्ष एव पारिवारिक जीवन के सम्वन्ध मे प्रयत्न करने पर भी विशेप जानकारी प्राप्त न हो सकी। कवि की रचनाए ही उनका वास्तविक परिचय है। उन्होने अपनी रचनाओ मे माँ शारदा को अश्लील, भौतिक शृगार की वातो से कभी कलकित नहीं किया।

सुना जाता है कि कवि के जीवनकाल मे जयपुर मे १०० जैन मन्दिर थे। उनमे एक शाति जिनेश का मन्दिर वडे मदिर के नाम से प्रसिद्ध था। वहा तेरापथ की अध्यात्म-शैली चलती थी अर्थात् वहा प्रतिदिन गोष्ठी होती थी। उसमे अध्यात्म-चर्चा और पठन-पाठन ही प्रमुख था। गोष्ठी मे नाटकत्रय सदैव पढे जाते थे। उनके अतिरिक्त और किसी ग्रथ का पठन-पाठन नही होता था। नाटकत्रय आज भी अध्यात्म के प्राण हैं। पठन-पाठन का यह क्रम प्रात और संध्या दोनो समय चलता था। परिणाम यह हुआ कि श्रोता तत्त्वज्ञान के जानकार हो गये।[2]

---

१ कविवर वुधजन : तत्त्वार्थवोध की भूमिका प्रकाशन कन्हैयालाल गंगवाल, सर्राफा वाजार, लश्कर।

२ अनेकात वर्ष १९, किरण ६, पृ० ३५३, फरवरी १९६७, वीर सेवा मदिर, दरियागज, दिल्ली।

"प नाथूराम जी प्रेमी के अनुसार कवि का वश परिचय निम्न प्रकार है"[1] —
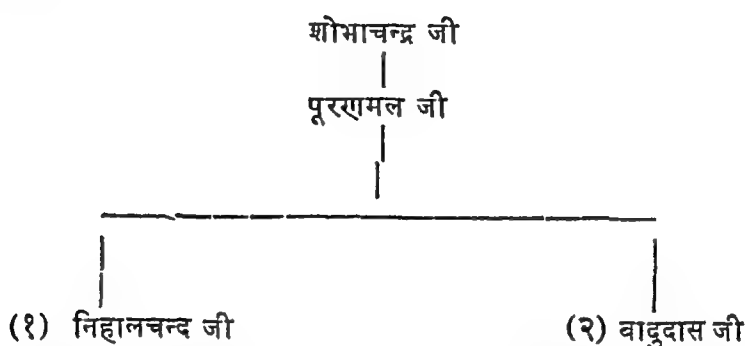
(१) गुलाबचन्दजी, (२) अमीचन्दजी, (३) भदीचन्दजी, (४) श्योजीरामजी, (५) गुमानोरामजी, (६) भगतरामजी ।

अमरचन्दजी
|
मोतीलालजी
|
सोनजी
|
फूलचन्द्रजी

दीवान अमरचन्दजी की आज्ञा से आपने जयपुर मे दो जिन मन्दिरो का निर्माण कराया था जो कवि की अमर-कीर्ति का गान कर रहे हैं। कवि की पवित्र विरागता उनके मन्दिरो की दीवाल पर अकित "मोहतोड" "विषयछोड", समयपाय चेतभाई से जानी जा सकती है। उस समय जयपुर मे छह हजार जैन तथा ६४ हजार अन्य जातियो के घर थे। कवि ने अपने जीवनकाल मे जयपुर मे महाराजा सवाई जयसिहजी (तृतीय) एव महाराजा रामसिह का शासन काल देखा था।

कविवर बुधजन, जिस समय जयपुर मे रह कर साहित्य-साधना कर रहे थे, उस समय जयपुर नगर "सवाई जयपुर" के नाम से प्रसिद्ध था। उसका दूसरा नाम "ढूढाहड" भी था। वास्तव मे ढूढाहड एक देश था और जयपुर उसका मुख्य नगर। उसके एक भाग मे "ढूढाहणी" भाषा चलती थी। जयपुर मे उसके बोलने वालो की सख्या पर्याप्त थी। कुछ कवियो ने उस नगर को ही "ढूढाहड"

---

१ प्रेमी, नाथूराम (स०) बुधजन सतसई, प्रस्तावना हिन्दी ग्रथ कार्यालय, बम्बई।

कुरसीनामा (वंशावली)

पूरण मल जी

पुत्र २

गाजीलालजी

दौलत चन्द जी

पुत्र ३

नवीन कुमार जी

पुत्र १

सुनील कुमार जी

ज्योति कुमार जी

अंकित कुमार

सौजन्य से नवीनकुमार
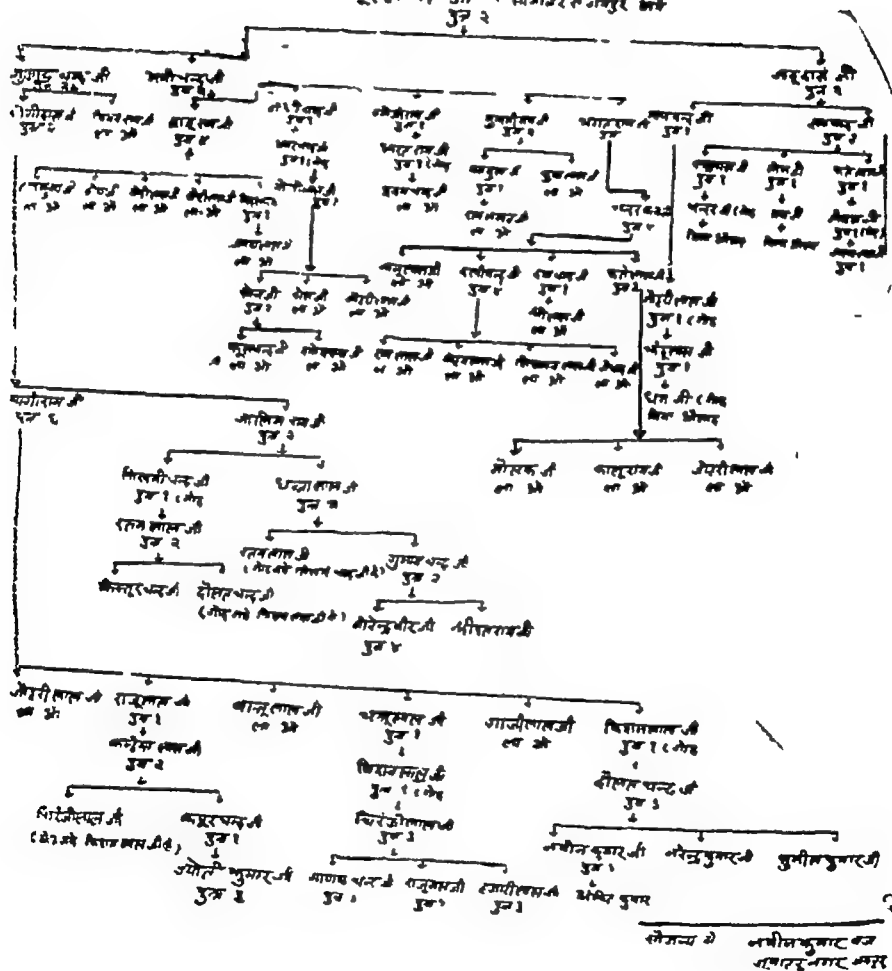
देश लिखा है। ढूढाहडी भाषा मे अच्छे साहित्य की रचना हुई। प० टोडरमलजी की कृतियो मे उसके निखरे हुए रूप के दर्शन होते हैं।"[1]

३. कवि का सामाजिक जीवन

महाकवि बुधजन भारत के अग्रगण्य गायको मे से थे। उनके प्रशान्त हृदय-सागर से शान्ति का अमर-सन्देश लेकर जो धारा वह निकली, विश्व उसे देखकर मुग्ध हो गया। वे सासारिक मोह-माया के वातावरण मे रहकर भी उससे अछूते रहे।

जयपुर मे अनेक साहित्यज्ञ हुए हैं और इसके लिए वह अपना एक विशेष स्थान रखता है। उस समय देश का शासन-सूत्र "मोहम्मद शाह" के हाथो मे था। बुधजन भी जयपुर के साहित्यज्ञ थे। साहित्य-प्रेम उन्हें बचपन से ही था, उन्होने अपने इस साहित्य प्रेम को अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक निभाया। वे साहित्य चिंतन मे सदालीन रहने वाले लब्ध-प्रतिष्ठ कवि थे। उन्होने जितना ही हमसे दूर रहने का प्रयत्न किया है, उनके अमर-काव्य ने उनको उतना ही अधिक हमारे सपर्क मे ला दिया है।

"बुधजन" शान्ति के सच्चे उपासक थे और इसीलिए उन्होने कविता भी की। उनकी कविता मे न तो कोई प्रदर्शन है और न वाह्याडम्बर ही। वे चिर-शाति स्थापना के परिपोषक थे, उन्होने शाति की रूपरेखा वडी विलक्षणता से अकित की। प्राणिमात्र इससे सुरक्षित रह सकेगा। एक दूसरे के अधिकार को नष्ट नहीं कर सकेगा। वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अध्यात्म-रस का रसिक बने। वे स्वय एक चिंतनशील व्यक्ति थे। सदा ही मनन और चिंतन करते रहते थे।

कविवर बुधजन के समय मे हिन्दी साहित्य के पूर्ण वैभव का विकास हो रहा था। उनके जीवन का वहुभाग जयपुर मे व्यतीत हुआ था। प सदासुखजी, प वख्तावरमलजी, प तनसुखलालजी, प वृन्दावनजी, काशी प भागचन्दजी हसागढ, प. वख्तावरमलजी, प. दौलतरामजी द्वितीय आदि कवि के समकालीन विद्वान थे। नि सदेह कवि का साहित्यिक, व्यक्तिगत व सामाजिक अनुभूति का क्षेत्र विपुल था। सरलता, सादगी व धार्मिक रुचि बुधजन की रचनाओ मे प्रस्फुटित हुई। वे गृहस्थ थे, गृहस्थी मे रहते हुए भी उनकी वृत्ति निरीह एव सात्विकता की प्रतीक थी। कवि का सपूर्ण जीवन आध्यात्मिक था। पाडित्य प्रदर्शन से वे सर्वथा दूर थे। उन्होने साहित्य-साधना मे ही अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर

---

१ अनेकान्त वर्ष ११, किरण ६, पृ० २४३, वीर सेवा मन्दिर, दरियागज, दिल्ली।

दिया था। उनकी रचनाओ मे जीवन मे घटित दैहिक, दैविक, भौतिक विपत्तियो या अन्य किसी घटना का उल्लेख नही मिलता है।

अनेक जैन कवि ऐसे हुए हैं जो एक ओर सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श एव हिन्दी के विशिष्ट विद्वान थे, सिद्धान्त और तर्कशास्त्र के पारगामी थे, तो दूसरी ओर सहृदय भी कम न थे। उनका काव्य उनकी सहृदयता का प्रतीक है। बुधजन कवि की गणना भी ऐसे ही कवियो मे की जाती है।

बुधजन का सामाजिक एव व्यक्तिगत जीवन अन्य साहित्यकारो एव विद्वानो की भाति विवाद-ग्रस्त नही रहा, वे हिन्दी जैन साहित्य के निर्विवाद स्रष्टा थे। उन्होने जिस ढू ढारी भाषा को अपनी रचनाओ का माध्यम बनाया, वह हिन्दी के अत्यन्त निकट है, केवल क्रियापदो मे थोडा-सा परिवर्तन करने पर वह हिन्दी के अत्यन्त निकट ही है।

कवि की रचनाओ मे एव उनके व्यक्तित्व से यह स्पष्ट है कि वे प. बनारसीदास एव टोडरमलजी के बाद अन्य जैन साहित्यकारो मे अपना विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। कवि की कुछ रचनाए तो इतनी विस्तृत हैं कि उनपर स्वतन्त्र रूप से बहुत कुछ लिखा जा सकता है। उनके समय मे हिन्दी साहित्य के पूर्ण वैभव का विकास हो रहा था। कवि के जीवन का बहुभाग जयपुर मे व्यतीत हुआ, जयपुर उस समय अध्यात्म-विद्या का प्रमुख केन्द्र था, अत स्वभावत कवि के जीवन पर अध्यात्म विद्या की छाप थी।

४. कवि की धार्मिक वृत्ति

वास्तव मे जयपुर मे अनेक साहित्यकार हुए हैं और इसके लिए जयपुर अपना एक विशेष स्थान रखता है। कविवर बुधजन बचपन से ही अध्यात्म-रस की कविताए किया करते थे। वे सदा साहित्य-चितन मे लीन रहा करते थे, पर आज हमे उनके जीवन की रूपरेखा भलीभाति ज्ञात नही है। सभव है "कविवर बुधजन" आत्म-परिचय लिखना नही चाहते हो। इसमे उन्हे अभिमान की गध मालुम हुई हो, लेकिन इससे उनकी महानता मे कोई कमी नही आती। वे एक लब्ध-प्रतिष्ठ कवि थे, उन्होने जितना ही हमसे दूर रहने का प्रयत्न किया है, उनके अमर-काव्य ने उन्हे उतना ही अधिक हमारे सम्पर्क मे ला दिया है। वे शाति के एक सच्चे उपासक थे और इसीलिए उन्होने कविताए की। इसमे न तो आपका कोई प्रदर्शन है और न बाह्य आडम्बर ही। वे चिरशाति स्थापना के पोषक थे। उन्होने शाति की रूपरेखा बडी ही विलक्षणता से अकित की है।

कविवर बुधजन चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्म-रस का रसिक बने। कविवर चितनशील व्यक्ति थे और सदा मनन-चिंतन करते रहते थे। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का साक्षात्कार करने का उनका प्रयत्न था। उनमे अनुभूति की तीव्र व्यजना थी। अनुभूति की तीव्र अभिव्यजना ही कविता है।

"वुधजन" ने आत्म-प्रेरणा से प्रेरित होकर ही काव्य की रचना की थी। प्रदर्शन के लोभ से एक भी पद नही रचा है। आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है "वुधजन सतसई"। इसमे आपने ससार के प्रत्येक पहलू की व्यजना बडी खूवी से की है।

जैन पद सग्रह भक्ति रस के गीतो से ओत-प्रोत एक सकलन मात्र है जिसे गाकर कवि ने शाति का अनुभव किया होगा। आपके शब्द नपे-तुले होते थे। उनका एक-एक शब्द शाति और क्राति का ज्ञापन करने वाला होता था, लेकिन इस क्राति से कविवर चिरशाति की स्थापना करना चाहते थे। वे एक कुशल गायक थे, उनके गीतो मे शान्त-रस, प्रवाह और ओज की त्रिधारा मिलती है। महाकवि वुधजन एक सफल कलाकार थे। हिन्दी आप जैसे कलाकारो को पाकर धन्य हुई और आप जैसे प्रशान्त गायक के अमरगीत इस सघर्षमय ससार मे अपनी चिरशाति का आलाप सुना रहे हैं।

उनकी रचनाओ मे भक्ति की ऊची भावना, धार्मिक सजगता और आत्म-निवेदन विद्यमान है। आत्म परितोष के साथ लोक-हित सम्पन्न करना ही उनके काव्य का उद्देश्य है। भक्ति विन्हलता और विनम्र आत्म-समर्पण के कारण अभि-व्यजना शक्ति प्रवल है।

कवि द्वारा रचित पदो मे उनके जीवन और व्यक्तित्व के सम्वन्ध मे अनेक जानकारी की वातें प्राप्त होती हैं। जिनभक्त होने के साथ कवि आत्म-साधक भी हैं। सासारिक भोगो को नि सार समझना, साहित्य-सेवा और सरस्वती आराधना को जीवन का प्रमुख तत्व मानना कवि की विशेपताओ के अन्तर्गत है।

कवि की रचनाओ का अध्ययन करने से एक बात यह भी स्पष्ट हो जाती है कि उन्होने अपने अन्तर्जगत की अभिव्यक्ति अनूठे ढग से की है। कवि की रचनाए अध्यात्म प्रधान है। उनके पदो मे विराट कल्पना, अगाध दार्शनिकता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विशेषताए हैं।

५. रचनाकाल

कविवर वुधजन अध्यात्म के ज्ञाता थे। उनकी रचनाओं मे उनके वहुमुखी व्यक्तित्व, कृतित्व एव विपय चयन आदि दृष्टियो के दर्शन होते हैं। रचनाओ के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वे दार्शनिक विचारो को जन-जन तक पहुचाना चाहते थे। इसीलिए उन्होने अपनी सम्पूर्ण रचनाए जनभाषा मे लिखी। उनकी सम्पूर्ण रचनाओ मे से कुछ रचनाए अनूदित हैं। अनूदित रचनाओ मे भी कई विषयो पर कवि के मौलिक विचारो का परिचय मिलता है।

कविवर बुधजन की **प्रथम मौलिक रचना** है "छहढाला"। यह रचना वि० स० १८५६ की अक्षय तृतीया को पूर्ण हुई। जैसा कि कविवर अपनी इस रचना मे स्वय लिखते हैं —

"ठारा से पचास अधिक नव सवत् जाना।
तीज शुकल वैशाख, ढाल पट् शुभ उपजानो ॥[1]

कवि की द्वितीय वडी रचना है "बुधजन विलास"। इसमे विभिन्न राग-रागिनियो से युक्त पदो एव भजनो का समावेश है। इसमे सैद्धान्तिक विषयो की प्रधानता है और इसी कारण इस रचना का नाम बुधजन विलास रखा गया है। वि स. १८६० से १८७८ के मध्य लिखी हुई रचनाओ का इसमे सकलन है।

कवि की तृतीय वडी रचना है "बुधजन सतसई" जिसका रचनाकाल वि स. १८७९ है। ग्रथ की प्रशस्ति मे कविवर स्वय लिखते हैं .—

सवत् ठारा सै असी, एक वरसतैं घाट।
ज्येष्ठ कृष्ण रवि अष्टमी, हूवो सतसई पाठ ॥[2]

कवि की चतुर्थ वडी रचना है "तत्वार्थवोध" कवि ने इसे वि. स १८७९ मे पूर्ण किया था। कविवर इस ग्रथ की प्रशस्ति मे लिखते हैं —

सवत् ठारा से विषै, अधिक गुण्यासी वेश।
कार्तिक सुदि पचमी, पूरन ग्रथ असेस ॥[3]

कवि की पचम वडी रचना है "पचास्तिकाय"। इस रचना की प्रशस्ति मे कवि ने रचना काल का उल्लेख निम्न प्रकार किया है।

रामसिंह नृप जयपुर वसै, सुदि आसौज गुरुदिन दर्सें।
उगरणी से मे घटि हैं आठ, ता दिवस मे रच्यो पाठ ॥[4]

कवि की छटी रचना "वर्द्धमान पुराण सूचनिका है।" यह भट्टारक सकल कीर्ति द्वारा रचित सस्कृत ग्रथ के अनुकरण पर लिखी गई है। इसमे भगवान महावीर के अनेक भवो का भावपूर्ण वर्णन है। रचनाकाल वि० स० १८९५ अगहन कृष्णा तृतीया गुरुवार है। ग्रथ की प्रशस्ति मे कविवर लिखते हैं —

सकलकीर्ति मुनिरच्यो, वचनिका ताकी वाची।
तवैछन्द को रचन वुद्धि, बुधजन की राची ॥
उगनीसौ मे घाटि पाच सवत् वर अगहन।
कृष्ण तृतीया हुवो ग्रथ पूरन सुरगुरु दिन ॥[5]

---

१ बुधजन : छहढाला, पृ० ३९, सुषमा प्रेस, सतना प्रकाशन।
२ बुधजन . बुधजन सतसई, पद्य क्रमाक ६९६, पृ० १४५, प्र० स०, सनावद।
३ बुधजन : तत्वार्थवोध, पृ० स० २७७ ए० स० ११४, प्रकाशन कन्हैयालाल गः वाल, लश्कर।
४. बुधजन . पचास्तिकाय भाषा, हस्तलिखित प्रति, दि० जैन मन्दिर, जयपुर।
५ बुधजन : वर्द्धमान पुराण सूचनिकाः पद्य सं. ७७-७८ हस्तलिखित प्रति दि० जैन मन्दिर, जयपुर।

कवि की अन्तिम रचना "योगसार भाषा" है। इसका रचना काल वि० स० १८९५ श्रावण शुक्ला तृतीया मगलवार है। यह कवि की अन्तिम रचना प्रतीत होती है क्योंकि इसके बाद की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ की प्रशस्ति में कवि ने रचना काल का उल्लेख इस प्रकार किया है —

ठारासो पिच्चानवे सवत् सावन मास।
तीज शुक्ल मंगल दिवस, भाषा हुई प्रकाश[1] ॥

डा० नेमीचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य आरा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा" भाग–४ मे बुधजन का साहित्यिक-जीवन वि० स० १८७१ से वि० स० १८९२ तक स्वीकार किया है। यह सभवत इसलिए कि डॉ० शास्त्री ने कवि की सम्पूर्ण रचनाओ के अवलोकन की कृपा नही की। उन्होने कवि की केवल ६ रचनाओ का ही उल्लेख किया है, जबकि कवि की अब तक १७ रचनाए उपलब्ध हैं। कविवर की छहढाला की रचना वि० स० १८५९ मे हो चुकी थी। इसके पूर्व ही वि० स० १८५० मे विमल जिनेश्वर की विनती रची गई थी। स्वय कविवर के शब्दो मे —

ठारा सै पचास माह सुदि पूरन मासी।
बुधजन की अरदास, कीजै सुरपुरवासी ॥

यह विनती "बुधजन विलास" मे सग्रहीत है।

वि० स० १८७१ मे जिनोपकार स्मरण स्तोत्र (पाना २०)

वि० स० १८६६ मे दोषवावनी (पाना २१)

इसके भी पूर्व वे वि० स० १८३५ मे नन्दीश्वर जयमाला की कविवर रचना कर चुके थे।

उनकी एक रचना और उपलब्ध है, जिसका नाम "वदना जखडी" है। इसमे रचना काल का उल्लेख नही मिलता, तथापि इसका रचना काल वि० स० १८५५ अनुमानित है।

"इष्ट छत्तीसी" यह भी कवि की सुन्दर रचना है। इसमें पंच परमेष्ठी के गुणो का स्मरण किया गया है। इसमे रचना काल का उल्लेख नही है।

इस प्रकार कविवर बुधजन की १७ रचनाए उपलब्ध हैं। अत कविवर बुधजन का साहित्यिक रचना काल वि० स० १८३५ से १८९५ तक रचनाओं के आधार पर निश्चित होता है।

---

१ बुधजन योगसार भाषा. गुटका संख्या २९९१ पृ० स० १७, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

६. देहावसान एवं विशिष्ट व्यक्तित्व

"यदि हम किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीरण विश्लेषरण करना चाहते हैं तो यह आवश्यक होगा कि उसकी कार्य-प्रवृत्तियो का हमे पूर्ण ज्ञान हो। क्योकि व्यक्ति के विचार उसकी विभिन्न विषयो मे लगने वाली प्रवृत्तिया एव करने योग्य कार्यों का समूह ही व्यक्तित्व है। विचारो से हमे व्यक्ति के हृदय का ज्ञान होता है और प्रवृत्तियो से उसके चरित्र का बोध होता है। जैन विद्वानों ने जैन सस्कृति के सरक्षरण में अभूतपूर्व योगदान दिया है और यह आवश्यक भी है क्योंकि सस्कृति के विना कोई जाति जीवित नही रह सकती।"[1]

"कविवर बुधजन" के व्यक्तित्व का मानदण्ड है उनका आध्यात्मिक प्रेम, सहिष्णुता, उदारता एव निर्माणात्मक कार्यों के सम्पादन की क्षमता। मैंने कवि के इन्ही गुणो से प्रभावित होकर एव स्वय यह जानकर कि आपकी "देव दर्शन स्तुति" जिसका प्रारम्भ "प्रभु पतित पावन" से होता है, एक अत्यन्त भावपूर्ण स्तुति है। कवि की यह छोटी-सी स्तुति समग्र जैन समाज मे अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसकी लोकप्रियता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि यह समाज के आवाल वृद्ध के कठ पर है। शायद ही ऐसा कोई जैन बालक या बालिका होगी जिसे "बुधजन" की यह स्तुति कण्ठस्थ न हो।

"कविवर बुधजन" की सफलता का कारण, उनकी नि स्वार्थ सेवा और परोपकारशीलता का भाव है—धन नही। वे परम नैष्ठिक और धर्मात्मा व्यक्ति थे। बडी ही दृढता के साथ श्रावकाचार का पालन करते थे। वे अत्यन्त ही सादे किन्तु सबल व्यक्तित्व के धनी, बहु शास्त्रविद्, प्रतिभाशाली, विद्वान, गभीर प्रकृति के गहन आध्यात्मिक विचारक, आत्मानुभवी और आत्म-निष्ठ के रूप मे प्रतिष्ठित हुए हैं।

कविवर का देहावसान जयपुर नगर मे वि० स १८९५ के बाद हुआ, क्योकि १८९५ के बाद की उनकी कोई रचना उपलब्ध नही है। कृतियो के आधार पर कवि का साहित्यिक जीवन ६० वर्ष निश्चित होता है।

---

१ पं कैलाशचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री : गुरुगोपालदास वरैया स्मृति ग्रंथ, अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद् सागर, चैत्र कृष्णा १२ वि० सं० २०३३।

२-बुधजन द्वारा निबद्ध कृतियां एवं उनका परिचय

कविवर बुधजन की कृतियां कालक्रमानुसार निम्न प्रकार उपलब्ध होती हैं—

१	नदीश्वर जयमाला	वि. स	१८३५	इसका बुधजन विलास मे सग्रह किया गया है।
२.	विमल जिनेश्वर स्तुति	,,	१८५०	
३	वंदना जखडी	,,	१८५५	
४	छहढाला (षटपाठ)		१८५६	
५	बुधजन सतसई	,,	१८७६	
६	तत्त्वार्थबोध	,,	१८७६	
७	पचास्तिकाय भाषा	,,	१८६२	
८	वर्धमान पुराण सूचनिका	,,	१८६५	बुधजन विलास मे सग्रहीत
६	योगसार भाषा	,,	१८६५	
१०	बुधजन विलास		—	(जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्तिम समय तक छन्दोबद्द रचनाए)
११	पद संग्रह		—	(सवत् १८०० से लेकर १८६१ तक)
१२	इष्ट छत्तीसी		—	
१३,	सबोध पचासिका		—	
१४	मृत्युमहोत्सव		—	
१५	पचकल्याणक पूजा		—	
१६	पच परमेष्ठी पजा		—	
१७	सम्मेदशिखर पूजा		—	

१. नंदीश्वर जयमाला वि. सं. १८३५

जैन दर्शन के अनुसार

इस पृथ्वी पर असख्यात द्वीप समुद्र हैं। ढाई द्वीप तक मनुष्यो का निवास है। उसके आगे मनुष्यो का गमन नही हैं। आठवें द्वीप का नाम नदीश्वर द्वीप है। यहा पर अकृत्रिम जिन चैत्यालय व उनमे अकृत्रिम जिन प्रतिमाए हैं। वहां पर अष्टान्हिका पर्व मे धार्मिक प्रकृति के देव–देवियो जिनेन्द्र प्रतिमाओ की भक्तिभाव से पूजा करते हैं। चौसठ लाख, इत्यादि अनेक जाति के देव वहा जाकर पूजा करते है।

यह नदीश्वर द्वीप नदीश्वर समुद्र से वेष्टित है। इस द्वीप का विस्तार १६३८४०००००० एक सौ त्रेसठ करोड चौरासी लाख योजन है। इस द्वीप की वाह्य परिधि दो हज़ार वहत्तर करोड ततीस लाख चौवन हजार एक सौ नव्वे योजन है। इसकी पूर्व दिशा मे अजनगिरि पर्वत है। एक अजनगिरि, चार दधिमुख, आठ रतिकर इन तेरह पर्वतो के शिखर पर उत्तम रत्नमय एक एक जिनेन्द्र भवन स्थित है। ये मन्दिर १०० योजन लम्बे, ४० योजन चौडे, ७५ योजन ऊचे हैं। इन जिन मदिरो मे देवतागण जल गध, अक्षत, पुष्प आदि द्रव्यो से वडी भक्ति से पूजा, अर्चा, स्तुति आदि करते हैं। पूर्व दिशा की भाति शेष तीन दिशाओ मे स्थित पर्वतो पर भी इसी प्रकार अकृत्रिम जिन मदिर हैं व उनमे अकृत्रिम जिन प्रतिमाए विराजमान हैं।

कविवर वुधजन भक्तिपूर्वक इन अकृत्रिम जिन चैत्यालयो की वदना करते हुए अपनी लघुता प्रगट करते हैं—

"मैं मदमति उन अकृत्रिम जिन चैत्यालयो की वदना करता हू मुझ मे वह शक्ति नही है कि मैं उनका विस्तृत वर्णन कर सकू। मुझ मे सुन्दर छन्द निर्माण

की योग्यता नही है। अत विद्वान पाठक मुझपर दया करें।[1]

रचना के अन्त मे कविवर बुधजन रचनाकाल का उल्लेख करते हुए कहते हैं —

मैंने यह रचना वि० स० १८३५ चैत्र शुक्ला चतुर्थी, शनिवार को पूर्ण की[2] प्रस्तुत रचना बुधजन विलास मे सग्रहीत है।

२. विमल जिनेश्वर की स्तुति वि. सं. १८५०

कविवर बुधजन की यह एक अत्यन्त लघुकाय रचना है। जैन मान्यतानुसार धर्म के प्रबल प्रचारक चतुर्विशति तीर्थंकर माने गये हैं। उनमे एक नाम विमल-नाथ का है। अत्यन्त भाव-विभोर हो कवि विमल जिनेश्वर की स्तुति करते हुए कहते हैं —

हे विमल जिन ! मैं आपके चरणो का ध्यान करता हू। मैं आगम के अनुसार वर्णन करता हू। पर आपके गुणो का वर्णन तो बडे-बडे इन्द्र, नरेन्द्र, फणीन्द्र आदि भी करते हुए नहीं अघाते फिर मेरी तो सामर्थ्य ही क्या है ? हे प्रभु ! आप राजपुत्र हैं। पर युवावस्था को प्राप्त होते ही आपने दीक्षा धारण की। कुछ समय बाद आपको पूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) की प्राप्ति हुई। पश्चात् उत्कृष्ट ध्यान के बल पर आपने सम्मेद शिखर (पार्श्वनाथ–हिल) पर्वत से मुक्ति प्राप्त की। आपकी बहिरग विभूति तो अपार थी पर आपका मन उसमे नही रमा व आपने ध्यान के बल पर अपनी अन्तरग विभूति (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनत सुख, अनन्त बल) प्रगट कर ली। धन्य है ! वह सम्मेद शिखर पर्वत जो आपके चरण स्पर्श से तीर्थ बन गया।

---

१ बन्दौं भवि मदिर जिन, बैन खीन मति भाणे दी।
वरण अरथ बल छंद हीन, दया धरो सुनि अघ करि छीन ॥
बुधजन., बुधजन विलास–नदीश्वर जयमाला, पद्य स १९, पृ. स २६ हस्तलिखित प्रति से।

२ ठारासे पैंतीस को साल चौथि शनिवार।
चैत जन्म जयमाल को, बधीचन्द हियवार ॥
बुधजन, बुधजन विलास, (नदीश्वर जयमाला) पद्य स २० पृ सख्या २६ हस्तलिखित प्रति से।

"अपनी लघुता प्रकट करते हुए कवि लिखते हैं—हे प्रभु ! मैं आपके पवित्र चरणों मे अपना मस्तक झुकाता हूं । आप कृपया मेरी प्रार्थना सुन लीजिए । मेरी प्रार्थना यही है कि आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें जो मुझे स्वर्ग-मोक्ष के सुखों को प्राप्त करा दे । कवि ने रचना के अन्त मे रचनाकाल वि० स० १८५० माह सुदी पूनम दिया है ।[1]

३. वन्दना जखड़ी वि. सं. १८५५

कविवर बुधजन की यह हस्तलिखित कृति श्री दि० जैन लूणकरण पाड्या मंदिर, जयपुर से प्राप्त हुई थी । यह लघुकाय कृति कवि की मौलिक रचना है । इसमे कवि ने निर्वाण काण्ड के वर्णन की भांति अकृत्रिम जिन चैत्यालयो, भारत के समस्त जैन तीर्थ क्षेत्रो, उन तीर्थ क्षेत्रो से तप द्वारा निर्वाण प्राप्त करने वाले यतियो, जयधवल, समयसार, पचास्तिकाय गोम्मटसार, त्रिलोकसारादि ग्रन्थो की भक्ति पूर्वक वदना की है, तथा कर्मो की जकडन से छूटे अरहन्त, सिद्ध एव छूटने का प्रयास करने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पंच परमेष्ठियो की भी वदना की है एव जहा जहा सिद्ध क्षेत्र व अतिशय क्षेत्र हैं, उनका भक्ति-भाव से नाम-स्मरण किया है ।

यह रचना अत्यन्त सरल भाषा मे लिखी गई है । यह प्रतिदिन प्रात काल पाठ करने योग्य है । कवि ने रचना का प्रारंभ, चतुर्विशति तीर्थंकरो एव विद्यमान वीस तीर्थङ्करो की स्तुति से किया है ।[2] इस रचना मे जहा जहां से जितने जीव सिद्ध पद को प्राप्त हुए हैं उनकी भी वदना की गई है । जैन भक्ति साहित्य मे प्राचीनकाल

---

१. सुनिये विनती नाथ चरणं सीस नमाऊं ।
ठारासे पचास माह सुदि पूरनवासी ।
बुधजन की अरदास कीजे सुरपुर वासी ।।17।।
बुधजनः बुधजन विलास (विमल जिनेश्वर की स्तुति) पाना 18 पृष्ठ सं 9-17 हस्तलिखित प्रति से ।

२ आदि तीर्थङ्कर प्रथमहिं वन्दों, वर्द्धमान गुण गाऊं जी ।
अजितआदि पारस जिनवरलों, बीस दोय मन लाऊं जी ।।
सीमंधर आदिक तीर्थङ्कर, विदेह क्षेत्र के माहीं जी ।
सकल तीर्थङ्कर गुणगण गाऊं, विरहमान मन लाऊं जी ।।
बुधजन : वंदना जखड़ी, पद्य स १–२, हस्तलिखित प्रति, दि. जैन लूणकरण मंदिर, जयपुर ।

से जखडिया लिखी जाती रही हैं। बुधजन कृत प्रस्तुत जखडी मे केवल छत्तीस पद्य हैं।

जखडी का अर्थ है जकडा हुआ। जखडी एक प्रकार का सम्बोधन है। हिन्दी के अनेक जैन कवियो ने अपने-अपने ढग से ससारी जीवो को सबोधित करने के लिए जखडियो की रचना की। जिनमे भूधरदास, दौलतराम, रूपचन्द जैसे कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

"रचना के अन्त मे कवि ने अपने नाम, स्थान व गुरु के नाम का उल्लेख किया है।[1]

४. छहढाला वि. सं. १८५९

यह रचना कवि की एक मौलिक-कृति है। यह छह ढालो मे निबद्ध है। सामान्यत ढाल शब्द काव्य के लिए रूढ अर्थ मे प्रयोग किया जाता रहा है। जिस प्रकार साहित्य मे फागु, विलास, रास आदि शब्द प्रचलित रहे हैं, उसी प्रकार ढाल शब्द का भी प्रचलन रहा है। यह शब्द ध्वन्यर्थ रूप मे रास काव्य की भाति गेय रचना के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है। छहढाला के अतिरिक्त श्रीपाल ढाल, मृगावती ढाल आदि काव्य रचनाए भी उल्लेखनीय हैं। इसके प्रत्येक छन्द को पढते समय एक विशेष प्रकार के प्रवाह का अनुभव होता है। इसको छन्द की गति या चाल या ढाल कहते हैं। छहढाला के छह प्रकरणो मे से प्रत्येक प्रकरण की अलग-अलग छन्दो मे रचना की गई है और पूर्ण रचना मे छह प्रकार के छन्दो की ढाल (चाल) होने से इसको छहढाला कहा गया है।

कविवर बुधजन की यह रचना दौलतराम की छहढाला का प्रेरणा स्रोत है। ये वे दौलतराम नही है, जिनका उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पद्मपुराण के निर्माता के रूप में किया है।[2] इनका 'छहढाला' नाम इतना लोकप्रिय हुआ कि

---

१ नगर भौरासें जखडी कीनी, सकल भव्यमन भावैजी।
दास बिहारी (बुधजन) विनती गावै, नामलेत सुख पावे जी॥

बुधजन : वदना जखडी, पद्य संख्या ३६, हस्तलिखित प्रति दि जैन लूणकरण पाड्या मदिर, जयपुर।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, तृतीय सस्करण। पृ. सख्या ४११, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी वि स २००३।

द्यानतराय की पचासिका और दौलतराम का तत्व-उपदेश भी छहढाला कहलाने लगे। सर्व प्रथम कविवर द्यानतराय ने वि स १७१८ कार्तिक मास की त्रयोदशी को इस प्रकार की छह भागो मे विभक्त साधारण उपदेशात्मक रचना की थी तथा कुल ५० छन्द होने से उसका नाम पचासिका रखा था, जैसा कि ग्रन्थ के अतिम छदो से ज्ञात होता है।[1] इसके बाद कविवर बुधजन ने वैसाख शुक्ल तृतीया (अक्षय-तृतीया) वि स १८५९ मे विषय के क्रमानुसार प्रकरण वद्ध करते हुए इस प्रकार की एक रचना की थी तथा उसका नाम 'छहढाला' रखा था। यह रचना प द्यानतराय की रचना से विषय-वर्णन मे अधिक विस्तृत है।

इसके पश्चात् कवि दौलतराम ने 'कविवर बुधजन' की छहढाला से प्रेरणा प्राप्त कर शिल्प-कला के कौशल के साथ सर्वागपूर्ण रचना प्रस्तुत की। उनकी इस रचना मे बुधजन की भाषा और भावो की छाया यत्र-तत्र दिखाई देती है। श्री दौलतराम ने स्वय अपनी रचना के अतिम-छद मे निर्देश भी किया है। उनके ही शब्दो मे —

मुझ प दौलतराम ने कवि बुधजन 'छहढाला' का आश्रय लेकर वि स १८९१ की अक्षय तृतीया को यह ग्रन्थ पूर्ण किया।[3] सामान्यत. यह स्वीकार कर लिया गया है कि दौलतराम की 'छहढाला' के पूर्व कविवर बुधजन की छहढाला आदर्श रूप मे थी।[4] बुधजन की यह रचना सुन्दर और महत्वपूर्ण है। पहले सर्वत्र इसी का पठन-पाठन होता था। इस रचना ने अनेक व्यक्तियो पर प्रभाव डालकर उनके जीवन को बदलने और अध्यात्मिकता की ओर झुकाने मे बड़ा योग दिया है। कविवर बुधजन और कविवर दौलतराम, इन दोनो की छहढाला आध्यात्मिक जैन साहित्य की अनुपम निधि है। बड़े-बडे ग्रन्थो का सार इनमे भर दिया गया है।

कविवर बुधजन 'छहढाला' की पहली ढाल मे वर्णित वैराग्य वर्द्धिनी बारह-भावनाए, भाव और लय की मधुरता दोनो दृष्टियो से बढिया हैं। भाषा और भाव

---

१. क्षय उपशम बलसो कहे, द्यानत अक्षर सेह।
देख सुबोध पचासिका, बुधजन शुद्ध करेहु॥
कवि द्यानतराय . छहढाला, पद्य सख्या ४७, पृ. स १६, प्र संस्करण शान्तिवीर नगर, महावीरजी।

३. इकनववसु इक वर्ष की, तीज शुक्ल बैसाख।
कर्यो तत्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाष॥
दौलतराम छहढाला, पद्य स १६, पृ स ५२, सरल जैन ग्रन्थ भडार, जबलपुर प्रकाशन।

४ हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री : सन्मति सदेश, वर्ष १३, अक ९ सितम्बर १९६८।

की दृष्टि से यह रचना अनुपम है। इसकी भाषा ब्रज-मिश्रित खडी बोली है। कहीं-कही राजस्थानी भाषा के शब्द भी आ गये हैं। भाषा-सरल, स्वाभाविक, मुहावरेदार और हृदय-स्पर्शी है। अध्यात्म जैसे विषय को इतने सरल और रोचक ढग से प्रस्तुत करना, कवि की बहुत बडी विशेषता है। इस पुस्तक मे वैराग्य-वर्द्धक, शान्त रस ही प्रधान है तथा स्वाभाविक रूप से आए हुए उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं। इसमे चौपाई, नरेन्द्र छन्द, पद्धरिछन्द, सोरठा, बालछद, रालाछन्द इन छन्दो का प्रयोग किया गया है। इसकी विविध छन्द युक्त पदावली पढने मे बहुत रुचिकर लगती है तथा सरलता से अर्थ स्पष्ट रहने से बडा आनन्द आता है और शान्ति मिलती है। वास्तव मे यह रचना सभी दृष्टियो से अनूठी है। कवि की यह रचना वि स १८५६ की वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन पूर्ण हुई। कविवर बुधजन की इस रचना के ठीक ३२ वर्ष बाद कवि दौलतराम (द्वितीय) ने छहढाला की रचना की थी।

हिन्दी जैन साहित्य के कवियो ने अध्यात्म-रस से भरपूर ऐसी अनको रचनाए की हैं। प बनारसीदास, प भागचन्द, द्यानतराय, बुधजन, दौलतराम आदि कवियो ने अपनी पद रचनाओ मे अध्यात्म रस की मधुर-धारा बहाई है, उनमे से यह एक छहढाला है, जो सुगम शैली से वीतराग-विज्ञान का बोध कराने वाली है। बुधजन की छहढाला मे एव परवर्ती हिन्दी के जैन कवि दौलतराम (द्वितीय) की छहढाला नामक रचना मे क्या साम्य पाया जाता है; यह निम्न लिखित बातो से स्पष्ट है। यथा–

१ बुधजनकृत छहढाला का निर्माण वि स. 1859 वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया) को हुआ था, जबकि दौलतराम कृत "छहढाला" का निर्माण उसके ठीक 32 वर्ष बाद वि स 1891 वैशाख शुक्ला ततीया (अक्षय तृतीया) को हुआ था।

2 दोनो रचनाओ की छहो ढालो मे पर्याप्त साम्य है।

3 दोनो का आधार द्वादशानुप्रेक्षा आदि प्राचीन ग्रन्थ हैं।

४. दोनो रचनाओ मे विषय-चयन का क्रम निम्न प्रकार है–

बुधजन कृत छहढाला की प्रथम ढाल मे बारह भावनाओ का वर्णन है। द्वितीय-ढाल मे जीवो के चतुर्गति मे भ्रमण सम्बन्धी दु खो का वर्णन है। तृतीय ढाल मे काल लब्धि और सम्यग्दृष्टि के भावो का वर्णन है। चतुर्थ ढाल मे अष्टाग निरूपण है। पचम ढाल मे श्रावक-धर्म का वर्णन है। छठी ढाल मे मुनि धर्म का वर्णन है और जगत् के जीवो को सम्बोधन है।

दौलतराम कृत "छहढाला" की प्रथम ढाल मे जीवो के ससार परावर्तन के साथ चारो गतियो के दु खो का वर्णन है एव ससारी जनो की गुरु की शिक्षा समझाई गई है। द्वितीय ढाल मे ससार-भ्रमण के कारण भूत गृहीत, अगृही

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एव मिथ्याचरित्र के स्वरूप का वर्णन है। इन तीनो को छोडने एव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र को अपनाने की प्रेरणा है। तृतीय ढाल मे आत्मा का सुख वतलाकर उसके उपाय रूप से सम्यग्दर्शन का सांगोपाग निरूपण है और इसे ही धर्म का मूल कहा है। चतुर्थ ढाल मे—व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक् चारित्र का वर्णन है। इसमे मुख्यत सम्यक्त्वी श्रावक के विश्वास का वर्णन है। पाचवी ढाल मे जगत्-काय एव भोगो से विरक्त होने के लिए बारह भावनाओ का वर्णन एवं उनके चितन करने का उल्लेख है। इसमे अणुवृती श्रावक की दैनिक चर्या तथा उसके वृतो व जीव मोक्ष-प्राप्ति की ओर किस प्रकार अग्रसर होता है-इनका वर्णन है। छठी ढाल मे मुनि धर्म एव स्वरूपाचरण-चारित्र का वर्णन है एव जीवो को परम पद की प्राप्ति का उपाय वताया है। समय रहते अपना कल्याण कर लेना चाहिए ऐसी शिक्षा जीवो को दी गई है।

५— बुधजन कृत छहढाला की अपेक्षा दौलतराम कृत छहढाला का वर्णन क्रम अधिक व्यवस्थित है, क्योकि इसमे पहले चतुर्गति के दु खो का वर्णन है तथा चतुर्गति मे भ्रमण के कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का वर्णन है।

६— बुधजन कृत छहढाला मे मोक्ष के कारण भूत रत्नत्रय का उल्लेख है। तथापि उसमे सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान का सयुक्त रूप से एव सम्यक्चारित्र का पृथक से वर्णन किया गया है।

७— दोनो कवियों की रचनाओ मे केवल दो छन्दो को छोडकर शेप मे पूरा-पूरा साम्य है। छन्दो की तालिका निम्न प्रकार है—

बुधजन कृत छहढाला के छन्द	दौलतराम कृत छहढाला के छन्द
प्रथम ढाल मे— चौपाई छन्द	प्रथम ढाल मे—चौपाई छन्द
द्वितीय ढाल मे—जोगीरासा छन्द	द्वितीय ढाल में—पद्धडि छन्द
तृतीय ढाल मे—पद्धडि छन्द	तृतीय ढाल मे—जोगीरासा
चतुर्थ ढाल मे - सोरठा छन्द	चतुर्थ ढाल में—ढोला
पचम ढाल मे—चाल छन्द	पाचवी ढाल मे—चाल छन्द
षष्ठ ढाल मे—अहोजगत् गुरु की चाल	छठी ढाल मे—हरिगीतिका

८— बुधजन कृत "छहढाला" मे जैसा आत्म-उदबोधन है, वैसा दौलतराम कृत "छहढाला" मे नही मिलता। उदाहरण के लिए—

जब चितवत अपने मांहि आप, हूं चिदानन्द नहिं पुण्य-पाप ।
मेरा नाही है राग-भाव, ये तो विधिवश उपजे विभाव[1] ।।

९— छठी ढाल का प्रारम्भ करते हुए "बुधजन" ने मुनि-दीक्षा लेने वाले व्यक्ति का जो सुन्दर चित्र खींचा है वह पढने योग्य है । ग्रन्थ की समाप्ति करते हुए बुधजन ने भव्य-जीवों का ध्यान एक बार फिर सम्यक्त्व की ओर आकर्षित किया है 'सम्यग्दर्शन सहित नर्क मे रहना अच्छा है परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना देव व राजा आदि की मनुष्य पर्याय भी बुरी है ।[2]' कितना भावपूर्ण सबोधन है । पहली ढाल में जो बारह-भावनाओ का वर्णन किया है । वह तो निश्चय और व्यवहार दोनो दृष्टियो से अनुपम है । आत्म-हितैषियो द्वारा मनन-पठन योग्य है ।

१०— दोनो ही कवियो ने अपनी-अपनी छहढाला नामक रचनाओ मे सम्पूर्ण जैन वाङ्मय का सार भरकर "गागर मे सागर" भरने की उक्ति को चरितार्थ कर दिया है । इस दृष्टि से ये दोनो अनुपम कृतिया है । जो व्यक्ति और समाज दोनो को माजकर उनमे शक्ति के आध्यात्मिक स्रोत उन्मुक्त कर सकती है ।

श्री दि जैन मन्दिर लूणकरण पांड्या पचेवर का रास्ता, जयपुर के ग्रन्थ भंडार का अवलोकन करते समय द्यानतराय, बुधजन व दौलतराम के अतिरिक्त प काशीराम (किशन पडित) की छहढाला भी हमारे देखने मे आई थी । इस रचना का भली भांति अवलोकन करने पर विदित हुआ कि साहित्यिक दृष्टि से यह रचना उत्तम कोटि की नही है । रचना अत्यन्त लघुकाय है । कवि ने रचनाकाल वि स १८५२ दिया है । ये बुधजन कवि के समकालीन ही हैं । जो भी हो इन चारो कवियो की कृतियों मे सर्वाधिक ख्याति दौलतराम कृत छहढाला की है । दूसरे नम्बर पर "बुधजन" की छहढाला आती है । शेष दो रचनाए प्रसिद्धि को प्राप्त न हो सकीं । फिर भी यह निश्चित है कि ढाल के रूप मे काव्य-रचना उस युग की एक विशेष काव्य-विधा थी ।

१— बुधजन : छहढाला, तृतीय ढाल, पृ सख्या २, सख्या पृ ३४, सुषमा प्रेस सतना प्रकाशन ।

२— भला नरक का वास, सहित समकित जे पाता ।
अरे बने जे देव, नृपति, मिथ्यामत माता ।।

बुधजन : छहढाला, छठी ढाल, पद्य स. ८, पृ सं. ३८ सुषमा प्रेस सतना प्रकाशन ।

कविवर बुधजन ने अपनी इस कृति की प्रत्येक ढाल के अन्त मे अपने नाम का उल्लेख किया है। ग्रन्थ के अन्त मे कवि ने अपने नाम व रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार किया है —

"हे बुधजन तू अपने चित्त मे करोडो वातो की एक वात यह रखना कि मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक सदा जिनमत की शरण ग्रहण करना ही प्रत्येक श्रावक का कर्त्तव्य है।[1]

तीनो छहढाला ग्रन्थो के मगलाचरण की आश्चर्य कारिणी समानता इस वात की प्रतीक है कि तीनो ग्रन्थो के रचयिता एक ही परम-तत्व-वीतरागता के उपासक थे।

५—बुधजन विलास

बुधजन विलास मे कवि की स्फुट कविताओ एव पदो आदि का संकलन है। इन्हे पढकर प्रत्येक सहृदय व्यक्ति आत्मविभोर हो उठता है। इनका संकलन वि सं १८९२ मे किया गया था। कृति के अवलोकन से विदित होता है कि कविता पर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी काव्य कला हिन्दी साहित्य-ससार मे निराली छटा को लिये हुए हैं।

कवि की रचना प्राय वैराग्य रस से परिपूर्ण है और बडी ही रसली एव मन-मोहक हैं। इसको पढते ही चित्त प्रसन्न हो उठता है और छोडने को जी नहीं चाहता। इसके अध्ययन और तदनुकूल प्रवृत्ति करने से मानव—जीवन बहुत कुछ ऊचा उठ सकता है। वास्तव मे कविवर बुधजन की काव्य—कला का विशुद्ध लक्ष्य आत्म—कल्याण के साथ-साथ लोक की सच्ची सेवा करना रहा है। जो अज्ञानी मानव पाप पक मे निमग्न है, विषय—वासना के दास हैं, तथा आत्मपतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। उन्हे सम्बोधित करके सन्मार्ग पर लगाने का कवि ने भरसक प्रयत्न किया है। कविता के उच्चादर्श का पता बुधजन—विलास की कविताओ के अध्ययन से

1— कोटि बात की बात अरे बुधजन चित धरना।
मन व तन शुद्ध होय गहो जिन मत का सरना॥
ठारासे पचास अधिक नव संवत् जानो।
तीज शुक्ल वैशाख ढालषट् शुभउपजानो॥
बुधजनः छहढाला, छठीढाल, पद्य सख्या १०, पृ. सं. ३६ सुषमा प्रेस सतना प्रकाशन

सहज मे ही चल जाता है। उनमे लोक-रजन या ख्याति–लाभ–पूजादि को कोई स्थान नही है।

अलकार तथा प्रसाद गुण से विशिष्ट होने के साथ–साथ उक्त रचना सरल, सरस एव गम्भीर अर्थ को लिये हुए हैं। कविता मे कही–कही उर्दू, गुजराती अपभ्र श, राजस्थानी, ब्रज आदि भाषाओ के शब्दो का यथोचित समावेश किया गया है। इसमे भिन्न-भिन्न विषयो पर लिखी गई कविताओ का सुन्दर सकलन है। इसमे निम्नलिखित रचनाए सग्रहीत हैं, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं—[1]

१	विचार पच्चीसी	—	२५ पद
२	दर्शन पच्चीसी	—	२५ पद
३	अरहत देव की स्तुति देव दर्शन स्तुति	—	४ पद
४	दर्शनाष्टक	—	८ पद
५	ढाल त्रिभुवन गुर स्वामी की	—	७ पद
६	पूजा के दो	—	६ पद
७	दर्शन के पद	—	८ पद
८	ढाल मगल की	—	४ पद
९	विनती पद	—	१२ पद
१०	विबुध, छत्तीसी	—	३६ पद
११	द्वादशानुप्रेक्षा	—	१४ पद
१२	शुद्धात्मा–जखडी	—	८ पद
१३	सम्यकत्व–भावना	—	१० पद (कवि रइधू की सम्मत्त भावना का हिन्दी पद्यानुवाद।
१४	सरस्वती पूजा	—	१८ पद
१५	पूजाष्टक	—	९ पद
१६	शारदाष्टक	—	८ पद
१७	गुरु विनती	—	१४ पद
१८	चौवीस ठाणा	—	५० पद
१९	स्फुट पद	—	१० पद
२०	जिनोपकार स्मरण स्तोत्र	—	२० पद

---

१ — बुधजन. बुधजन विलास शास्त्र भण्डार, दि० जैन मन्दिर, सोनकच्छ म प्र वि० स. १९६६, हस्तलिखित प्रति।

२१,	दोष बावनी (खोटी गति जाने की विनती	—	५२ पद
२२	उपदेश छत्तीसी	—	३६ पद
२३	वचन–वत्तीसा	—	३२ पद
२४	वोध–द्वादशी	—	१२ पद
२५	ज्ञान–पच्चीसी	—	२५ पद
२६	नदीश्वर–जयमाला भाषा	—	२१ पद
२७	विराग भावना	—	५२ पद
२८	पद	—	२३५ पद

बुधजन विलास मे प्राप्त उपर्युक्त विषय श्री दि० जैन मन्दिर सोनकच्छ (म प्र) से प्राप्त हस्त-लिखित प्रति के आधार से उल्लिखित हैं। उक्त ग्रन्थ के लिपि कर्ता वृजलाल हैं। हस्तलिखित ग्रन्थ सवत् १९६६ मगसिर सुदी दसवी को लिखकर पूर्ण हुआ था। बुधजन-विलास की ही एक हस्त–लिखित प्रति हुकुमचन्द जी एम. ए के सौजन्य से दि जैन मारवाडी मन्दिर ट्रस्ट से प्राप्त हुई थी। इसमे उपर्युक्त विषयो के अतिरिक्त कुछ विषय और भी हैं वे हैं—[1]

१ पूजन पहली पढने के दोहा
२ समकित जखडी
३ लघु श्रावकाचार वत्तीसी

इस प्रकार कुल ३१ सख्यक सक्षिप्त रचनाओं का सुन्दर सकलन बुधजन विलास मे दृष्टि गोचर होता है। इनमे कुछ रचनाए तो इतनी बडी हैं कि वे स्वय एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे सकलित की जा सकती हैं। बुधजन विलास की कविताए काव्य-कला की दृष्टि से सपूर्ण रीतियो, शब्दालकार एवं अर्थालकार से परिपूर्ण हैं। इसमे स्थान-स्थान पर अनुप्रास और यमक की झलक भी दिखाई देती है। छन्दो की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इसमे लगभग ५२ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं –

(१) सोरठा (2) दोहा (३) ढाल त्रिभुवन गुरुस्वामी की (४) ढाल करूनाल्योजी की (५) त्रिभगी छन्द (६) ढाल मगल की (७) ढाल नोमग की (८) चौपाई (९) गीता छन्द (१०) पद्धडि छन्द (११) चौपाई छन्द (१२) मरहठी छन्द (१३) कुण्डलिया (१४) अडिल्ल (१५) सम्यकज जोगिता (१६) राग भैरू (१७) भैरू की वंचरी (१८) भैरवी (१९) षट्ताल तिताली (२०) रागपढा (२१) राग रामकली (२२) राग ललित (२३) विलावल कनडी (२४) अलहिया

1. कवि बुधजन– बुधजन विलास, हस्तलिखित प्रति, दि जैन मारवाडी मन्दिर ट्रस्ट, इन्दौर।

विलावल (२५) आसावरी (२६) राग-सारंग (२७) राग लुहरी सारग (२८) पूरवी ताल (२९) राग धनाश्री (३०) राग गौरीताल (३१) राग ईमन (३२) राग दीपचन्दी (३३) काफी कनडी (३४) कनडी जलद (३५) झझोटी (३६) राग जगला (३७) राग अहिंग (३८) राग खभावत (३९) राग परज (४०) राग काहरो (४१) राग अझाणो (४२) राग केदारो (४३) सोरठा इक्तालो (४४) सोरठ जलद (४५) राग विहागडो (४६) राग विहग (४७) राग जे जैवती (४८) मालकोष (४९) राग कालिगडो (५०) गजल रखता (५१) राग मल्हार (५२) मल्हार रूपक।

भाषा-बुधजन विलास की भाषा ब्रज मिश्रित राजस्थानी है। कवि, राजस्थान के प्रमुख नगर जयपुर के निवासी थे। जयपुर उस समय हिन्दी जैन साहित्य का प्रमुख केन्द्र था। कारक रचना मे ब्रज की विशेषता पाई जाती है। कवि की इस रचना मे सयुक्त वर्णों को स्वर विभक्ति के द्वारा पृथक् करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यथा-सरव (सर्व) जनम (जन्म) खेतर (क्षेत्र) सुभाव (स्वभाव) सवद (शब्द) परतीति (प्रतीति) आतमा (आत्मा) पदारथ (पदार्थ) दरस (दर्श) तत्वारथ (तत्वार्थ) सरधान (श्रद्धान)। इसी प्रकार—

सयुक्त वर्णों को सरल बनाने की पद्धति भी मिलती है। यथा स्तुति का (थुति) स्वरूप का (सुरूप) द्युति का (दुति) जन्ममरण का (जामन-मरण) स्थान का थान इत्यादि।

मुहावरो व लोकोक्तियो के प्रयोग मे अन्यान्य हिन्दी कवियो की भाति बुधजन ने भी भाषा के सौंदर्य का ध्यान रखते हुए उनके सफल प्रयोग किये हैं। यथा—

निंदक सहजे दु ख लई।
वन्दक लई कल्याण।
डूबत जलधि जहाज।
कहा कमाई करत हैं गुडी उडावन हार।
समता नीर बुझाय।
बैठे ज्ञान जहाज मे त उतरै भवपार।

बुधजन विलास उर्दू एव फारसी के शब्द जैसे इलाज, ख्याल, सलाह, अरज, पीर, सिरताज, मतलब, दलगीर, दुनिया, जाहर, जहान, मजा इत्यादि मिलते हैं।

छन्द विधान-बुधजन विलास मे कवि ने मात्रिक व वर्णिक दोनो प्रकार के छन्दो के प्रयोग किये हैं। मात्रिक छन्दो मे दोहा, सोरठा, चौपाई, सवैया आदि छन्द प्रमुख हैं। वर्णिक छन्दो मे कवि ने अनेक छन्दो के सफल प्रयोग किये हैं, जो उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है। उपर्युक्त तालिका कवि के छन्द ज्ञान का स्पष्ट परिचय देती है।

प्रस्तुत सग्रह मे स्थान-स्थान पर अनुप्रास और यमक की झलक भी दिखाई देती है। इस मे यद्यपि सभी रचनाए भाव, भाषा, छन्द, अलकार आदि की दृष्टि से उत्तम हैं परन्तु उन सब मे विवेचित रचनाए बडी ही चित्ताकर्षक जान पडती है। कवि अध्यात्म व भक्ति रस के कवि थे अत उनके कतिपय भक्ति परक पद प्रस्तुत हैं –

पद–

उत्तम नरभव पायके मति भूले रे रामा ।।टेक।।
कीट पशु का तन जब पाया, तब तू रह्या निकाया।
अब नरदेही पाय सयाने क्यो न भजे प्रभु नामा ।।१।।

सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊं नर जामा।
ऐसा रतन पायके भाई, क्यो खोवत बिन कामा ।।२।।

धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखि भामा।
काल अचानक झटिके खायगा, परे रहेंगे ठामा ।।३।।

अपने स्वामी के पद-पकज, करो हिये विसरामा।
मेटि कपट भ्रम अपना बुधजन, ज्यो पावो शिवधामा[1] ।।४।।

इसी प्रकार के एक अन्य पद मे कितनी प्रबोध पूर्ण वाणी मे कवि कहता है–

ससार एक बाजार है और मनुष्य उसका एक व्यापारी है। व्यापारी बाजार मे जाता है और सौदा खरीदता है। जो व्यापारी सौदे की पारखी होता है वह हमेशा ऐसा सौदा खरीदता है, जिसमे उसे अधिकाधिक लाभ हो। हानि पहुचाने वाले सौदे का वह स्पर्श भी नही करता। परन्तु जिस व्यापारी को अच्छे-बुरे माल की परख नहीं होती वह खराब सौदा भी खरीद लेता है। फल यह होता है कि वह हानि उठाता है और कुशल व्यापारी अपनी व्यापारिक कुशलता के कारण दिन-प्रतिदिन प्रगति करता है और व्यापार मे पूर्ण सफलता प्राप्त करता हुआ सुख और शान्ति का अनुभव करता है। कविवर बुधजन की दृष्टि मे ससार एक बाजार है और उसका प्रत्येक मनुष्य एक व्यापारी है। इस ससार-बाजार में मानव-व्यापारी को सुकृत का सौदा करना है। ऐसा करने पर ही वह अपने जीवन मे लाभ उठा सकेगा। जीवन का शास्वत आनन्द ले सकेगा। इसके लिये मानव-व्यापारी को प्रति-क्षण अपनी विवेक-बुद्धि जागृत रखनी है। उसे अतीत के घाटे के सौदे पर, वर्तमान मे सुकृत के सौदे पर और भावी जीवन को परमानन्दमय एव पूर्ण निराकुल बनाने के लक्ष्य पर

---

1 - बुधजनः बुधजन विलास,पद्य संख्या 66, पृ संख्या 34, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, 161/1 हरीसन रोड, कलकत्ता प्रकाशन।

सतर्कता से दृष्टि रखनी है। एक क्षण का प्रमाद उसे अनन्त घाटे का सौदा करा सकता है। कवि स्वय को सम्बोधित करते हुए कहता है। हे आत्मन्! तू इस ससार रूपी बाजार मे परमार्थ के लिये, आत्म-कल्याण के लिये सुकृत का सौदा करले-सम्यक् आचार का पालन कर। तूने सौभाग्य से सर्वश्रेष्ठ सद्गृहस्थ के कुल मे जन्म लिया है और इस पर भी तुझे वीतराग मार्ग पर चलने का सुअवसर मिला है। फिर भी रे मूढ आत्मन्! तू इस सुयोग को क्यो क्षणिक एव विनश्वर भोग-विलास मे बिताये दे रहा है? हे आत्मन्! मोहनिद्रा मे पडे-पडे तुम्हे चिरकाल व्यतीत हो गया। तुम्हें पता नही है कि कर्मचक्र किस प्रकार तुम्हारे आत्म-गुण रत्नो की लूट कर रहा है। जागो, अब भी नही जाग रहे हो! जीवन व्यापार मे लाभ उठाने के इच्छुक प्रत्येक मानवात्मा के लिये कविवर की यह पवित्र प्रेरणा न मालूम कब तक स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी।[1]

कविवर बुधजन के पूर्ववर्ती व परवर्ती अनेक हिन्दी के कवियो ने विलास नाम से रचनाए की हैं। सच तो यह है कि १६वीं शताब्दी से १९वी शताब्दी तक के कवियो मे इस प्रकार की रचना करने की एक परम्परा ही चल पडी थी। विलास नामक रचनाओ की परम्परा सम्बन्धी सक्षिप्त-तालिका कालक्रमानुसार निम्न प्रकार है –

---

१ करले हो जीव, सुकृत का सौदा करले।
परमारथ कारज करले हो॥
उत्तम कुल को पायक, जिनमत-रतन लहाय।
भोग-भोग वे कारने, क्यो शठ देत गमाय॥
व्यापारी बन आइयो, नर-भव-हाट-मझार।
फलदायक व्यापार कर, नातर विपत्ति-तयार॥
भव अनन्त धरतौ फिरयो, चौरासी वन माहि।
अब नरदेही पायकें, अघ खोवे क्यो नाहि॥
जिनमुनि आगम परखकें, पूजो करि सरधान।
कुगुरु, कुदेव के मानवे, फिर्यो चतुर्गति थान।
मोह-नींद-मा सोवता, डूबौ काल अटूट।
"बुधजन" क्यो जागो नही, धर्म करत है लूट॥
सौदा करले, करले हो जीव। सुकृत का सौदा करले हो॥

कवि बुधजन, बुधजन विलास, पद सख्या, २३५ जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, १६१/१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

क्रमांक	प्रतिनिधि कवि	रचना का नाम	शताब्दी
१	सुन्दर दास	सुन्दर-विलास	१६ वीं
२	जगन्नाथ	भामिनी-विलास	१६ वीं
३	बनारसीदास	बनारसी-विलास	१७ वी
४	द्यानतराय	द्यानत-विलास	"
५	जगतराम	आगम-विलास	"
६	जटमल विलाला	प्रेम-विलास	१७ वी
७	मुनि हर्ष समुद्र	भावना-विलास	"
८.	यशोविजय	जस-विलास	"
९	लक्ष्मी वल्लभ	भावना-विलास	"
१०	खड्गसेन	आगम-विलास	१८ वी
११	दौलतराम कासलीवाल	विवेक-विलास	"
१२	भूधरदास	भूधर-विलास	"
१३	बुधजन	बुधजन-विलास	"
१४	दौलतराम (द्वितीय)	दिलाराम-विलास	"
१५	भैया भगवतीदास	ब्रह्म-विलास	"
१६	विजय गच्छ	राज-विलास	"
१७	विनय विजय	विनय-विलास	"
१८.	नथमल विलाला	जिनगुण-विलास	"
१९	दीपचन्द शाह	अनुभव-विलास	"
२०	वृन्दावन लाल	वृन्दावन-विलास	१९ वी
२१.	ज्ञानानन्द	ज्ञानानन्द-विलास	"
२२.	वृन्दकवि	वृन्द-विलास	"
२३	देवीदास	परमानन्द-विलास	"
२४	वखतराम	बुद्धि-विलास	"
२५	गुलाबराय	शिखिर-विलास	"
२६.	मनरगलाल	शिखिर-विलास	"
२७.	लालचन्द	शिखिर-विलास	"
२८	परमानन्द जौहरी	चेतन-विलास	"
२९.	पारसदास निगोत्या	पारस-विलास	"
३०.	मोतीलाल	मरकत-विलास	"
३१	पं लक्ष्मीचन्द	लक्ष्मी-विलास	"
३२.	जोधराज कासलीवाल	सुख-विलास	"

इनके अतिरिक्त यम विलास, शील विलास, सभा विलास, कारक विलास ववेक विलास, नयन सुख विलास इत्यादि अनेक रचनाए विलास नाम से इन शताब्दियो मे रची गई। ये अधिकतर गेय रचनाए हैं।

"बुधजन विलास" की प्राय सम्पूर्ण रचनाए गेय हैं। प्राय सभी मुक्तक छन्द हैं। इन सभी रचनाओ को विषय की दृष्टि से मुख्यतः तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है। (१) नीति प्रधान रचनाए (२) सैद्धान्तिक रचनाए (३) आध्यात्मिक रचनाए। (नीति प्रधान रचनाओ मे बुधजन सतसई, पद सग्रह, बुध-जन-विलास आदि। आध्यात्मिक रचनाओ मे छहढाला, तत्वार्थ बोध, वर्द्धमान पुराणसूचनिका, योगसार भाषा आदि। आध्यात्मिक रचनाओं मे पचास्तिकाय भाषा आदि हैं। इनके अतिरिक्त भक्ति प्रधान रचनाए भी हैं, जिनके नाम हैं—नंदीश्वर जयमाला, इष्ट छत्तीसी, विमल जिनेश्वर स्तुति, वन्दना जखडी आदि।)

बुधजन विलास की दो प्रमुख कृतियो का परिचय निम्न प्रकार है।

६—दोष बावनी (१८६६ वि. सं.)

कवि की यह एक लघु कृति है। इसमें कुल ५२ पद्य हैं। यह चौपाई छन्द मे लिखी गई है। इस रचना के निर्माण मे कवि का लक्ष्य यह रहा है कि मनुष्य पाप कार्यों से सदा बचता रहे क्योकि पाप कार्यों का फल अन्तत. दु ख रूप हीं होता है। इन्ही पाप कार्यों के कारण जीवो को खोटी गतियो मे जन्म लेना पड़ता है।

कवि ने बड़े ही सुन्दर ढग से दुर्जन के लक्षण बताये हैं वे लिखते हैं.—दुर्जन व्यक्ति कभी प्रभु का नाम लेना नही चाहता जबकि सज्जन पुरुष प्रभु का नाम सुनते ही प्रसन्न हो जाता है। सच्चे व झूठे देवी-देवताओ की परीक्षा न कर सकने के कारण दुर्जन पुरुष दुर्गति के पात्र होते हैं। दुर्जन पुरुष भक्ष्य, अभक्ष्य का, धर्म, अधर्म का। जाति कुजाति का अन्तर नही समझते। पाचो इन्द्रियो के विषय भोगो मे दिन-रात लीन रहते हैं। रात-दिन खोटे धधो मे व्यस्त रहते हैं। धर्म चर्चा में गूंगे बन जाते हैं। नाटक-सिनेमा, नाच-गाना आदि मे रस लेते हैं। रातभर जागते हैं। कभी त्याग करते नही। कदाचित् दानादि देते भी है तो मान बडाई के लिए देते हैं। श्रद्धालु धर्मी जनो की हसी उडाते हैं।

रचना के अन्त में कवि ने अपने नाम का तथा रचना काल का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है[1]—

१— ठारेसे छाछिठि के साल, श्रावण सुदि दिन तीज विशाल।

शेष अगले पृष्ठ पर

७–जिनोपकार स्मरण स्तोत्र (१८७१ वि. सं.)

यह रचना एक प्रकार का स्तोत्र है । चौपाई, कुण्डलिया, सोरठा, छन्दो में लिखी गई है । भक्त जन अपने आराध्य के समक्ष अपने को दीन-हीन मानता है। वह अपने आराध्य मे अनत गुणो का समावेश देखता है । चौपाई छन्द मे कवि कितनी महत्त्वपूर्ण बात कह रहा है .—

हे प्रभु ! जो लोग आपका भक्ति-भाव पूर्वक ध्यान करते हैं वे आपके समान वन जाते हैं । इसी कारण मैं आपका ध्यान करता हू । मैं आपके अनत उपकारो को जानता हू ।[2]

भक्त को इस वात का पूरा ज्ञान है कि स्त्री, पुत्र, आभूषण, धन, मकान ये सव वस्तुए क्षणिक हैं अत इनके उपजने व नष्ट होने मे वह हर्ष-विषाद नहीं मानता । वहिरात्मा (भौतिकवादी) पन का त्याग कर अन्तरात्मा (ज्ञानी) वनता है। देहादि के स्वभाव को वह भली भाति जानता है कि ये देहादि क्षणिक हैं । वस्तुत जीव मरता नही, पर प्राणो के वियोग को व्यवहार मे मरण कहा जाता है । भक्त ज्ञानी जन जानते हैं कि मनुष्य, देव, मत्र तत्र औषधि आदि भी इस जीव को मरने से वचा नही सकते । वह अपनी ज्ञान निधि को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है । वह अपने को ही सम्वोधित करते हुए कहता है । हे आत्मन् ! तू तो ज्ञानस्वरूपी है । तथापि भ्रमवश जडवत् हो रहा हैं । रागी-द्वेषी वन कर विपत्तियों मे फसा हुआ है । इसमे तेरी ही भूल है । कवि एक सुन्दर दृष्टान्त देते हुए कहते हैं—यद्यपि दूध और पानी मिल जाते हैं तथापि वे दोनो अपनी अपनी सत्ता को नही छोडते । भिन्न-भिन्न ही रहते हैं । उसी प्रकार ज्ञान दृष्टि से विचार करने पर शरीर व आत्मा की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है । क्योकि शरीर जड है अचेतन है, नाशवान है, रूपी पदार्थ है जवकि आत्मा चेतन है, स्थायी है अरूपी है, ज्ञान, दर्शन शक्ति सम्पन्न है । अत दोनो की एकता का कोई प्रश्न ही नही ।

दोष बावनी पूरण भया, 'बुधजन' पढ़ियो रचिकै दया ॥
कवि बुधजन : बुधजन विलास (दोष बावनी) पाना नं. २१ हस्तलिखित प्रति के आधार से ।

२– तुम जिन ध्यान लोक जो करे, सो निश्चय तुम तुलिता धरे ।
तातें ध्यान करू हू तोय, तुम उपगार ज्ञान मे जोय ॥
बुधजन : बुधजन विलास (जिनोपकार स्मरण स्तोत्र) पाना न १८–१९ हस्तलिखित प्रति से ।

भक्त पुन कहता है—अनादिकाल से यह जीव कर्मों से सम्बन्ध होने के कारण मलिन है तथापि हे जिनवाणी आपके प्रसाद से वह अत्यन्त निर्मल हो जाता है और पूर्ण ज्ञानमय हो जाता है।

८—इष्ट छत्तीसी

जैन काव्यो मे पच परमेष्ठी का महत्वपूर्ण स्थान है। पच परमेष्ठियो को ही पचपरमगुरु माना गया है। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु (मुनि) ये पचपरमेष्ठी हैं। अरहत को जिन या जिनेन्द्र भी कहते हैं। उनका सौंदर्य प्रेरणा का अक्षय पु ज है। जैन धर्मानुयायी सर्व प्रथम प्रात काल उठते ही पचपरमेष्ठी का स्मरण करते हैं। कविवर बुधजन ने इष्ठ छत्तीसी ग्रन्थ मे मगलाचरण के रूप मे अरहन्त की ही भक्ति की है। वे लिखते हैं—

"मैं श्री अरहन्त को प्रणाम करता हू। दयामय धर्म को नमस्कार करता हू तथा निर्ग्रन्थ (परिग्रह रहित) गुरु (आचार्य, उपाध्याय साधु) को नमस्कार करता हू।[1]

मगलाचरण के पश्चात् अरहत परमेष्ठी के ४६ गुण, सिद्ध परमेष्ठी के ८ गुण, आचार्य परमेष्ठी के ३६, उपाध्याय परमेष्ठी के २५ गुण तथा साधु परमेष्ठी के २८ गुणो का विस्तार से विवेचन किया है।

ग्रन्थ के अन्त मे कवि कहता है कि—

"मैंने यह इष्ट छत्तीसी ग्रन्थ साधर्मी जनो के नित्य पठन-पाठन हेतु बनाया है। हित-मित शिवपुर पथ प्रदाता पचपरमेष्ठी के गुणो का वर्णन मुझ अल्प मति (बुधजन) द्वारा किया जाता है।[1]

यह रचना मुख्यत सोरठा और दोहा छन्दो मे लिखी गई है।

९—बुधजन सतसई (वि. सं. १८७९)

यह कविवर बुधजन की लोक प्रिय काव्य रचना है। कविवर बुधजन नीति-काव्य निर्माता के रूप मे हिन्दी जैन साहित्य मे ख्याति प्राप्त हैं। जैन रचनाएं

१— प्रणमू श्री अरहत, दया कथित जिनधर्म को।
गुरु निरग्रन्थ महंत, और न मानू सर्वथा॥

बुधजन : बुधजन विलास (इष्ट छत्तीसी) पाना १३, हस्तलिखित प्रति से।

१— साधरमी भव पठन की, इष्ट छत्तीसी ग्रन्थ। शेष अगले पृष्ठ पर

भारतीय नीति काव्य की अक्षय राशि हैं। जैन धर्म की आचार प्रधानता के कारण जैन साहित्य मे भी नीति उक्तिया प्रधान लक्ष्य बनकर आई हैं। मध्यकालीन हिन्दी काव्याकाश मे तुलसी, विहारी, रहीम व वृन्द के समान बनारसी दास, द्यानतराय, भूधरदास, बुधजन आदि जैन कवि भी उन नक्षत्रो मे से हैं जो अपने विवेक-आलोक से अज्ञानान्धकार से भूले बटोहियो का पथ प्रशस्त करते रहे हैं तथा आगे भी करते रहेगे।

कवि की नीति सम्बन्धी प्रसिद्ध रचना बुधजन सतसई एव अन्य रचनाओ का अध्ययन प्रस्तुत करने के पूर्व नीति शब्द की व्याख्या प्रस्तुत करना आवश्यक है। वह निम्न प्रकार होगी——

नीति–शब्द प्रापणार्क्क धातु "नी" (णीञ्)[1] तथा भावार्थक प्रत्यय (क्तिन्[2] ति के सयोग से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है नयन (ले जाना) अथवा प्रापण (पहुचाना) परन्तु आज कल यह प्राय उक्ति अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

हिन्दी के कवियो ने नीति शब्द का प्रयोग सर्वत्र उक्ति अर्थ मे ही किया है। हाल कवि ने प्राकृत भाषा मे 'गाथा सप्तशती' की रचना ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी के लगभग की थी। उसी के अनुकरण पर मुक्तक काव्य मे सतसई की रचना हिन्दी मे होने लगी। सर्वाधिक श्रेय 'विहारी सतसई' को प्राप्त हुआ। शृ गार की रचना होते हुए भी यह इतनी लोक-प्रिय हुई कि इसके अनुकरण पर, विक्रम सतसई, मतिराम सतसई, वृन्दसतसई, वीर सतसई आदि अनेक सतसई ग्रन्थ लिखे गए हैं।[3]

प्रस्तुत रचना भी इन्ही सतसई ग्रन्थो की पद्धति पर ७०२ दोहो मे लिखी गई है। इस सरस नीति पूर्ण रचना मे देवानुराग शतक, सुभाषित नीति उपदेशाधिकार और विराग भावना ये चार प्रकरण हैं।

प्रथम–देवानुराग–शतक भक्ति प्रधान है। इस खड मे कवि ने १०० दोहे लिखे हैं। दास्य–भाव की भक्ति अपने आराध्य के प्रति प्रगट की गई है। अपनी आलोचना करना और जिनेन्द्र की महानता को व्यक्त करना ही कवि का लक्ष्य है

पिछले पृष्ठ का शेष

अल्प बुद्धि बुधजन रच्यो, हितमित शिवपुर पथ ॥

बुधजन , इष्ट छत्तीसी, पाना १४ हस्तलिखित प्रति से।

१– णीञ् प्रापणे, पाणिनि सिद्धान्त कौमुदी, पृ सं ४७० ई सन् १९३८ निर्णय-सागर प्रेस, बम्बई।

२– 'स्त्रियां क्तिन' पाणिनी, अष्टाध्यायी, ३-३-९४ निर्णय सागर प्रेस, बबई

३– शर्मा, राजनारायण एम ए. मध्यकालीन कवि और उनका काव्य, पृष्ठ संख्या ?

अत वह कहता है —

हे प्रभु ! मेरे अवगुणो की ओर ध्यान मत दो क्योकि मेरे अवगुणो की गिनती नहीं है, मैं अवगुणो का धाम हू । मैं पतित हू और आप पतितउद्धारक । अत मुझ जैसे पतितो का काम बना दीजिये ।[4]

द्वितीय–सुभाषित खण्ड–मे ३०० दोहे हैं । ये सभी दोहे नीति विषयक हैं । लोक मर्यादा के सरक्षण के लिए कवि ने अनेक हितोपदेश की बातें लिखी हैं । कबीर तुलसी, रहीम, और वृन्द के दोहों से इस विभाग के दोहे समानता रखते हैं । इस विभाग के अनेक दोहे नीति के निदर्शन हैं । यथा–

"योग्य अवसर पर योग्य ही वचन बोलना चाहिये । जिस प्रकार पानी यदि सावन, भादो मे बरसता है तो उससे सभी को शान्ति मिलती है । जो लोग योग्य अवसर के बिना बोलते हैं उनका मान घटता है, जैसे बादल यदि कातिक मास मे बरसते हैं तो सभी उनको बुरा कहते हैं, कोई भी उनकी सराहना नही करता ।[1]" इत्यादि—

तृतीया–उपदेशाधिकार, मे 200 दोहे हैं । इस खड मे विविध विषयो का क्रमबद्ध वर्णन है । विद्या-प्रशसा, मित्रता और सगति, जुआ-निषेध, शिकार-निन्दा, चोरी-निन्दा, परस्त्री-सग-निषेध शीर्षको में यह खड विभाजित है ।

चतुर्थ-विराग भावना-खण्ड मे वैराग्यवर्द्धक 202 दोहे हैं । नीतिकाव्य की दृष्टि से सुभाषित नीति तथा उपदेशाधिकार ही विशेष महत्वपूर्ण हैं । इस खण्ड मे ससार की असारता का बहुत ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया गया है । इस खण्ड के सभी दोहे रोचक और मनोहर हैं । सुभाषित नीति मे तो विविध-विषयो का प्राय. कोई विशेष क्रम लक्षित नही होता, परन्तु उपदेशाधिकार के दोहे विद्या प्रशसा आदि शीर्षको मे विभाजित है । इसके एक एक दोहे मे जीवन को प्रगतिशील बनाने वाले अमूल्य सन्देश भरे हैं । कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं ।[2] यथा—

---

४ मेरे औगुन जिनगिनो, मैं औगुन को धाम ।
पतित उद्धारक आप हो, करो पतित को काम ।
बुधजन. देवानुरागशतक शीर्षक, बुधजन सतसई, पद्य स ७८, सनावद ।

१ औसर लखिके बोलिये, जथा जोगता बैन ।
सावन भादो बरसतें सब ही पावें चैन ।।११६।।
बोलिउठे औसर बिना, ताका रहे न मान ।
जैसे कातिक बरसतें, निन्दे सकल जहान ।।११७।।
बुधजन. बुधजन सतसई (सुभाषित नीति) प. स ११६–११७, सनावद ।

2 बुधजन. बुधजन-सतसई, पद्य स० १०८, 125, 223 (सनावद)

एक चरन हू नित पढै, तो काटे अज्ञान ।
पनिहारी की लेज सौं, सहज कटे पापाण ॥ 108 ॥
महाराज महावृक्ष की, सुखदा शीतल छाय ।
सेवत फल मासे न तो, छाया तो रह जाय ॥ 125 ॥
पर उपदेश करन निपुन, ते तो लखे अनेक ।
करे समिक बोले समिक, ते हजार मे एक ॥ 223 ॥

इस खण्ड के कतिपय दोहे तो पच तत्र और हितोपदेश के श्लोको का अनुवाद प्रतीत होते हैं । तुलसी, कबीर और रहीम के दोहो से भी कवि अनुप्राणित प्रतीत होता है ।

इन दोहो के मनन-चिंतन-स्मरण और पठन से आत्मा निर्मल होती है । हृदय पवित्र भावो से भर जाता है और जीवन मे सुख-शान्ति का अनुभव होता है । दृष्टान्तो द्वारा ससार की वास्तविकता चित्रण करने मे कवि को अपूर्व सफलता मिली है । वस्तु स्थिति का वास्तविक चित्र आखो के सामने मूर्तिमान होकर उपस्थित हो जाता है । कतिपय दृष्टान्त प्रस्तुत हैं । यथा—

इस जीव का इस जगत् मे वास्तव मे कौन पुत्र है और कौन स्त्री ? किसका धन एव परिवार है ? जिस प्रकार धर्मशाला मे देश-विदेश के, विभिन्न जातियो के, विभिन्न धर्मों के लोग एकत्रित हो जाते हैं, परन्तु थोडे ही समय के पश्चात् सब बिछुड जाते हैं । जिस सम्पत्ति के लिये यह मानव निरतर कष्ट उठाता है, मरते समय वह भी साथ नही जाती, यही पडी रह जाती है । जिसे नाना प्रकार से खिलाया-पिलाया-सजाया-सवारा जाता है, वह देह भी यही पडी रह जाती है । इस संसार मे जो भी आया है उसे एक न एक दिन अवश्य ही जाना होगा । अब राजा दशरथ, लक्ष्मण और राम जैसे बली एव न्याय-नीति पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले पुरुष भी जीवित नही रह सके तो झूठ, कपट आदि करने वाला तू कैसे चिरकाल तक जीवित रह सकेगा ?[1]

कवि की चुभती हुई उक्तिया हृदय मे प्रविष्ट हो जाती हैं तथा जीवन के आन्तरिक-सौदर्य की अनुभूति होने लगती है । सतसई के एक-एक दोहे मे कवि

---

१ को है सुत को है तिया, काको धन परिवार ।
आके मिले सराये मे, बिछुरेंगे निरधार ॥५०३॥
परी रहेगी संपदा, धरी रहेगी काय ।
छलबलकर क्यों हूं ना बचै, काल झपट ले जाय ॥५१५॥
आया सो नाहीं रह्या, दशरथ लक्ष्मण राम ।
तू कैसे रह जायगा, झूठ कपट का धाम ॥५२३॥
बुधजनः बुधजन सतसई, पद्य स ५०३, ५१५, ५२३ प्र संस्करण, सनावद ।

ने जीवन को गतिशील वनाने वाले अमूल्य सदेश भरे हैं। इसमे भक्तिमार्ग, सुभाषित नीति, उपदेश, विद्याप्रशसा, वैराग्यभावना, आत्मानुभव के विपय मे सात सौ दोहे लिखकर जिज्ञासुओ के लिए अपूर्व विज्ञान दिया है। इसमे वडी ही कला कुशलता के साथ अध्यात्म, वैराग्य और सदाचार की त्रिधारा प्रवाहित की गई है। 'इसकी रचना वि० सवत् १८७९ मे हुई थी।'[1]

सतसई की रचना का उद्देश्य मानव को असत् से सत् की ओर ले जाने का प्रतीत होता है। ग्रन्थ की प्रशस्ति मे कवि स्वय लिखते हैं—

'भूख सहन करना पडे तो कर लो। दरिद्रता सहन करना पडे तो उसे भी सहन कर लो। लोकापवाद सहन करना पडे तो उसे भी सहन कर लो, पर कभी भी निन्दनीय कार्य मत करो। इसी प्रकार एक और अन्य पद्य मे कवि कहता है।'[2]

'मैंने यह रचना अपनी अन्त प्रेरणा से ही वनाई थी, अन्य कोई विशिष्ट उद्देश्य नही था। न किसी की प्रेरणा से, न किसी की आशा से मैंने यह रचना की है, किन्तु केवल अपनी बुद्धि को परिमार्जित करने के लिए ही मैंने यह (रचनने की है[3]।

देवानुराग शतक मे कवि अपने आराध्य को अनतगुणो और रूपो वाला देखता है और अपने आपको उनका वर्णन करने मे असमर्थ पाता है। चूकि नर पर्याय वार-वार नही मिलती अत वह इस अवसर को चूकना नही चाहता। वह अपनी प्रार्थना किसी के माध्यम से नही वरन स्वय ही करना चाहता है। यथा

जो मैं कहाऊ और तें, तो न मिटै उरझार।
मेरी तो तोपै वनी, तातैं करो पुकार[4] ॥

---

१ सवत् ठारा से असी, एक वरसते घाट।
ज्येष्ठ कृष्ण रवि अष्टमी, हूवो सतसई पाठ॥

बुधजन बुधजन सतसई, पद्य सं० ६९६, पृ०सं० १४५, प्र० संस्करण, सनावद।

२ भूख सहो दारिद सहो, सहो लोक अपकार।
निदकाम तुम मतिकरो, यहै ग्रन्थको सार॥

बुधजनः बुधजन सतसई, तृ० आवृत्ति, पृ०स० ७४।६९९, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्वई, प्रकाशन।

३ ना काहू की प्रेरणा, ना काहू की आस।
अपनी मति तीखी करन, वरन्यो वरन विलास॥

बुधजनः बुधजन सतसई, तृ० आवृत्ति, पृ०स. ७४/६९९, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई प्रकाशन।

४ बुधजन. बुधजन सतसई, पद्य सख्या १३ पृ०स ३, प्र० सस्करण सनावद।

कवि अपने इष्ट को तनिक भी कष्ट देना नही चाहता, वह अपने कार्य को शीघ्र भी करना नही चाहता। वह तो यही चाहता है कि उसका कार्य सही रूप से हो जाये। रचना के अवलोकन से लगता है कि यह कवि की श्रेष्ठ रचना है। इसमे उत्तम कवियो की भाति अनुभूतियो का तीव्र व्यजना है। ससार के प्रत्येक पहलू की व्यजना बडी ही खुशी के साथ की गई है। उन्होने सूर, तुलसी और मीरा की भाति अपने आराध्य को महान एव स्वय को क्षुद्र बताया है। वे लिखते है –

हे प्रभु आप तो दीनानाथ हो और मे दीन एव अनाथ हू। मुझे आपका सत्सग प्राप्त हो गया है अत अब मुझे सम्पन्न एव सनाथ करने मे विलम्व मत कीजिये।'[1]

हे प्रभु ! जगत्-जन तो स्वार्थ मे लिप्त है। केवल आप ही नि स्वार्थ दिखते हो। अन्य जन पाप-परम्परा की वृद्धि मे सहायक है, जबकि आप पापों को नाश करने वाले हो[2]।

हे प्रभु ! आप मेरे अवगुणो पर ध्यान मत दीजिए क्योकि वे अनत हैं। आप पतित उद्धारक हे, अत मुझ जैसे पतितो का उद्धार कर दीजिए[3]।'

हे प्रभु ! मेरी कोई भौतिक अभिलापाए नही हैं, न मैं किसी प्रकार की कोई याचना ही करना चाहता हू। मैं तो केवल यही चाहता हू कि अपलक नेत्रो से केवल आपकी शान्त, वीतराग, नासाग्रदृष्टि, मुद्रा को देखता रहू[4]।'
सच्ची आत्म सिद्धि की कितनी सरल, ललित व्याख्या इस पद्य मे है –

एक देखिए जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल-विमल न विचारिये, यहे सिद्धि नहि और[5]।।

डा० रामस्वरूप शास्त्री के शब्दो मे –

'हिन्दी का नीतिकाव्य, यद्यापि रचनाओ की सख्या, परिणाम, विषयवैविध्य

१.　तुम तो दीनानाथ हो मै हू दीन अनाथ।
　　अब तो ढील न कीजिये, भलो मिल गयो साथ।।
२　और सकल स्वारथ सगे, बिन स्वारथ हो आप।
　　पाप मिटावत आप हो, और बढावत पाप।।
३　मेरे अवगुन जिन गिनौ, मैं औगुन को धाम।
　　पतित उद्धारक आप हो, करो पतित का काम।।
४　एही वर मोहि दीजिये, जाचू नहि कुछ और।
　　अनिमिष दृग निरखत रहू, शान्त छबी चित-चोर।।
कवि बुधजन बुधजन सतसई, पद्य स० ४२,४८,७८,६५ प्र० सस्करण सनावद।
५　वही

श्रौर उपयोगिता की दृष्टि से सस्कृत के नीति–काव्य से कम नहीं, तथापि यह मानना ही पडता हैं कि विशेप प्रतिभाशाली कवियो की कमी के कारण वह सस्कृत के नीति काव्यो के समान सरस, चमत्कारपूर्ण श्रौर प्रभूविष्णु नही वन सका, फिर भी पालि, प्राकृत श्रौर श्रपभ्र श के नीति काव्यो से तो वह प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ ही है [1]

बुधजन सतसई का भाषा वैज्ञानिक श्रध्ययन.–

बुधजन सतसई की भाषा व्रज मिश्रित राजस्थानी है, किन्तु उसका रूप साहित्यिक है। श्रत इसमे श्राये हुए क्रिया पदो पर श्रध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

क्रिया–

(१) सतसई मे प्रयुक्त श्रधिकाश कियाए कर्तरि प्रयोग मे हैं।

(२) कुछ क्रियाए कर्मणि प्रयोग मे भी पाई जाती हैं, जिनके द्वारा क्रिया का कर्म स्पष्ट है, उनके कर्ता का उल्लेख नही मिलता।

उदाहरण–

(क) वदत श्री महाराज[2]। पद्य सख्या २०

(ख) एक ठौर राजत श्रवल[3]। पद्य सख्या २३

(ग) भली बुरी निरखत रही[4]। पद्य सख्या २४

(घ) श्ररज गरज की करत हू[5]। पद्य सख्या ३७

काल रचना—बुधजन सतसई मे प्रयुक्त क्रियाश्रो मे तीन श्रर्थ पाये जाते हैं, निश्चयार्थ, श्राज्ञार्थ तथा सम्भावनार्थ। निश्चयार्थ से भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनो मे कार्य होने की सूचना मिलती है। श्राज्ञार्थ वर्तमान तथा भविष्य-इन दो कालो मे मध्यम पुरुष मे श्राज्ञा तथा श्रन्य पुरुषो मे स्वीकार-सम्मति सूचित कर्त्ता है। सम्भावनार्थ उस क्रिया का घोतन करता है, जहां कार्य सम्पन्न नही हुश्रा रहता। इस प्रकार से प्रयुक्त से छह काल सामान्य काल कहे जा सकते हैं। ये निम्न प्रकार हैं —

(१) वर्तमान निश्चयार्थक

(२) भूत निश्चयार्थक

(३) भविष्य निश्चयार्थक

---

१. डा० राम स्वरूप ऋषिवेशः हिन्दी मे नीतिकाव्य का विकास, पृ स ६४१ दिल्ली प्रकाशन, दिल्ली १९६२।

२ बुधजनः बुधजन सतसई, पद्य स० २० पृ० स० ५ प्र० स स्करण प्रकाशन

३ बुधजन बुधजन सतसई, पद्य स २३ पृ० स ५ प्र० स स्करण, सनावद प्रकाशन

४ बुधजनः बुधजन सतसई, पद्य स ० ६ प्र० स स्करण सनावद प्रकाशन

५ बुधजन. बुधजन सतसई पद्य स ३७ पृ० स ८ प्र० स स्करण प्रकाशन।

(४) वर्तमान आज्ञार्थक
(५) भविष्य आज्ञार्थक
(६) सम्भावनार्थक

इन छह कालो के अतिरिक्त सहायक क्रियाओ की सहायता से भी अन्य कालो की सृष्टि हुई है। इन्हे सयुक्त काल कह सकते हैं।

इस प्रकार विभिन्न कालो की दृष्टि मे रखते हुए 'बुधजन-सतसई मे प्रयुक्त समस्त क्रियाओ को निम्न वर्गों मे विभाजित करके उनकी विवेचना की गई है।

(१) सामान्य क्रियाए
(२) सहायक क्रियाए
(३) पूर्व कालिक क्रियाए
(४) सयुक्त क्रियाए तथा
(५) क्रियात्मक सज्ञा

सामान्य क्रियाओ के अन्तर्गत (क) वर्तमान कालिक क्रियाए (ख) आज्ञार्थक क्रियाए (ग) भूतकालिक क्रियाए (घ) भविष्य कालिक क्रियाए आती है।

उदाहरण—

धातु+अहि – जा+अहि – जाहि (६३)
ओ+अहि – होहि (५२२)

धातु+ए

लह+ए—लहै (४६)
मिल—ए—मिलै (३२६)
लख+ए—लखै (१११)
धातु+एँ
पीड+एँ—पीडैं (५७७)
पूज+एँ—पूजैं (५२)
कर+एँ—करैं (१३४)
धातु+ओ
देख+ओ—देखो (४२४)
अज+ओ—अजो (४६७)
जास+ओ—जासो (४६६)
धातु+अत
आव+अत—आवत
दे+अत—देत
धातु+ई

ज्वार+ई—ज्वारी (४४६)

अमल+ई—अमली (४४६)

वार+ई—बारी (४४६)

धातु+ओ :

हर+ओ—हरो (५)

मेट+ओ—मेटो (७)

धातु+ओ—मिल्यो (१२)

राच+यो—राच्यो (१५)

पर+यो—पर्यो (१००)

इनके अतिरिक्त कृदन्त व तद्धित रूप भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। यथा—

कृदन्त रूप—

धातु+ऐन

दा+एन—देन (७६)

धातु+आय

लह+आय—लहाय (६३५)

बन+आय—बनाय (४८१)

ख+आय—खाय (६३२)

धातु+आइ

छुड+आइ—छुडाइ (४८०)

धातु+नी

जा+नी—जानी (५४०)

रह+नी—रहनी (५०३)

पाव+नी—पावनी (६३६)

तद्धित रूप—

शब्द+री

रस+री—रसरी (५)

राव+री—रावरी (१६)

देव+री—देवरी (३३५)

शब्द+[illegible]

[illegible] (३)

[illegible] (३)

[illegible]

[illegible] (८३३)

कष्ठ+तैं—कष्टतैं (५८१)
शब्द+श्रा (भाववाचक मे)
दुख+श्रा—दुःखा (६६, ६८४)
सुख+श्रा—सूखा (६५७)
नरक+श्रा—नरका (६६६)

इनके अतिरिक्त बुधजन सतसई मे शब्दो को बदलने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यथा—

स्थान का थान (१५, ११३)
सुस्थिर का सुथिर (३०, ६८)
सुस्थान का सुथान (४७६)

कहीं कही—श के स्थाय पर स किया गया है। यथा—

विशुद्धता का विसुद्धता (२५)
अशक्त का असक्त (८७)
विषय का विसय (६१)
अशुचि का असुचि (४५७)

रचना मे कहीं—कही ठेठ हिन्दी के शब्द भी पाये जाते हैं यथा—

कर्म ठिगोरे ८४, ठाठ ५१३, ठौर ५३६, कुठोर (६२)

दान का सक्षिप्तीकरण किया गया है। यथा—

दान का दो (४१५)

बुधजन सतसई मे सज्ञाए तथा क्रियाए श्रोकारात हैं। इसमे का विभक्ति के स्थान पर को का प्रयोग देखा जाता है। यथा—

राजको (३६३) पढिवे को ४२८, ससारी को ५७५।

सक्षेप मे इतना ही है कि—

भारतीय आर्य भाषा के मध्य एव आधुनिक काल के सक्रातिकाल मे क्रियापद पर्याप्त रूप मे विश्लेषणावस्था की श्रोर अग्रसर हुए श्रोर सयुक्त क्रियाश्रो का व्यवहार बढा। आधुनिक काल मे क्रिया पद प्रक्रिया तो श्रोर भी सरल हो गई। आधुनिक आर्य भाषाश्रो मे तिङन्त रूप थोडे हैं। इनमे कृदन्त रूपो को ही प्रधानता मिली है श्रोर सयुक्त क्रियाश्रो का प्रयोग बढा है।[1]

"बुधजन सतसई" की भाषा ब्रज मिश्रित ढूढारी (राजस्थानी) है, किन्तु उसका रूप साहित्यिक है। अत उसमे आये हुए क्रिया पदो पर अध्ययन प्रस्तुत

---

१ राजकुमारी मिश्र . हिन्दुस्तानी त्रैमासिक भाग २५, अक १-४ जनवरी दिसम्बर १६६४, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृ० स० २१४।

किया गया है। इतना और ज्ञातव्य है कि (1) सतसई मे प्रयुक्त अधिकाश क्रियाए कर्तरि प्रयोग मे हैं।

(२) कुछ क्रियाए कर्मणि प्रयोग मे भी पाई जाती हैं, जिनके द्वारा क्रियाओ का कर्म स्पष्ट है, उनके कर्ता का उल्लेख नही मिलता। इसमे फारसी आदि के तद्रूप भी प्राप्त होते हैं। यथा—

हुन्नर (२६७) माफिक (३६३) जिहाज (५६-६०) खुस्याल (२१२) वजार, हुकमी (२५८) (१४०)

कतिपय—राजस्थानी भाषा के शब्दो के प्रयोग मे भी द्रष्टव्य हैं। यथा-मोसर (१२) अवार (१२) दुखा की खान (६६) मिनख (६४४) ओसर (१२) समझसी (३३०) खोसिलेय (२३५) पायसी (६३६) अनेक देशज शब्दो के प्रयोग पाये जाते हैं। यथा—

नातरि (२२१) आछी (२२१) बुगला (२२१) परेवा (३१५) मोत (४०५) आदि हिन्दी के तद्भव रूपो के प्रयोग भी पाये जाते हैं। यथा—

औगुन (७८) तिया, जुर (६१) सरवस (४७०) आन (६) रतन (१५) चितामनि (१५) घरी (२०) परगट (३२) मारग (४६) चरन (५६) अलप (३०७) निरवाह (६३) इत्यादि

कतिपय अपभ्रश भाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

जुद्ध (१११) जुत्त (१४३) जदपि (२८६) इत्यादि।

कतिपय सस्कृत के शब्द भी द्रष्टव्य हैं। यथा—

विपदा (१४७) दीनानाथ (४२) पथ्यापथ्य (१४२) अतिथिदान (१७६) एक मात सुतभ्रात (१८०) विबुध (२६६) क्षुधा (२५) तृषा (२५) भवार्णव (७४) इत्यादि एकाधस्थलपर 'एवजुत' (एव + जुत) जैसे रूप भी मिलते हैं, जिनमे अरबी-हिन्दी का मिश्रण लक्षित होता है। भाषा में प्राय छोटे-छोटे प्रचलित समस्त रूपो का ही प्रयोग किया गया है, परन्तु कही-कही अत्युग्रचित (१३६) दयाभिलाष (१३३) जैसे शब्दो के प्रयोग भी हैं, जो उनके सस्कृत ज्ञान को ससूचित करते हैं। कहावतो तथा मुहावरो के प्रयोग भी दिखाई देते हैं। यथा—तेता पाव पसारिये जेती लाबी सौर (२६१) ढील न कीजिए (४२) पर्यो रहू तुम चरनतट (४३) काटे पाप पहार (३३६) मेलो क्यो न कपूर मे हीग न होय सुवास (३४२) पोलो घट सूधो सदा (३४१) सर्पन दूध पिलाइये विष ही के दातार (३८१) जीने से मरना भला (४०३) इत्यादि।

अलकार योजना—

सतसई मे तीनो प्रकार के अलकार दिखाई देते हैं। शब्दालकारो मे छेकानु-प्रास, वृत्यानुप्रास, वीप्सा, लाटानुप्रास आदि का तथा अर्थालकारो मे उपमा, दृष्टान्त,

अर्थान्तर न्यास, रूपक, यथा-सख्य, उल्लेख तुल्य योगिता आदि का और उभयालकार मे ससृष्टि का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है ।

शब्दालकार

(१) 'गिरि गिरि प्रति मानिक नही, वन-वन चदन नाहिं ।' वीप्सा

(२) 'सुधर सभा मे यो लगें, जैसे राजत भूप ।' पद्य सख्या (२८६) छेकानुप्राम

(३) 'धन सम कुल सम धरम सम समवय मीत वनाय ।' पद्य सख्या (४४६)

(४) 'दुराचारि तिय कलहिनी किकर कूर कठोर ।' पद्य स (२५१) वृत्यनुप्रास

अर्थालकार—

(५) 'वक वत हित उद्यम करैं, जो हैं चतुर विसेखि ।' पद स (१५२ उपमा

(६) 'सत्यदीप वाती क्षमा, सीलतेल सजोग ।' पद्य स (२००) रूपक

(७) भला किये करि है वुरा, दुरजन सहज सुभाय ।
पय पायें विष देत हैं, फणी महा दुखदाय ।। (१०४) दृष्टान्त

(८) 'जैसी सगत कीजिये, तैसा ह्वै परिनाम ।
तीर गहे ताके तुरत, माला तें ले नाम ।। (३१६) अर्थान्तिरन्याय

यह बात ध्यान देने की है कि उपमा, दृष्टान्त आदि अलकारो से युक्त दोहे अधिकतर पूर्ववर्ती वाक्यो से प्रभावित हैं । मौलिक नही ।

उभयालकार—

१. नीतिवान नीति न तजें, सहे भूख तिस त्रास ।
ज्यो हमा मुक्ता विना, वनसर करे निवास ।। पय स० (३२०)
(लाटानुप्रास, छेकानुसास, दृष्टान्त की ससृष्टि)

विधान-छन्द-शैली

समग्र रचना पुस्तक दोहो मे है और छन्द-शास्त्र की दृष्टि से दोहे प्राय निर्दोष है ।

गुण-दोष-प्रसाद और माधुर्य रचना के प्रधान गुण हैं । कहीं-कही अप्रयुक्त तत्व दोप भी दृष्टिगत होता है ।[1] निम्नाकित दोहे मे दिचित्र का प्रयोग 'वुद्धिमान' के अर्थ मे किया गया है, परन्तु ये सव सामान्य स्कलन हैं, जिनसे सर्वथा मुक्त रहना कदाचित् किसी भी कवि के वश मे नही । मुख्यदोष तो नीरसता है, जिनके कारण विषय की दृष्टि से उत्तम होने पर भी रचना, वृन्द सतसई के समान लोक-प्रिय न हो सकी ।[2]

---

१ भयो यदा अपमान निज, भाषै नाहिं विचित्र ।

२. डॉ० रामस्वरूप ऋषिकेश, हिन्दी मे नीतिकाव्य का विकास, पृ० ५५६ दिल्ली पुस्तक भडार, दिल्ली ।

रचना मे यद्यपि विविधता है तथापि इस रचना का वृन्द सतसई आदि नीति ग्रन्थो के समान प्रचार-प्रसार न हो सका, यह परिताप का विषय है।

बुधजन सतसई : अनुशीलन

सतसई के नीति-सम्बन्धी अंशो पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि कवि ने केवल उपदेशात्मक ही नही, सामान्य नीति की भी अनेक उपयोगी बातो का वर्णन किया है। मुख्यतः 'बुधजन सतसई' एक सुन्दर नीति ग्रन्थ है। इसमे पाच प्रकार की नीतियो का समावेश है। वे इस प्रकार हैं :—

(१) वैयक्तिक नीति (२) पारिवारिक नीति (३) सामाजिक नीति (४) आर्थिक नीति (५) इतर प्राणि-विषयक नीति।

१ वैयक्तिक नीति—जैन रचनाओ मे प्राय· शारीरिक सुखो की उपेक्षा ही दिखाई गई है, परन्तु बुधजन ने दु खो से छूटने की प्रेरणा ही नही दी, रोग-निवारण के उपायों का उल्लेख भी किया है। कतिपय वैयक्तिक नीति सम्बन्धी दोहे उद्धृत हैं—

पट पनही बहु खीर गो, औषधि बीज अहार।
ज्यों लाभे त्यो लीजिये, कीजे दुःख परिहार[1] ॥
कोढ मास, घृत जुर विषे, सूल द्विदल थो टार।
हग रोगी मैथुन तजो, नवां वान अतिसार[2] ॥
असत् वैन नहि बोलिये, तातें होत विगार।
वे असत्य नहि सत्य हैं, जाते हैं उपकार[3] ॥
पुस्तक गुरु थिरता लगन, मिले सुथान सहाय।
तब विद्या पढिवा बने, मानुष गति परजाय[4] ॥
सीग पूछ बिन बैल है, मानुष विना विवेक।
भक्ष्य अभक्ष्य समझे नहीं, भगिनी भामिनी एक[5] ॥

पारिवारिक नीति

कवि ने सुभाषित नीति मे अनेक उपयोगी बातो का उल्लेख किया है। माता-पिता की सेवा तथा पातिव्रत पर तो सभी नीति-कवियो ने थोडा बहुत लिखा है, परन्तु बुधजन ने भाई के प्रति पुत्र और पत्नी से भी अधिक प्रेम तथा भानजे के प्रति सावधानता का उल्लेख किया है कतिपय पारिवारिक नीति सम्वन्धी दोहे उद्धृत हैं—

---

१ बुधजन सतसई, पद्य स ख्या २३८ प्रथम स स्करण, सनावद।
२ वही, पद्य स ख्या २७८
३ वही, पद्य स ख्या ६७७
४ वही, पद्य स ख्या ४२९
५ वही, पद्य स ख्या ४३७।

निजभाई निरगुन भलो, पर गुनजुत किहि काम।
आगन तरु निरफल जदपि, छाया राखे थाम[1] ॥१८१॥
विद्यादयें कुशिष्य को, करे सुगुरू अपकार।
लाख लडावो मानजा, खोसिलेय अधिकार[2] ॥२३५॥

सामाजिक नीति—

पातिव्रत पर तो प्राय सभी नीति-कवि वल देते हैं, परन्तु पत्नी व्रत पर विशेष वल जैन कवियों की विशेषता है। तदनुसार बुधजन ने भी सामाजिक यौन-पवित्रता की रक्षा के लिये परस्त्री सेवन एव वेश्या सेवन का निषेध किया है व इस विषय पर अनेक भावपूर्ण दोहे लिखे है। कतिपय सामाजिक नीति सम्बन्धी दोहे उद्धृत हैं—

अपनी परतख देखिके, जैसा अपने दर्द।
तैसा ही परनारिका, दुखी होत है मर्द[3] ॥४६१॥
हीन-दीन मे लीन है, सेती अग मिलाय।
लेती सरवस सपदा, देती रोग लगाय[4] ॥४७३॥

आर्थिक नीति—

यद्यपि बुधजन ने धन-जन्य सम्मान, तथा दारिद्र्य-जन्य अपमान का अनेक दोहो मे सविस्तार उल्लेख किया है, तथापि उन्होने चोरी, अन्याय, जुआ आदि साधनो मे धन-सग्रह को बहुत बुरा कहा है। उनके मत मे नीति का परित्याग नितान्त अनुचित है। आर्थिक नीति सम्बन्धी पद्य उद्धृत हैं—

नीति तजे नहि सत्पुरुष, जो धन मिले करोर।
कुलतिय बनै न कचनी, भुगते विपदा घोर[1] ॥३१८॥

इतर प्राणि विषयक नीति

'प्राण सबको प्यारे होते हैं और अहिंसा जैनो का मुख्य सिद्धान्त है, इसलिये बुधजन ने मास-भक्षण तथा आखेट का प्रबल निषेध किया है। इसके अतिरिक्त मद्यपान के त्याग के ये हेतु प्रस्तुत किये हैं कि—उसके नशे मे मनुष्य गोपनीय बातें प्रकट कर देता है। सुधबुध भूल कर गलियों मे गिर कुत्तो से मुख चटवाता है मद्य—निर्माण मे होने वाली हिंसा के पाप का भागी होता है।[2]

---

१ बुधजन सतसई, पद्य स १८१।
२ से ४ वही, पद्य स १८१, १२३५, ४६१, ४७३
५ बुधजन सतसई पद्य स. ३१८
६ वही ४८३

उपर्युक्त नीतियो के अतिरिक्त अन्य नीतिया भी रचना में देखी जा सकती हैं। यथा-मिश्रित नीति आदि। उद्यम प्रशसनीय है परन्तु दैव के समक्ष उसकी दाल नही गलती। उसमे वह शक्ति नही कि उद्यमी को सुख, विद्या, आयु, धन आदि से प्रसन्न कर सके। पूर्व जन्म के कर्म इतने प्रबल हैं कि शिशु जब गर्भ मे होता है तभी से उसके लिये ये वस्तुए निश्चित हो जाती है —

सुख दु ख विद्या आयु धन, कुल बल वित्त अधिकार।
साथ गर्भ मे अवतरे, देहधरी जिहि बार[1] ॥२४९॥

१०—तत्वार्थबोध--वि० सं० १८७९

कविवर बुधजन की एक अन्य रचना तत्वार्थबोध है जो एक पद्य ग्रन्थ है। इसमे गृद्धपिच्छाचार्य के तत्वार्थ सूत्र के सूत्र विषय का पल्लवित अनुवाद दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ मे निम्नलिखित विषयो का समावेश किया गया है —

(१) मगलाचरण (२) चतुर्गति वर्णन (३) सप्ततत्त्व कथन (४) सम्यगदर्शन, ज्ञान, चारित्र (५) मिथ्या दर्शन, ज्ञान, चारित्र, (६) नय, (७) निक्षेप, (८) सम्यग्तत्त्व के २५ दोष, (९) अनेकात, (१०) जीव के नौ अधिकार, (११) समुद्घात, (१२) षट्द्रव्य, (१३) पल्य का प्रमाण (१४) उर्ध्वलोक-मध्यलोक-अधोलोक वर्णन, (१५) द्रव्य-गुण-पर्याय, (१६) पच्चीस क्रिया (१७) अष्टकर्म (१८) निर्देश (१९) स्वामित्व (२०) साधन (२१) अधिकरण (२२) विधान (२३) प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभागबध, (२४) १४ गुणस्थान (२५) पचपरमेष्ठी (२६) श्रावक की ग्यारह प्रतिमा (२७) मुनिधर्म कथन (२८) ध्यान का वर्णन इत्यादि।

"इनके अतिरिक्त अन्य कई विषयो का समावेश इस ग्रन्थ मे है। पं० परमानन्द जी शास्त्री के अनुसार इसमे सम्यक्तत्व के सभी अगो का विशद विवेचन, पल्य, सागर व राजू के प्रमाण का वर्णन, मध्यलोक की व्याख्या, चौदह गुणस्थानों की चर्चा, श्रावकाचार की कथनी, १० धर्म और १२ तपो का वर्णन, शील के १८००० भेदो का वर्णन भी उपलब्ध होता है। इसमे गोमटसार जीवकाड के प्राय सभी विषयो पर प्रकाश डाला गया है[2]।"

इस ग्रथ मे आत्म-स्वातत्र्य प्राप्त करने के मार्ग का काव्यमय शैली मे सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया गया है। परिणामो मे वैराग्यभाव जगाने के लिये कवि एक ही पद्य मे कितनी मार्मिक बात कहते हैं —

---

१. वही २४९
२. परमानन्द शास्त्री अनेकान्त, वर्ष ११, किरण ६, पृ २४६, वीर सेवा मदिर प्रकाशन।

'शरीर, धन और स्त्री का साहचर्य ही जगत् का मूल है, संसार-बधन का कारण है। अज्ञानी जीव इन्हे अपना इष्ट, अनुकूल एव प्रिय मानता है[1]।" वे आगे सुखी होने का उपाय बताते हुए कहते हैं —

"हे प्राणी! यदि तू सुखी होना चाहता है तो सुखी होने का उपाय बताता हू उसे ध्यान पूर्वक सुन। जगत् के समस्त स्त्री, पुरुष सुख चाहते हैं, परन्तु वे सुख की प्राप्ति का ठीक साधन नही जानते। वे धन की प्राप्ति मे सुख मानते हैं। परन्तु यह समझ ठीक नही है। धन सम्पन्न व्यक्ति प्रत्यक्ष मे दु खी देखे जाते हैं, उन्हे राजा, चोर, रोग, शोक, ग्लानि आदि के अनेक दु ख होते रहते हैं। वे धन की प्राप्ति हेतु नदी, पर्वत, तालाब, वन आदि भयानक स्थानो मे जाते हैं तथा भोजन, पानी, निद्रा का भी परित्याग करते हैं। आवश्यकता पडने पर दूसरो के प्राणो को पीडा पहुचाते हैं। इतने कष्ट उठाने के बाद भी यदि उन्हे धन की प्राप्ति नहीं होती तो बहुत अधिक दु ख का अनुभव करते हैं। कदाचित् पुण्य योग से धन की प्राप्ति हो भी जाती है परन्तु अस्वस्थता के कारण उसको भोगने मे असमर्थ रहते हैं। कदाचित् सम्पूर्ण साधन मिल भी गये तो भोगो मे आसक्त हाकर जन्म, मरण, रोग आदि के दु खो को भोगना पडता है[2]। भाव यह है कि मानव जीवन आदि से अन्त तक दु ख पूर्ण है, अत: जिनमत को धारण करो। इसके धारण किये बिना सुखो की प्राप्ति दुर्लभ है।

इसी ग्रन्थ मे धन के विषय मे कवि लिखते हैं —

"धन के कारण भाई-भाई परस्पर मे लडते हैं। धन की अधिक प्राप्ति न होने से सेवक स्वामी का साथ छोड देते हैं। धन के कारण ही चारो का भय रहता है।

---

१. तन धन त्रिया जगत का मूल, जीव रहे इनके अनुकूल।
सुनो अवस्था तिनकी अबै, कछु विरागता आवै तबै॥
बुधजन तत्वार्थबोध, पद्य संख्या १३, पृ सख्या २, कन्हैयालाल गगवाल, लश्कर प्रकाशन।

२ सुखी हुवा चाहो जगमांहि, जल में घृत कहूं निवसै नांहि।
चारू गति मे फिरे अजान, ताको बरनू विविध विधान॥
सुख चाहे नरनारी सबे, मानहिं धनतें सो नहि पावे।
परतखि दु:खी लखे धनवान, भूप चोर रुज सोक गिलान॥
नदी तडाग सैलवन फिरे, असन पान निद्रा परिहरै।
परकू, पीडै प्रापति लहै, बिन प्रापति दुख अधिका वहै॥
करि नहि सके मिलै जो भोग, शक्ति हीन के होय वियोग।
जो भागन तें भोगे भोग, बाढे जन्म-मरण दुख रोग॥
बुधजन तत्वार्थबोध, पद्य स ख्या ६, १०, ११, १२, पृ० स० २ लश्कर प्रकाशन

शासक भी धन के कारण भयभीत करते रहते हैं। धन अधिक हो जाने पर मनुष्य मद्यपान, वेश्यागमन, परस्त्री सेवन, मांस भक्षण, जुआ आदि दुर्व्यसनों का सेवन करने लग जाता है। धन की प्राप्ति होने पर रक्षण का भय और उसके विनष्ट हो जाने पर दुखों का अनुभव करता है। धन के लिये नाना प्रकार से क्रोध, छल आदि करता है। अत आदि, मध्य और अन्त कहीं भी-किसी भी दशा में धन सुख का कारण नहीं है। सुख तो परिणामों में समता भावों को धारण करने से प्राप्त होता है[1]।"

सम्यग्दर्शन के बाहरी कारणों का दिग्दर्शन कवि ने निम्न शब्दों में कराया है :—

जिन महिमा जिन छवि दरस, दुख वेदन सुर रिद्धि।
भव सुमरण, आगम श्रवण, कारण बाह्य प्रसिद्धि[2]॥

सम्यग्दर्शन के अन्तरंग कारणों का उल्लेख करते हुए कवि कहते हैं —

अन्तरंग सम्यक्त्व का, करन लब्धि है मूर।
तातैं वरनूं लब्धि कूं, जैसे भाषी सूर[3]॥

कवि ने निश्चय और व्यवहार दोनों नयों की उपादेयता और अनुपादेयता का बड़ा ही भावपूर्ण एवं तर्कसंगत वर्णन किया है। उसे कवि के ही शब्दों में —

"जिसमें पर की अपेक्षा नहीं है, जो अनुपम है, जिसका न आदि है और न अन्त। अपने ही गुण-पर्यायों में जो भेद ग्रहण नहीं करता तथा वस्तु के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करता है उसे निश्चय नय कहते हैं। असत्यार्थ नय को व्यवहारनय तथा सत्यार्थ नय को निश्चय-नय कहते हैं। निश्चय नय के आश्रय से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। वह बंध का कारण नहीं है। इस जीव ने व्यवहार नय से वस्तु के स्वरूप को अनंतवार श्रद्धा में लिया और सुना परन्तु निश्चय नय के बिना संसार में भ्रमण ही किया। अत आपापर का भेद विज्ञान होने पर, स्वानुभव के द्वारा समस्त वेदों (लिंगों) का अथवा भव-भ्रमण का उच्छेद करना ही योग्य है[4]।"

"उपर्युक्त थोड़े से दोहों में जो अर्थ गांभीर्य है, उस पर से ही पाठक इस ग्रन्थ की उपयोगिता, महत्ता और विषय विवेचन की सरल एवं मनोहर सरणि का

---

१ बुधजन : तत्वार्थबोध, पद्य स. ९, १०, ११, १२, १३ लश्कर, प्रकाशन।
२ वही, पद्य स ६३,
३ वही, पद्य स. ६४।
४ बुधजनः तत्वार्थबोध, पद्य संख्या ३९, ४४, पृ० १७, १८, १८ लश्कर

मूल्य ग्राक सकेंगे और कवि के भावुक हृदय की गतिविधि को भी पहिचान सकेंगे[1]।" इस प्रकार यह सारा ही ग्रन्थ सैद्धान्तिक विवेचन सुन्दर, सुगम एव ललित सूक्तियो, विविध अनुप्रासो आदि को लिये हुए हैं।

तत्वार्थ बोध का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन—

तत्वार्थबोध की भाषा ब्रज मिश्रित राजस्थानी है, किन्तु उसका रूप साहित्यिक है। अत उसमे आये हुए क्रियापदो पर अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

विधान-छन्द-शैली—

समग्र रचना मुख्य रूप से मुक्तक दोहो मे है और छन्द शास्त्र की दृष्टि से दोहे प्राय निर्दोष हैं। विवेच्यरचना मे कवि ने दोहा छन्द के अतिरिक्त सोरठा, चौपाई, छप्पय, अडिल्ल, कुण्डलिया, गाथा और गीता छन्दो के प्रयोग किये हैं। प्रसाद और माधुर्य गुण से रचना परिपूर्ण है।

इस प्रकार के अध्ययन से विदित होता है कि कवि का भाषा पर अद्भुत अधिकार था। वे बडे से बडे गभीर भाव को एक पक्ति में स्पष्टता और पूर्णता के साथ व्यक्त कर सकते थे। 'इसमे गोम्मटसार जीवकाड के प्राय सभी विषयो पर प्रकाश डाला गया है'[2]। 'इस ग्रन्थ को कविवर ने वि.स १८७९ मे राजा जयसिह के शासनकाल मे बनाकर पूर्ण किया[3]।'

११—पद-संग्रह (स्फुटपद) १८८०-९१ वि०सं०

'कविवर बुधजन का पद सग्रह भी विभिन्न राग-रागिनियो से युक्त है। इस सग्रह मे २४३ पद हैं। इन पदो मे अनुभूतियो की तीव्रता, लयात्मक, सवेदनशीलता और समाहित भावना का पूरा अस्तित्व विद्यमान है। इनके पदो मे स्वानुभूति एव अध्यात्म की तल-स्पर्शिनी छाया विद्यमान है। भाव और भाषा की दृष्टि से यह

---

१. परमानन्द शास्त्री : अनेकान्त वर्ष ११, किरण ६, स पा जुगलकिशोर मुख्तार, वीर सेवा मदिर, सरसावा (सहारनपुर), वि०स २००९

२. परमानन्द शास्त्री, वर्ष ११, किरण ६ पृ० २४६।

३ स वत् अठारा सै विषै, अधिक गुण्यासी वेश।
कार्तिक सुदि शशि पचमी, पूरण ग्रन्थ अशेष॥
सुवस बसै जयपुर तहा, नृप जयसिह महाराज।
बुधजन कीनो ग्रन्थ तहा, निज पर के हित काज॥

बुधजनः तत्वार्थबोध, पद्य स ख्या १३, १४ पृ.स २७७ प्रका० कन्हैयालाल गगवाल, लश्कर।

रचना उच्च कोटि की है। इनके पदो का कवित्व पक्ष व गेय पक्ष दोनो ही परिपुष्ट हैं'[1]।

दार्शनिक तत्वों को समझाने के लिये हमारे कवियो ने जो पद और भजनो का माध्यम अगीकार किया है, उसके अनेक कारण हैं।

एक तो यह कि पद मे कविता के साथ मे गेय तत्व सम्मिलित रहता है। यह सगीत, पदो को राग-लय और तान की अपरिमित सभावनाए प्रदान करता है।

दूसरे यह कि पद का विस्तार सीमित होता है अत सक्षेप मे सब कुछ आ जाता है। तीसरे यह कि उपर्युक्त विशेषताओ के कारण पद आसानी से याद हो जाता है। अत. अध्यात्म-तत्व के चितन-मनन मे सहायता मिलती है। एक बात और, इन पदो का दैनिक जीवन मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और इनका स्पष्ट प्रयोजन है।

हमारे आध्यात्मिक-जीवन की यह परपरा रही है कि प्राय प्रत्येक धर्म और पथ के व्यक्ति अपने-अपने धर्म स्थानो मे प्रात साय एकत्रित होते थे, वहा शास्त्र प्रवचन सुनते थे और अन्त मे स्तुति पदो का गान होता था।

धर्म का यह अत्यन्त सुन्दर, सरस और ग्राह्य रूप था। आज भी जिन मदिरो मे शास्त्र-सभाए होती हैं, वहा ये पद या इसी प्रकार के अन्य पद गाये जाते हैं। इस प्रकार का भजन-गान गाधी जी की प्रार्थना सभाओ का मुख्य अग था। हिन्दी जैन कवि 'दौलतराम' ने धार्मिक प्रवचन का एक ऐसा सुन्दर चित्र खीचा है कि मन मुग्ध हो जाता है। साधर्मी जन मिलते हैं, प्रवचन की अमृत रूपी झडी लगती है—ऐसी कि समग्र पावस-फीके पड जाय।

'इन पदो की भावात्मक पृष्ठ भूमि, विचारो की सात्विक्ता आत्मनिष्ठ अनुभूतियो की गहराई, अभिव्यक्ति की सुघराई, सरलता, शालीनता और सरस गेयता सब भव्य है। इन सब तत्वो का समन्वय ही पाठक के मन मे लोकोत्तर आनद की सृष्टि करता है। बुधजन के पदो मे भावावेश, उन्मुक्त प्रवाह, आन्तरिक सगीत कल्पना की तूलिका द्वारा भाव-चित्रो की कमनीयता, आनन्द विव्हलता, रसानुभूति की गंभीरता एव रमणीयता का पूरा समन्वय विद्यमान है। कवि 'बुधजन' द्वारा रचित पदो मे उनके जीवन और व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे अनेक जानकारी की बातें प्राप्त होती हैं। इनके समस्त पद गेय हैं'[2]।

---

१ डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्यः तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परपरा भाग–४, अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद प्रकाशन, पृ० २९९।

२. जैन डॉ० राजकुमार : अध्यात्म पदावली, पृ० २१–२२, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

इनकी रचनाओ मे रूपक अलकार के दर्शन होते हैं । यथा—

निजपुर मे आज मची होली, निज पुर मे ।
उमगि चिदानन्द जी इत आये, उत आई समक्ति गोरी ॥१॥
लोक्लाज कुल कानि गवाई, ज्ञान गुलाल भरी भोरी ।
समक्ति केशर रग बनायो, चारित की पिक छोरी ॥२॥
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसो बरस्योरी ।
देखन आये "बुधजन" भीगे, निरख्यो ख्याल अनखोरी ॥३॥[1]

पद सग्रह भक्ति रस गीतो से ओतप्रोत एक सकलन मात्र है, जिसे गाकर कवि ने शान्ति का अनुभव किया होगा । जैन जगत मे "बुधजन" के पदो का अत्यधिक प्रचार है । अब तक उनके २६५ पद प्राप्त हो चुके हैं । पदो के अध्ययन से पता चलता है कि वे उच्च श्रेणी के कवि थे । आत्मा-परमात्मा एव ससार सम्बन्धी चिन्तन कई वर्षों तक करते रहे और उसी का परिशीलन भी किया करते थे । उन्होने अन्य कवियो की भाति आत्म-दर्शन किये थे[2] । 'जैन साहित्य मे रूपको की छटा केवल "बुधजन" की रचनाओ मे ही नही, उनके पूर्ववर्ती अपभ्र श भाषा के कवियो की रचनाओ मे प्रचुरता से मिलती है[3] । इन विचारो की रचना और आत्मानुभूति की प्रेरणा पाठको के समक्ष ऐसा चित्र उपस्थित करती है, जिससे पाठक आत्मानुभूति मे लीन हुए विना नहीं रहता । ससार मे मनुष्य अपनी अर्थशक्ति और जन शक्ति का बडा भरोसा रखता है, कि समय आने पर हमारा धन और माता-पिता, पुत्र-मित्र, स्त्री एव परिजन वगैरह अवश्य ही हमारे काम आएँगे और विपत्ति मे हमारा साथ देंगे । धनादि को वह अपनी निकटतम वस्तुए मानता है, परन्तु समय आने पर वही मनुष्य देखता है कि उसका पैसा और उसके स्वजन-परिजन कोई भी उसकी विपत्ति के साथी नही हैं—एक भी ऐसा नही है जो उसकी विपत्ति को हलका कर सके । तब उसे मालूम पड जाता है कि जगत मे जिस धन और स्वजन-परिजन को वह अपना-अपना कहकर उद्घोष करता था उनमे से एक भी उसका नही है । उस समय उसकी विपत्ति मे यदि कोई सहायता करता है, उसे शान्ति-सुख और सतोष पहुचाता है तो वह है उसकी आत्मा का भाव कर्म ।

---

१ अध्यात्म होली का रग शीर्षक से "अहिंसा वाणी" पत्रिका मे प्रका० वर्ष १६, अक २, फरवरी १९६६ ।

२ कासलीवाल डॉ० कस्तूरचद, हिन्दी पद सग्रह, पृ० १६० दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी, महावीर भवन, जयपुर, मई १९६५ ।

३ जैन डॉ० देवेन्द्रकुमार, अपभ्र श भाषा और साहित्य, पृ० स० २७७ भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रकाशन ।

आत्म-परिणाम, शान्ति, सतोष और समता आदि ही अपने कहे जा सकते हैं क्योकि ये भाव आत्मा के स्वभाव है जो निरतर आत्मा के साथ रहने वाले हैं। धन-स्वजन-परिजन आत्मा से पृथक् हैं और नश्वर हैं। इसलिये जो वस्तु अपनी नही है उस पर प्रतीति रखना व्यर्थ है और अज्ञता की सूचक है।

कविवर बुधजन ने निम्न लिखित पद मे इसी धर्मतत्व के महत्त्व का दिग्दर्शन कराया है। पद कर्ता के शब्दो मे देखिये वे कहते हैं कि "हमे धर्म पर ही सम्यक् प्रतीति और अपनत्व का भाव रखना चाहिये।"

'धर्म बिन कोई नही अपना ।।'
सुख-सपति-धन, थिर नहिं जग मे जैसे रेन सपना ।।१।।

हे आत्मन् ! ससार मे धर्म ही अपनी वस्तु है और इस पर ही भरोसा किया जा सकता है कि समय आने पर यह विपत्ति मे सहायक होगा। जगत् की समस्त सुख-सामग्री और अर्थ का कुछ भी ठिकाना नही है। जिस प्रकार रात्रि का स्वप्न जागने पर मिथ्या निकल आता है, उसी प्रकार जगत् का यह वैभव भी क्षण नश्वर है और रात्रि के स्वप्न के समान न अपने मे कुछ अर्थ रखता है और न इस आत्मा को समय पर कुछ सहायता पहुचा सकता है। वास्तव मे धर्म के बिना कोई अपना नही है। आगे "बुधजन" कहते हैं कि हमारा वर्तमान अतीत के धर्माचरण का फल है और भविष्य का निर्माण हमारे धर्माचरण पर निर्भर है। कितने स्पष्ट शब्दो मे वह धर्माचरण की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हैं :

आगे किया सो पाया भाई याही है निरना।
अब जो करेगा सो पावेगा, तातें धर्म करना ।।

हे आत्मन्। यह स्पष्ट है कि पूर्व जन्म मे जो कुछ तुमने धर्म का पालन किया था उसके अनुसार ही तुम्हें वर्तमान मे सुख सामग्री प्राप्त हुई है और वर्तमान मे जैसा धर्माचरण करोगे तदनुसार ही भविष्य मे साधन-सामग्री मिलेगी इसलिये पूर्ण शाति एव सुख प्राप्त करने के लिये केवल धर्म का ही पालन करना चाहिये। कविवर बुधजन लोक दृष्टि से भी धर्माचरण की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि :—

ऐसे सब ससार कहत है, धर्म किये तिरना।
परपीडा बिसना दिक सेयें, नरक विषै परना ।।

समस्त ससार इस बात का समर्थन करता है कि जीव, धर्म के द्वारा ही ससार-सागर से पार होता है इसके विपरीत जो दूसरो को कष्ट पहुचाता है और व्यसन आदि कर सेवन करता है वह नरक मे जाता है और असीम दुःखो को उठाता हुआ ससार समुद्र मे गोते लगाता रहता है। कविवर कहते हैं :—

अशुभ कर्म का उदय राजा और रक किसी को भी नहीं छोडता है। देखिये :—

नृप के घर सारी सामग्री ताके ज्वर तपना ।
अरु दारिद्री के हू ज्वर है पाप उदय थपना ॥

राजा भी इस संसार में सुखी नहीं है और दरिद्र भी सुखी नहीं है। राजा के यहां यद्यपि सम्पूर्ण सुख-सामग्री विद्यमान है फिर भी तृष्णा के कारण वह सामग्री उसे दुःख और संताप ही पहुंचा रही है। दरिद्री तो अपने अशुभ कर्म के कारण अभाव में दुःखी है ही। कविवर बुधजन आगे कहते हैं :—

विपत्ति में कोई सगा सम्बन्धी भी साथ नहीं देता। संसार स्वार्थी है उनसे सहायता की आशा करना दुराशा मात्र है। ऐसे अवसरों पर धर्म का ही केवल भरोसा किया जा सकता है। उनके ही शब्दों में सुनिये :—

"नाती सो स्वारथ के साथी तोहि विपति भरना ।
वन-गिरि-सरिता-अगनि जुद्ध में धर्म ही का शरणा ॥

आत्मन्! तेरे जितने भी सम्बन्धि-जन हैं, जिन्हें तू अपना बतलाता है, सब स्वार्थ के साथी हैं। अपना काम निकल जाने पर तुम्हारा कोई भी साथ देने वाला नहीं है। विपत्तियों का बोझ तुझे ही उठाना होगा। वन में, पर्वतों पर नदी और अग्निकाण्डों में तथा युद्ध जैसे अवसरों पर केवल धर्म ही तुम्हें शरण दे सकता है। कविवर के शब्दों में ही धर्म की संक्षिप्त रूप रेखा देखिये —

चित 'बुधजन' संतोष धारना, परचिंता हरना ।
विपति पड़े तो समता रखना, परमातम जपना ॥

आत्मन्! चित्त में सदैव संतोष धारण करना। दूसरों की आकुलता को दूर करना, विपत्ति काल में व्याकुल न होकर समता धारण करना और निरंतर परमात्मा का पुण्य स्मरण करना यही धर्म है। जगत् में धर्म के सिवाय कोई अपना नहीं है।

'धर्म बिन कोई नहीं अपना'

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी के जैन कवियों के भजन व पद सदियों से हमारी अमूल्य-निधि रहे हैं। उन्होंने हमारे जीवन को प्रति क्षण नया उत्थान दिया है। इसमें अपरम्पार शास्त्रीय मथन सुषुप्त पड़ा है। कविवर बुधजन समझाना चाहते हैं कि मनुष्य पर्याय पाकर उसे विषय भोग में बिता देना बहुत बड़ी मूर्खता है। कैसा चुभता हुआ उदाहरण दिया है :—

यों भव पाय विषय सुख सेना गजचढ़ि ईंधन ढोना हो।'

इस चित्र को आंखों के आगे खड़ा कीजिये। कैसा मूर्ख होगा वह पुरुष जो राजसी हाथी को ईंधन ढोने के काम में प्रयुक्त करे।

आध्यात्मिक पद तो अन्य कवियों ने भी लिखे हैं, परन्तु "बुधजन" के भजन अपनी अलग विशेषता रखते हैं। द्यानतराय, दौलतराम, भागचन्द आदि के समान

"बुधजन" के भजन भी आनन्द-दायक हैं। कवि के आध्यात्मिक भजन उनकी वैराग्य भावना का मूर्तिमान प्रतिबिंब है। भजनो मे कवि ने राग-रागिनियो के चुनाव का विशेष ध्यान रखा है। प्रत्येक पद आध्यात्मिक रस से ओत-प्रोत है और ध्यान से पढने-सुनने वालो पर वैराग्य की अमिट छाप छोडे बिना नही रहते सच तो यह है कि—कवि ने भजनो के बहाने जैन धर्म की आत्मा ही खोलकर रख दी है।

कविवर बुधजन के ये आध्यात्मिक भजन आज भी उतने ही उपयोगी एव प्रेरणा दायक हैं जितने पूर्वकाल मे थे। 'इस जडवाद के युग में आज ऐसे भजनो की उतनी ही आवश्यकता है जितनी रेगिस्तान के प्रवासी को जल की आवश्यकता होती है। बुधजन कवि का साहित्य आध्यात्मिक रस से ओत प्रोत है और ध्यान से पढने सुनने वालो पर वैराग्य की अमिट छाप छोडे बिना नहीं रहता। बुधजन ने मुमुक्षु जगत् का महान उपकार किया है। साहित्य स्वय एक कला है और उस कला को दूसरी कलाओ के अभाव मे दबाया नहीं जा सकता। उत्तम साहित्य को पढकर हृदय मे जो गुद गुदी और अनुभूति होती है, वह बुधजन के पद साहित्य मे है[1]।'

बुधजन ने मुख्यत आध्यात्मिक पद लिखे है। इन पदो के निर्माण मे कवि का एक मात्र लक्ष्य है—मानव का विवेक जागृत हो व वह अपना जीवन नीति पूर्वक व्यतीत करे। कवि के समस्त पद ज्ञान मूलक व उद्बोधनकारी हैं। इस विषय को स्पष्ट करते हुए जैन डॉ राजकुमार लिखते हैं—'कवि के ज्ञान मूलक उद्बोधनकारी पदो की एक विशेषता यह है कि उनमे वस्तुतत्व को प्रतिपादित करने के लिये जो उपमाए अलकार और प्रतीक लिये गये हैं, उनमे व्यावहारिकता का पुट है। समस्त साहित्यिकता और सरसता को अक्षुण्ण बनाये रखकर भी कवि ने प्रयत्न किया है कि इन पदों की आध्यात्मिकता सर्व साधारण के लिये सुलभ हो, इसलिये इनकी शैली, अभिव्यजना और उपमा बडी सीधी और हृदय ग्राही है। प्राय प्रत्येक दार्शनिक स्थापना के समर्थन में व्यावहारिक हेतु और उजागर दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये हैं।'[2]

उदाहरणो से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पदावली की भाषा मे विशेषण और सज्ञाएं ओकारान्त हैं। इसमे भूतकालिक ओकारान्त क्रियाए, सर्वनाम और परसर्ग के अनेकानेक रूप मिलते हैं जो इनकी रचनाओ को स्पष्टतया व्रज भाषा से प्रभावित घोषित करते हैं किन्तु यह प्रभाव ही है। पदो की मूल भाषा निश्चय ही हिन्दी है।

---

१. डॉ लाल बहादुर शास्त्रीः अध्यात्म पद संग्रह की भूमिका, पृ० ५।

२. जैन डॉ० राजकुमार : अध्यात्म पदावली भाग–२, पृष्ठ १९, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रकाशन, १९६४।

१२-पंचास्तिकाय-भाषा (१८९२ वि०सं०)

७ पंचास्तिकाय भाषा (वि० स० १८९२)

जयपुर के तत्कालीन दीवान सघी अमरचन्द की प्रेरणा से कविवर बुधजन ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। यह कवि की अनूदित कृति है। यह जैन दर्शन के सिद्धान्तो के प्रतिपादक प्राकृत भाषा के महान् ग्रथ 'पचास्तिकाय' का हिन्दी पद्यानुवाद है। इस कृति मे ५८२ पद्य हैं। यह एक दीर्घकाय रचना है।

यह आचार्य कुन्द कुन्द के पचास्तिकाय (प्राकृत) का हिन्दी पद्यानुवाद तो है, पर इसमे कवि की अपनी मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। इसमे जैन दर्शन के सिद्धान्तो मे से मुख्यत षट् द्रव्यो का वर्णन विस्तार से किया गया है। जीव, पुद्गल धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन पाच अस्तिकाय द्रव्यो को बहुप्रदेशी एव काल द्रव्य को एक प्रदेशी कहा गया है।

सपूर्ण ग्र थ दर्शनशास्त्र की गहन व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसमे प्रतिपादित वस्तुतत्व का सार इस प्रकार है —

विश्व अर्थात् अनादि-अनत स्वय सिद्ध सत् ऐसी अनतानत वस्तुओ का (छहो द्रव्य का) समुदाय। प्रत्येक वस्तु अनुत्पन्न एव अविनाशी है। प्रत्येक वस्तु मे मे अनत शक्तिया अथवा गुण हैं जो त्रैकालिक नित्य हैं। प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण अपने कार्य करती है अर्थात् नवीन दशाए-अवस्थाए-पर्यायें धारण करती है तथापि वे पर्यायें ऐसी मर्यादा मे रहकर होती हैं कि वस्तु अपनी जाति को नही छोडती अर्थात् उसकी शक्तियो मे से एक भी कम अधिक नहीं होती। वस्तुओ की (द्रव्यो की) भिन्न-भिन्न शक्तियो की अपेक्षा से उनकी (द्रव्यो की) छह जातिया हैं—जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, अकाश द्रव्य और काल द्रव्य जिसमे सदा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदि अनन्तगुण (शक्तिया) हो वह जीव द्रव्य हैं, जिसमे सदा वर्ण, गध, रस, स्पर्श आदि अनन्त गुण हो, वह पुद्गल द्रव्य है शेष चार द्रव्यो के विशिष्ट गुण अनुक्रम से गति-हेतुत्व, स्थिति हेतुत्व, अवगाहन हेतुत्व तथा वर्तना हेतुत्व हैं। इन छह द्रव्यो मे से प्रथम पाचद्रव्य सत् होने से तथा शक्ति अथवा शक्ति अपेक्षा से विशाल क्षेत्र वाले होने से अस्तिकाय हैं, काल द्रव्य 'अस्ति' है किन्तु काय नही है।

यह सर्व द्रव्य-अनत जीवद्रव्य, अनतानत पुद्गलद्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक अकाश द्रव्य तथा असख्य काल द्रव्य स्वय परिपूर्ण हैं और अन्य द्रव्यो से बिल्कुल स्वतत्र हैं, वे परमार्थत कभी एक दूसरे से मिलते नही हैं, भिन्न ही रहते हैं। देव, मनुष्य, तिर्यन्च, नरक, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, आदि जीवो मे जीव पुद्गल मानो मिल गये हो ऐसा लगता है किन्तु वास्तव मे ऐसा नही है, वे बिलकुल पृथक् हैं। सर्व जीव अनतज्ञान-दर्शन, सुख, बल की निधि हैं तथापि, पर द्वारा उन्हे कुछ सुख-दु ख नही होता तथापि ससारी अज्ञानी जीव अनादि काल से स्वत. अज्ञान पर्याय रूप परिणमित होकर

अपने ज्ञानानन्द स्वभाव को, परिपूर्णता को, स्वातंत्र्य को एव अस्तित्व को भी भूल रहा है और पर पदार्थों को सुख दुःख का कारण मानकर उनके प्रति राग-द्वेष करता रहता है, जीव के ऐसे भावो के निमित्त से पुद्गल स्वत ज्ञानावरणादि कर्म पर्याय रूप परिणमित होकर जीव के साथ सयोग मे आते हैं और इसलिये अनादि काल से जीव को पौद्गलिक देह का सयोग होता रहता है। परन्तु जीव और देह के सयोग मे भी जीव और पुद्गल बिलकुल पृथक् हैं तथा उनके कार्य भी एक दूसरे से बिलकुल भिन्न एव निरपेक्ष हैं। जीव केवल भ्रान्ति के कारण ही देह की दशा से तथा इष्ट अनिष्ट पर पदार्थों से अपने को सुखी दुःखी मानता है। वास्तव मे अपने सुख-गुण की विकारी पर्याय रूप परिणमित होकर जीव के साथ सयोग मे आते हैं और इसलिये अनादिकाल से जीव को पौद्गलिक देह का सयोग होता रहता है। परन्तु जीव और देह के सयोग से भी जीव और पुद्गल सर्वथा पृथक् हैं तथा उनके कार्य भी एक दूसरे से बिलकुल भिन्न एव निरपेक्ष हैं। जीव केवल भ्रान्ति के कारण ही देह की दशा तथा इष्ट अनिष्ट पर पदार्थों से अपने को सुखी दुःखी मानता है। वास्तव मे अपने सुख गुण की विकारी पर्याय रूप परिणमित होकर वह अनादिकाल से दुखी हो रहा है।

कवि ने विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जब तक जीव वस्तु स्वरूप को नहीं समझ पाता तब तक अन्य लाखो प्रयत्नो से भी मोक्ष का उपाय उसके हाथ नही लगता। इसीलिये इस ग्रन्थ मे सर्व प्रथम पचास्तिकाय और नव पदार्थों का स्वरूप समझाया गया है कि जिससे जीव वस्तु तत्त्व को समझकर मोक्ष मार्ग के मूलभूत सम्यग्दर्शन को प्राप्त हो। अस्तिकायो और पदार्थों के निरूपण के पश्चात् इसमे मोक्ष मार्ग सूचक—चूलिका है। यह अन्तिम अधिकार शास्त्र रूपी मन्दिर पर रत्न कलश की भाँति शोभा देता है।

सर्वप्रथम आचार्य कुन्द-कुन्द ने अन्य जीवो की भलाई के लिये इस ग्रन्थ की रचना की और इसके रहस्य को जानकर आचार्य अमृतचन्द्र ने इसकी सस्कृत टीका की और उसकी हिन्दी वचनिका हेमराज ने लिखी। इन रचनाओ का मनन कर 'बुधजन' ने हिन्दी मे इनका पद्यानुवाद किया। रचना का अध्ययन करने मे मिथ्यात्व का नाश होकर सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और सम्यक्त्व की प्राप्ति से प्राणी ससार समुद्र से पार होते हैं।

ग्रन्थ की महानता कविवर बुधजन के शब्दो मे—"इसकी महिमा का वर्णन नही किया जा सकता। मैं मन, वचन, काय से इसकी वदना करता हू।"[1] ग्रन्थ रचना के प्रेरक सघी अमरचन्द दीवान का उपकार मानते हुए कवि कहता है—"सघी अमरचन्द दीवान ने दया पूर्वक इसके हिन्दी पद्यानुवाद की मुझे प्रेरणा दी। मैंने श्रद्धा पूर्वक इस रचना का हिन्दी पद्यानुवाद किया।" ग्रन्थ के अन्त मे वे लघुता

---

१ परकारन कुन्दकुन्द वखानी, ताका रहस्य अमृतचंद्र जानि।

प्रगट करते हुए लिखते हैं—"यदि इसके हिन्दी पद्यानुवाद मे त्रुटिया हो तो विज्ञजन मूल ग्रन्थ का अवलोकन कर शुद्ध कर लें[1]।" "कवि के समय मे जयपुर के शासक सवाई रामसिह थे। कवि ने यह रचना आसोज सुदी दशमी गुरुवार वि० स० १८९२ मे पूर्ण की थी[2]।" जयपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका "हितैषी" से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि "बुधजन" ने अपने जीवन काल मे दो शासको का शासन काल जयपुर मे देखा था।

१३. वर्द्धमान पुराण सूचनिका वि० सं० १८९५

८ वर्द्धमान पुराण सूचनिका [वि० स० १८९५]

यह कवि की अन्तिम रचना है। इसमे तीर्थंकर महावीर के पूर्व भवो का वर्णन किया गया है। पुरवा भील की पर्याय से महावीर की पर्याय तक इस जीव ने जो-जो प्रमुख पर्यायें [३३] प्राप्त की उनका सप्रमाण क्रमबद्ध वर्णन है। इस लघु कृति मे केवल ८० पद्य है। रचना के अन्त मे कवि ने अपना नाम व रचना काल का उल्लेख किया है।

सकल कीर्ति मुनि ने सस्कृत भाषा मे "वर्द्धमान पुराण सूचनिका" ग्रन्थ की रचना की थी। उसी की गद्यात्मक हिन्दी वचनिका पढकर तथा उसी से कम भाग लेकर मेरी बुद्धि उसे पद्यबद्ध करने की हुई इसे मैंने वि० स० १८९५ मे अगहन कृष्णा तृतीया गुरुवार को पूर्ण किया[3]।

टीकारची संस्कृत बानी, हेमराज वचनिका आनि ॥५७७॥
करें सम्यक्त्व मिथ्यात्व हरें, भगसागर लीला ते तरैं ॥
महिमा मुख तें कही न जाय, 'बुधजन' वन्दे मनवचकाय ॥२७८॥
सांगही अमरचंद दीवान, मोकूं कही दयावर आन।
शब्द अर्थ यो मैं लह्यो, भाषा करन तबै उमगयो ॥५७९॥
कवि बुधजन : पचास्तिकाय भाषा, पद्य संख्या ५७७, ५७८, ५७९।

१. भक्तिप्रेरित रचना आनी, लिखो पढो बांचो भवि ज्ञानी।
जो कछु यामे असुद्ध निहारो, मूल ग्रथलखि ताहि सुधारो ॥
कवि बुधजन : पचास्तिकाय भाषा, पद्य सख्या ५८०।

२ रामसिंह नृप जयपुर बसे, सुदि आसोज गुरु दिन वसैं।
उगणीसैं मे घटि हैं आठ, ता दिवस मे रच्यो पाठ ॥
कवि बुधजन : पचास्तिकाय भाषा, पद्य सख्या ॥५८१॥

३ सकल कीर्ति मुनिरच्यो, वचनिका ताकी बांची।
तबै छन्द को रचन, बुद्धि "बुधजन" की राची ॥

कवि ने ग्रन्थ के अन्त मे लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर लिखा है—

"राजा, देश, नगर, ग्राम, घर और प्रत्येक व्यक्ति का मगल हो। नगर मे सदा नृत्य, गान आदि मनोरजन के कार्य चलते रहे। सबके घर धन-धान्य से परिपूर्ण हो, सब लोग धर्मी जनो की सगति करें, जिससे पापो का नाश हो व सब लोग प्रभु का गुण स्मरण करते रहें[1]।"

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि कवि की यह अन्तिम रचना है। क्योकि इसमे लोक मंगल की जिस भावना का उल्लेख कवि ने किया है उसे देखने से लगता है कि उन्होंने अपने अन्तिम क्षणो मे इसकी रचना की होगी या वृद्धावस्था मे इसकी रचना की होगी।

दूसरी बात यह भी है कि इसके बाद की कोई रचना कवि की उपलब्ध नही है। अत मेरी सम्मति मे यह कवि की अन्तिम रचना है। "बुधजन" ने हिन्दी भाषा में अपने विचारो की अभिव्यजना कर वाड्मय की वृद्धि की है। उन्होने समाज कल्याण की प्रेरणा से ही काव्य की रचना की है। भोग-विलास और राग-द्वेष के प्रदर्शनात्मक शृ गार आदि रसो से कवि का कोई प्रयोजन नही।

ग्रन्थ के अवलोकन से कविवर बुधजन की काव्य प्रतिभा और सिद्धान्त-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। वे चारों अनुयोगो (वेदो) के विद्वान थे, कवि तो थे ही। रचना की भाषा से अवगत होता है कि उस समय हिन्दी की खडी बोली का आरम्भ हो गया था। कवि ने यह रचना अपने काल की हिन्दी की खडी बोली मे की है। रचना सरस और सरल है।

१४. योगसार भाषा (वि० सं० १८९५)

9. योगसार भाषा (वि सं १८९५)

आचार्य योगीन्द्रदेव द्वारा रचित अपभ्र श रचना के आधार पर कविवर बुधजन ने इसका भाषानुवाद हिन्दी पद्यो मे किया। यह रचना आत्म-सबोधन हेतु रची गयी है। इसका विषय आध्यात्मिक है। इसमे निश्चय और व्यवहार नय की सापेक्षता दिखाई गई है। निश्चयनय आत्मा के वास्तविक स्वरूप को बताने वाला है, पर व्यवहार नय के बिना निश्चय नय का वर्णन नही हो सकता, तथापि अपने

उगनीसौ मे घाटि, पाच सवत् घर अगहन।
कृष्ण तृतीया हुवो ग्रंथ पूरन सुर गुरु दिन॥
कवि बुधजन वर्द्धमान पुराण सूचनिका, पद्य स० ७७–७८ हस्तलिखित प्रति, जयपुर

१ मगल हो नृप देश नगर, ग्रामें जन-जन-घर।

शुद्ध स्वरूप-[परमात्मा] के सन्मुख होने के लिये व्यवहार नय की कोई उपयोगिता नही है[1]।"

भाषा की दृष्टि से यह रचना उत्कृष्ट नही है, तथापि विषय आध्यात्मिक होने से उपादेय है। ग्रन्थ के अन्त मे कवि अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते हैं —

"मैंने अपभ्रंश के ग्रन्थ योगसार के आधार से भव्यजनो के हितार्थ इसे हिन्दी भाषा मे लिखा है। यदि इसमे किसी प्रकार की त्रुटि हो तो सज्जन-जन इसमे सुधार कर लेवें[2]।"

इस रचना मे कवि ने अपने नाम व रचनाकाल का उल्लेख भी किया है[3] जिसमे स्पष्ट है कि कवि ने इसे सावन शुक्ला तृतीया मगलवार वि० स० १८९५ को पूर्ण किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि "वर्द्धमान पुराण सूचनिका" और "योगसार भाषा" दो कवि का अन्तिम रचनाए हैं।

होय सदा नृतगान, धान-धन रहै कोषभर ।।
करो सुपात्रां दान, इष्ट प्रभु पूज रचावो ।
धर्मातम सग करो, हरो अघ प्रभुगुन गावो ।।

कवि बुधजन . वर्द्धमान पुराण सूचनिका, पद्य सख्या ७९, ८० हस्तलिखित प्रति, जयपुर ।

१. निश्चय परमातम दरस, विन व्योहार न होइ ।
परमातम अनुभौसमय, नय व्योहार न कोइ ।।

बुधजन : योगसार भाषा, हस्तलिखित प्रति, पद्य सं १०९, दि जैन लूणकरण पाड्या मदिर, जयपुर ।

२ जोगसार अनुसार यह, भाषा भवि हितकार,
दोहा बुधजन निज रचे, सज्जन लेहु सुधार ।।११०।।

३ वही

तृतीय-खण्ड

प्रथम अध्याय

१. कृतियों का भाषा विषयक एवं साहित्यिक अध्ययन

भारतीय भाषाओ के साहित्य मे ऊपर से दिखाई देने वाली भिन्नता रूपगत है। सभी भाषाओ की अपनी-अपनी विशेषताए हैं। किन्तु उद्गम और विकास की दृष्टि से सामान्यत सभी भारतीय आर्य भाषाओ मे एकता लक्षित होती है क्योकि उनका मूल स्रोत एक है। इसी प्रकार लगभग उन सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ का उद्गम काल दसवी शताब्दी के आस-पास कहा जाता है। इतना ही नही, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के विकास की पृष्ठभूमि मे भी एक जैसी सास्कृतिक और सामाजिक चेतना का स्वर सुनाई देता है। मध्य युगीन सतो की वाणी और भक्ति साहित्य आर्य भाषाओ की ही धरोहर नही हैं अपितु दक्षिण भारत की भाषाओ-तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम मे भी उनकी रचना प्रचुर मात्रा मे हुई है। रूढियो के प्रति विद्रोह, नई परम्पराओ के निर्माण तथा प्रेम और शृगार के अकन की प्रवृत्ति सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की मूल धारा न रही है। भारतीय साहित्य को धर्म सप्रदाय और जाति के आधार पर विभक्त करना उचित नही है, क्योकि भाषागत भिन्नता तथा जातीय सस्कारो के विद्यमान होने पर भी हमारे देश का साहित्य हमारे जीवन और सस्कृति का प्रतिविम्ब है। भाषा और लिपि के ऊपरी आवरण को सहज उसके समग्र रूप को देखें, तो उसकी मूलभूत एकता का लक्ष्य बोध हो सकता है।

किसी देश की सस्कृति का अध्ययन, उस देश के निवासियो के मानसिक सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवन का समवेत आकलन उसके सम्पूर्ण रूप को समझने के लिए देश की आदि युगीन अवस्था से लेकर आधुनिक युग तक की अवस्था के क्रमिक विकास को विभिन्न युगो मे प्रचलित प्रवृत्तियो तथा परम्पराओ के प्रकाश में देखने की तथा उसके अगो पर दृष्टि रखने की आवश्यकता है। यद्यपि सस्कृति के अनेक अग हो सकते हैं किन्तु सामान्यत चार उपादान प्रमुख माने जाते हैं। सस्कृति के मुख्य चार अग हैं —

(१) साहित्य और भाषा।

(२) धर्म और दर्शन।

(३) राजनीतिक तथा भौगोलिक परिस्थितिया ।

(४) सामाजिक परिस्थितिया ।

यहाँ साहित्य शब्द का अर्थ सकुचित न होकर व्यापक है । उसके अन्तर्गत केवल सृजनात्मक साहित्य ही नही, धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी प्रकार का साहित्य है जो क्षणिक, सस्ता मनोरजन न देकर शास्वत सत्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का उद्‌घाटन करने मे समर्थ होता है, वही सत्साहित्य है । "जैन साहित्य अध्यात्म-प्रधान साहित्य है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श, प्रान्तीय भाषाए और हिन्दी मे जो जैन साहित्य आज प्राप्त है, उसका मूल स्वर अध्यात्म है । धार्मिक-क्रान्तिया साहित्य की दिशा सदा से वदलती रही हैं और ऐसा जैन साहित्य मे भी हुआ है[1] ।"

एक बात जो ध्यान देने की है, वह यह है कि प्राय एक ग्रथ को लेकर हम यह नही कह सकते कि उसमे केवल राजनैतिक या आध्यात्मिक स्थितियो का ही विश्लेषण है । उस ग्रथ मे अन्य प्रकार की स्थितियो तथा तत्त्वो का विवेचन होता है । अत हम समस्त साहित्य का वर्गीकरण, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि रूप मे न करके दूसरे प्रकार से करेंगे । यह वर्गीकरण समय तथा प्रवृत्ति दोनो के विचार से होगा ।

सस्कृति से सम्बन्धित समस्त साहित्य को हम निम्न वर्गो मे बाट सकते हैं ।

[१] वैदिक-साहित्य ।

[२] लौकिक-साहिन्य ।

[३] पौराणिक-साहित्य ।

[४] स्तोत्र-साहित्य ।

[५] दर्शन-साहित्य ।

[६] पुरुषार्थ-साहित्य ।

[७] सृजनात्मक-साहित्य ।

जिस दिन हम प्राचीन भाषाओ मे निवद्ध साहित्य को भूल पायेंगे, उसी दिन से हमारा पतन होने लगेगा । सस्कृति क्या है ? धर्म क्या है ? और उनका दैनदिन के जीवन मे कैसे उपयोग हो सकता है, इत्यादि बातो का वोध हमे प्राचीन साहित्य से ही होता है । इससे हमे मानसिक तृप्ति तो मिलती ही है, साथ ही शास्वत सुख और उसकी प्राप्ति के साधनो का बोध भी हमे इसी साहित्य से होता है ।

---

१. जैन डॉ० रवीन्द्रकुमार : कविवर बनारसीदास जीवनी और कृतित्व, पृष्ठ ४९, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रकाशन ।

"यदि विचार कर देखा जाय तो धर्म एक है और उसे जीवन मे उतारने का मार्ग भी एक ही है परन्तु विश्व मे जो अनेक धर्म दिखाई देते हैं और उनमे परस्पर जो अन्तर है उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि का ज्ञान हम इस साहित्य का गहन मथन किये विना नही कर सकते[1]।"

कविवर बुधजन ने जिस ढूढारी (राजस्थानी) भाषा मे साहित्य रचना की, उसका इतिहास डॉ० जार्ज ए० ग्रियर्सन के अनुसार निम्न प्रकार है —

"इस प्रकार जयपुर की सीमा के निकट मारवाड क्षेत्र मे वोली जाने वाली मारवाडी भाषा मारवाड प्रान्त मे ढूढारी कहलाती है। यह जयपुरी भाषा का एक नाम है क्योकि इस पर जयपुरी का गहरा प्रभाव है। वास्तव मे यह मिश्रित भाषा है और जयपुर सीमा के निकट होने से मारवाडी की अपेक्षा सभवत जयपुरी के अधिक निकट है। ढूढारी के भी दो भेद है। [१] चट्टानी पहाडियो की एक श्रेणी जो करीव-करीव सम्पूर्ण शेखावाटी (जयपुर प्रदेश) को दो भागो मे विभाजित करती है। उत्तर पूर्वी दिशा मे और उसी के पास पूर्वी दिशा मे पहाडियो के पूर्व की ओर का भाग ढूढारी कहलाता है। यह एक ऐसा नाम है जो पहले-पहल राजपूताने के एक विशाल भाग के लिये प्रयुक्त था, जवकि पश्चिम की ओर वाजार नामधारी प्रदेश, जिसमे सम्पूर्ण शेखावाटी सम्मिलित है और सम्पूर्ण रेतीले प्रदेश को सम्मिलित कर लिया जाता है, जहा कि पानी वडी गहराई स प्राप्त होता है। जोधपुर रियासत के सुदूर उत्तर पूर्व मे जहा वह प्रदेश, जयपुर का सीमा प्रदेश बनता है। वहा की वोली मारवाडी और जयपुरी का मिश्रण है अथवा वाद वाली भाषा को भी स्थानीय रूप से ढूढारी कहते हैं। इस पर जयपुरी का विशेष प्रभाव है। यहा वास्तव मे भाषा मिश्रित है और जयपुर सीमा के पास है और सम्भवत यह भाषा मारवाडी की अपेक्षा जयपुरी के अधिक निकट है।

Thus the Marwari spoken in Marwar close to the Jaipur frantier is called in Marwar Dhoondhari on of the names of Jaipuri, Because the Jaipuri influens, is very strong Here indeed the language is mixed one and near the Jaipur border is probably nearer Jaipury then Marwari

A Range of rocky hills inter sects nearly the whole shekhawati in the Jaipur state In a north estern direction and close upon its eastern frentier, the country on the east side of the hills is called Dhoondhari (A name which was formarly applied to a large part of Rajputana which that to the west is called

---

१. प० फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री : वर्णी स्मृति ग्रन्थ, खण्ड 2, पृष्ठ ६८, अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद्, सागर म० प्र० प्रकाशन।

Rasar which includes nearly the whole shekhawati and is generally apply to sandy country where is water is only procarable to at a great depth

In the extreme North east of the Jodhpur state, where its borders and the Jaipur state the dialect is said to the mixture of Marwari and Jaipuri, or the letter is rocky called Dhoondhari

The language is a mixed on and near the Jaipur border is probably nearer Jaipuri then Marwari (1. Linguiestic survey of India Zild 9 (vol) part II page 71

ढू ढारी भाषा का एक उद्धरण देखिये, जिससे भाषा के सोष्ठव एव माधुर्य का परिचय मिलता है। कहा है—'एक जणा के दो टावर हा। वा मे सू छोटक्यो आपका बापने क्यो के बाबा जी मारे पाती मे आवे जकी माल भनेषो। जघांनी आपकी घर निकरी वाने बाट दीनी। थोडा सा दिना पछे छोटक्यो टावडो आपकी सगली पू जी मेलीकर परदेस गयो। वठे आपकी सारी पू जी कुफ डा मे उडादी। सगडी निवडिया पछे वी देस मे जबरो अकाल पडियो[1]।

कविवर बुधजन का अधिकाश जीवन ढू ढाड प्रदेश मे ही बीता था। ढू ढाड प्रदेश मे बोली जाने वाली भाषा ढू ढारी है, जिसका मूलाधार ब्रजभाषा है। इस भाषा मे खडी बोली का पुट है। इसे हम मिश्रित हिन्दी (ब्रज भाषा और राजस्थानी) कह सकते हैं। अपने भाव-प्रकाशन मे कविवर को जिस भाषा का जो शब्द उपयुक्त लगा उसका खुलकर उपयोग किया हैं। भाव-प्रकाशन मे भाषा के सरल-प्रवाह का अत्यधिक ध्यान रखा गया है। कही भी भाषा की कठिनता के कारण भाव-दुरूहता नही आने पाई है। गभीरतम दार्शनिक विचारो की भी इतनी सरल भाषा में अभिव्यजना हुई है कि पाठक को उन्हे हृदयगम करने मे कोई विशेष प्रयास नही करना पडा है। शैली बहुधा व्यास प्रधान है। भाषा और भावो का इतना अनुपम सामजस्य हिन्दी साहित्य की कम ही रचनाओ मे प्राप्त होता है।

डिंगल, अवधी और ब्रज के समान ही ढू ढारी भाषा भी एक साहित्यिक भाषा है। इसका विस्तृत शब्द भडार तथा व्याकरण है। कवि ने स्वच्छ, मधुर एव प्रवाहपूर्ण ब्रज मिश्रित राजस्थानी भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओ मे किया है। कवि की रचनाओ मे विदेशी भाषा के शब्दो का प्रयोग भी मिलता है, किन्तु ऐसे शब्द बहुत कम हैं।

---

१ डॉ० जार्ज एग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इ डिया, जिल्द ६, भाग २, पृष्ठ ७१।

"प्राचीन काव्यो की भापा वैसे ही दुरूह होती है फिर उसका उद्धरण यदि सावधानी से न छपे तो अर्थ सगति विठाना और भी कठिन हो जाता है"[1]। राजस्थान के क्षेत्र विशिष्ट की साहित्यिक भापा डिंगल है। डिगल भाषा प्राकृत और अपभ्र श से उत्पन्न मानी गई है।

'प्राकृत और अपभ्र श से उद्भूत डिंगल भापा, एक क्षेत्र विशेप की जनता और विशिष्ट वर्ग, दोनो के अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। डिंगल भापा आदिकालीन (प्राचीन) भापा है तथा इसमे प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।[2]' वस्तुत प्रदेश की साहित्यिक धाराओ मे हिन्दी, उर्दू, व्रज, अवधी तथा मैथिली के अतिरिक्त डिंगल साहित्य धारा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी कई विशेपताए हैं। डिंगल साहित्य की परपरा का सम्वन्ध सस्कृत साहित्य से विशेप न होकर प्राकृत तथा अपभ्र श साहित्य धाराओ से अधिक निकट का है, फिर यह केवल उच्च वर्ग से सम्वन्धित साहित्य नही है वल्कि जन-सपर्क मे लिखा गया है। डिंगल मे पद्य साहित्य के साथ-साथ-गद्य साहित्य भी प्रचुर-मात्रा मे मिलता है। रस-बुधजन के साहित्य मे यो तो सभी रस यथास्थान अभिव्यजित हुए हैं पर मुख्यता शान्तरस की है। सभी हिन्दी जैन साहित्यकारो ने अपने साहित्य मे शान्त रस की धारा ही प्रमुख रूप से वहाई है। उनकी रचनाओ मे स्वान्त सुखाय की दृष्टि विशेप रूप से परिलक्षित होती है। उन्होने साहित्य को कभी भी आजीविका का साधन नही वनाया। उन्होंने हिन्दी-साहित्य के विकास मे पर्याप्त योग दिया। उन्होने जैन परपरा के अन्तर्गत रहकर ही साहित्य-सेवा की। वे कवि भी थे और भक्त भी। भक्ति के प्रतिपादन को ही उन्होंने अपना साध्य वनाया। वुधजन सतसई मे उनकी भक्ति की अनन्यता यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। यथा—

वारक वानर वाघ अहि, अजन भील भडार।
जाविधि प्रभु सुखिया किया, सो ही मेरी वार ॥३६॥
तुम तो दीनानाथ हो, मैं हू दीन अनाथ।
अव तो ढील न कीजिये, भलो मिल गयो साथ ॥४२॥

---

१. वीरवाणी, वर्ष ७, अ क ६, पृष्ठ १२३–२४, जयपुर।

२ विद्या भास्कर डिंगल साहित्य प्रकाशकोय १६६०, डा० जगदीश प्रसाद एम०ए०, डी० फिल०, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ०प्र० इलाहाबाद।

"कवि को प्रभु के चरणो की शरण इतनी प्रिय है कि वे भव-भव मे उसी की याचना करते हैं[1]।"

कविवर बुधजन जैन दर्शन और सिद्धान्त के पारगत अनुभवी विद्वान थे। बुधजन की तरह बनारसीदास, भैया भगवतीदास, द्यानतराय, दौलतराम आदि ने भी आध्यात्मिक व नीति परक रचनाए की। बिहारी सतसई के कतिपय दोहे नीति सम्बन्धी हैं। वृन्दसतसई, गिरधर की कुण्डलिया, दीन दयाल गिरि की रचनाए भी नीति परक हैं। इस प्रकार हिन्दी मे १६ वी शताब्दी तक नीति परक रचनाए होती रही। बुधजन की रचनाए मुख्यत तीन भागो मे विभाजित की जा सकती हैं। (१) नीति प्रधान रचनाए (२) सैद्धान्तिक रचनाए (३) आध्यात्मिक रचनाए।

नीति परक रचनाए समास शैली मे लिखी गई हैं। जैन कवियो ने अपने साहित्य सृजन के मूल मे ही अध्यात्म को रखा है। प्राय सभी हिन्दी जैन कवियो ने आत्म-जागरण प्रधान पदो की रचना की है। आज भी सभी लब्धप्रतिष्ठ कवि अपनी कविता का चरम लक्ष्य आत्मा की उन्नति ही मानते हैं। वास्तव मे कविता वही है जो मानव की आत्म उन्नति का पथ प्रशस्त कर सके।

बुधजन ने अपनी रचनाओ मे मुख्यत दोहा, चौपाई, पद, कुण्डलिया, कवित्त, सवैया आदि छन्दो का प्रयोग किया है। इनके पद्यो मे ब्रज और राजस्थानी (ढूढारी) के मिश्रण की स्पष्ट झलक है। ढूढारी मे जैन साहित्य के बडे-बडे पुराणो का पद्यानुवाद भी उन्होने किया है।

कवि की सैद्धान्तिक रचनाओं मे विषय प्रधान वर्णन शैली है। उन्होने सभी सिद्धान्तो का समावेश सरल-शैली मे किया है। हिन्दी मे उनके द्वारा लिखित अध्यात्म, भक्ति और रूपक काव्य सम्बन्धी भी है। उनकी सभी रचनाए हिन्दी भाषा मे हैं। उनके समस्त पद भक्ति रस से परिपूर्ण हैं। कवि ने अपने आराध्य की भक्ति करते हुए उसके रूप लावण्य का विवेचन किया है उनकी समस्त रचनाए पद्य वद्ध हैं।

एक बात और विशेष ध्यान देने की है कि बुधजन के पदो की भाषा पर ब्रज का प्रभाव है। ब्रजभाषा की मूल प्रकृति ओकारान्त है। कवि के पदो मे अनेक ओकारान्त शब्द मिलते है। यथा-मिल्यो, कर्‌यो, मर्‌यो, गयो, गह्यो, भन्यो इत्यादि। यही

---

१ याचूं नहीं सुरवास, पुनि नरराज परिजन साथ जी।
बुध याचहू तुम्र भक्ति भव-भव दीजिये शिवनाथ जी॥
बुधजनः देवदर्शन स्तुति, ज्ञानपीठ पूजाजलि, पद्य ८, पृ० ४३४–३५ भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रकाशन।

नही-सज्ञा, विशेषण और सर्वनाम भी ओकारान्त प्रयुक्त हुए है। सर्वनाम-साधित रूप यथा-जाको, वाको, ताको, काको इत्यादि।

शब्द कोष-पद सग्रह की शब्दावली वडी ही विलक्षण और महत्त्वपूर्ण है। बुधजन ने अपने समय की लोक भाषा को वडे आदर के साथ अपने पदो मे स्थान दिया है। परिणामत अनेक देशी शब्दो का स्वाभाविक प्रयोग सर्वत्र दिखलाई पडता है। यथा-लेज (बु स प स १०८) सेती (४७३) नातरि (२२१) बुगला (२२१) परेवा (३१५) वायुका (१६२) लूग (६५) वाय (६६) विनज (६५) पदे (७) डोलना (४) इत्यादि।

कवि की रचनाओ मे सर्वाधिक सख्या तद्भव शब्दो की है जो ध्वनि परिवर्तन के बाद बहुत ही श्रुति मधुर और आकर्षक रूप ग्रहण कर लेते हैं। वे सस्कृत के ज्ञाता थे। उनकी रचनाओ मे सस्कृत के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। यथा-चित्रकार (६९) वारि (६८) सुयश (६७) कलुषित (६६) निरतर (६६) परिवर्तन (६४) कर्माश्रव (६४) पल्लव (६१) इत्यादि।

(२) वस्तु पक्षीय विश्लेषण :—

भारतवर्ष अति प्राचीन काल से अध्यात्म-विद्या की लीला भूमि रहा है। अपनी आधि दैविक एव आधि भौतिक समृद्धि के साथ उसके मनीषी साधको ने अध्यात्म क्षेत्र मे जिस चिरतन सत्य का साक्षात्कार किया उसकी भास्वर रश्मि माला से विश्व का प्रत्येक भू-भाग आलोकित है। भारतीय साहित्य और इतिहास का अध्ययन इस बात का साक्षी है कि आध्यात्मिक गवेषणा और उसका सम्यक् आचरण ही उसके सत्य शोधी, पृथ्वी पुत्रो के जीवन का एक मात्र अभिलषित लक्ष्य रहा है। इसी लोक मगलकारिणी आध्यात्मिक उत्क्रान्ति के द्वारा भारत ने चिरकाल से विश्व का नेतृत्व किया और इसी की सजीवनी शक्ति से अनुप्राणित होकर आज भी उसकी वैदेशिक नीति विश्व को विस्मय-विमुग्ध करती हुई विजयिनी हो रही है[1]।

जैन परपरा मे अध्यात्म-विधा की गरिमा का यथेष्ट गान जैन कवियो ने किया है। अध्यात्म मे आत्म-विशुद्धि का प्रतिमान प्रस्तुत किया जाता है, क्योकि मनुष्य जन्म का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। यह जीव अनत काल तक चौरासी लाख योनियो मे जन्म-मरण करता है और बडी कठिनाई से मनुष्य जन्म का लाभ कर पाता है। इसके लिये उसे अविराम साधना करनी पडती है। वह अपने अन्तर्मल को स्वच्छ करता है और आत्म शुद्धि की एक श्रेणी मे पहुचकर मनुष्य भव को प्राप्त करता है। दूसरे शब्दो मे मनुष्य भव की प्राप्ति एक सीमा तक आत्म-विशुद्धि का

---

१. जैन, डा० राजकुमार अध्यात्म पदावली, पृ० स० १ तृतीय संस्करण १९६५, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रकाशन।

परिणाम है जो इस बात को सूचित करता है कि यह जीव अब ऐसी स्थिति मे है कि प्रयत्न करने पर सर्वातमना कर्मबंधन से मुक्त होकर शाश्वत सुख प्राप्त कर सकता है, परन्तु ज्योही इसे मनुष्य भव मिलता है वह इसे प्राप्त करने के लिये की गई अपनी गभीर साधना को एकदम भूल जाता है और उन असख्य योनियो मे भोगे हुए अनत पीडाओ के पु ज को । फल यह होता है कि यह जीव मनुष्य होकर भी अज्ञानी होकर भूल जाता है भ्रमवश अमानवीय कार्य करने लग जाता है और अपनी साधना से पतित होकर पुनः उसी पीडा पयोधि मे गोते लगाना प्रारभ कर देता है ।

मनुष्य के लिये इससे अधिक लज्जा एव करुणाजनक बात और क्या हो सकती है कि वह अपनी अनत साधना से प्राप्त की गई चिंतामणि सदृश दुर्लभ वस्तु को यो ही खो देता है और फिर दीन-हीन बनकर रोने-सिसकने लगता है । मनुष्य के पतन की यह चरम सीमा है। कविवर बुधजन ऐसे विवेक-विकल मानव को ही सम्बोधित करते हुए कहते हैं —

'नर भव पाय फेरि दु ख भरना, ऐसा काज न करना हो ।'

हे आत्मन् ! तुम ऐसा काम कभी न करना जिससे मनुष्य भव प्राप्त करके भी फिर से तुम्हे दु ख भोगना पडे । कविवर बुधजन की दृष्टि मे कर्म बन्धन ही ससार के दु ख जाल का कारण है, जो ममत्व भाव से और भी दृढ होता जाता है, इसलिये वे कितने स्पष्ट एव सरल शब्दो मे मनुष्य को मतलब की बात बतला रहे हैं —

'नाहक ममत ठानि पुद्गल सो, करम जाल क्यो परना हो ।

आत्मन् ! तुम पुद्गल-परवस्तु से (जो अपनी नहीं है) ममत्व जोड कर व्यर्थ क्यों कर्म चक्र के बन्धन मे पडते हो ? तुम ऐसा काम कभी न करना जिससे मनुष्य भव प्राप्त करके भी तुम्हे फिर से दु ख भोगना पडे । कविवर आत्म-स्वभाव एव पर वस्तु के स्वरूप मे अन्तर दिखलाते हुए कितने सुन्दर ढग से जीव को भेद-विज्ञान की ओर प्रेरित करते हुए कर्त्तव्य मार्ग पर आरूढ रहने के लिये गुरु का उपदेश बता रहे हैं :—

यह तो जड, तू ज्ञान अरूपी, तिल तुष ज्यो गुरु बरना हो ।
राग दोष तजि, भज समता को, कर्म साथ के हरना हो ।।

हे आत्मन् ! यह पुद्गल परवस्तु है । जड है, तुम अरूपी हो और ज्ञान-मय हो । तुम दोनो का तिल-तुष के समान सम्बन्ध है । जिस प्रकार तिलो से तुष को प्रथक् कर देने पर शुद्ध तेल मात्र अवशेष रह जाता है, उसी प्रकार कर्ममल से विमुक्त होने पर आत्मा भी शुद्ध स्वरूप मे प्रदीप्त हो उठता है इसलिये आत्मन् ! तुम राग द्वेष को छोडकर अपने कर्म बधन को तोड दो और अपने भीतर सपूर्ण समभाव को (मोह-राग-द्वेष रहित अवस्था) को जागृत करो ।

कविवर बुधजन सरलता के साथ आध्यात्मिक विषय का विवेचन करने मे अत्यन्त निपुण हैं। उन्होने सर्वत्र अल्पाक्षरो मे भावगाम्भीर्य को समाहित किया है, किन्तु चलती हुई भाषा मे कही भी क्लिष्टता का वोध नही होता। कही-कही तो उपमानो के प्रयोग से ही कवि ने काम चलाया है। यथा—

हे आत्मन्। इस मनुष्य भव को प्राप्त करके भी विषय-सुख मे मग्न हो जाने का अर्थ है, हाथी पर सवारी करने के वाद सिर पर ईंधन ढोना। इसलिये आत्मन्! यदि तुम भवसागर से पार होना चाहते हो, ससार के दु खो से छुटकारा चाहते हो तो तुम्हे समझदारी के साथ उन जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलो की उपासना करनी चाहिये, जिन्होंने अपनी आत्मा को कर्मवन्धन से मुक्त कर लिया है। मनुष्य, मनुष्य का जन्म लेकर भी जव तक सदा के लिये दु खो से छुटकारा पाने के मार्ग पर दृढता एव निष्ठा से अग्रसर नही होता, कविवर बुधजन की वाणी उसे पुकार-पुकार कर, सम्बुद्ध करती रहेगी। 'नरभवपायफेरि दु ख भरना, ऐसा काज न करना हो'

कविवर बुधजन का एक पद्य देखिये—

'वावा मे न काहू का'

मोह का यह सबसे वडा मद है। ससार का मानव आदि काल से उसके मद मे उन्मत्त है। इसके कारण उसे एक क्षण के लिये भी शुद्ध आत्म-स्वरूप की झलक ं मिल पाती। यह सोच ही नही पाता कि शरीर के अन्दर रहने वाला 'मैं' क्या है और उसके साथी शरीर तथा अन्य वाह्य वैभव-सामग्री का इस "मैं और इससे पृथक् अन्य वस्तुओ का क्या सम्बन्ध है। इस वात का यथार्थ विवेक न होने के कारण यह इन सव चीजो मे अपनत्व मान वैठता है और 'मैं' के स्वरूप को भूलकर वाह्य वस्तुओ मे ही 'मैं' के दर्शन करने लगता है। इसे ही पर्याय मूढता (पर वस्तु मे अपने को मानना) कहते हैं।

मैं सुखी दु'खी मैं रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुततिय मे सवल दीन, वे रूप सुभग मूरख प्रवीन[1] ॥

इत्यादि कल्पनाओ मे मोह का प्रवल उद्रेक ही लक्षित होता है और इसी भाव के कारण समस्त वस्तुओ मे इष्ट और अनिष्ट की कल्पना करके यह जीव चिरकाल से आकुल-व्याकुल हो रहा है। कालब्धि आने पर तथा पुरुषार्थ जागृत होने पर इसे आत्म भान होता है—मैं तथा इससे सम्बन्धित समस्त वस्तुओ की ठीक-ठीक जानकारी होती है। मोह मद-मद हो जाता है। अतरात्मा स्वपर विवेक की उज्जवल ज्योति से आलोकित हो उठती और गुन गुनाने लगती है।

---

१ प० दौलतराम, छहढाला, द्वितीय ढाल, पद्य सख्या ४ पृष्ठ सख्या ११, सरल जैन ग्रन्थ भडार, जवलपुर प्रकाशन।

'वावा मैं न काहू का, कोई नही मेरा रे ।
सुरनर नरक तिर्यंग्गति माही, मो को कर्मन घेरा रे ।।'

वावा मैं किसी का नही हू और कोई मेरा नही है । शुद्ध आत्म स्वभाव ही मेरी निधि है और उसकी सपूर्ण उपलब्धि ही मेरा लक्ष्य है । अन्य समस्त सासारिक वस्तुओ का इस आत्म-स्वभाव से कोई मेल नही है । ससार की इन चीजो मे भी 'स्व' (आत्मा) की कल्पना करने से मुझे कर्मों ने नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव गतियो मे बुरी तरह रुला दिया ।

अन्तर्दृष्टि खुलते ही "मैं" से सम्वन्धित समस्त वस्तुओ की सम्यक् प्रतीति होने लगती है और तव आत्मा वडी सरलता से अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को पहिचान लेती है । देखिये .—

अन्तस् मे किस प्रकार स्व-पर विवेक की ज्योति जागृत हो रही है—

'मात-पिता-सुत-तिय-कुल-परिजन
मोह-गरल उरझेरा रे,
तन-धन-वसन-भवन-जड न्यारे
हू चिन्मूरति न्यारा रे ।।

माता, पिता, पुत्र, स्त्री, कुल और नौकर-चाकर यह सव मोह जाल मे फसाने वाले हैं । इनमे राग और अपनत्व बुद्धि करके आज तक हम मोह-पाश मे फसे रहे और दु खो को उठाते रहे । वास्तव मे शरीर, धन, वस्त्र और मकान का आत्मा से कोई सम्वन्ध नही है । ये समस्त वस्तुए जड हैं और आत्मा से पृथक् है । आत्मा का चैतन्य स्वभाव है और वह स्वय इन सव चीजो से पृथक् अपना एक स्वतत्र अस्तित्व रखता है ।

विभाव भावो को छोडकर किस प्रकार कविवर आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार कर रहे हैं —

'मुझ विभाव जड कर्म रचित हैं, कर्मन हमको छोरा रे ।
विभाव चक्र तजि धारि सुभावा, अव आनन्द घन हेरा रे ।।

शुद्ध आत्म-स्वभाव को छोडकर अन्य समस्त भाव एव कल्पनाए वैभाविक है, जो स्वय आत्म-स्वरूप से पृथक् जड स्वरूप हैं और नवीन कर्म परपरा की सृष्टि के कारण हैं और कर्म ही हमे ससार भ्रमण के द्वारा रुलाते हैं । अव हमने वैभाविक भावो को छोड दिया है और शुद्ध भावो को अपना लिया है । इस समय हम केवल शुद्ध चिदानन्दमय आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार कर रहे है ।

कविवर 'बुधजन' सच्चिदानन्द के पान मे इतने तन्मय हो रहे हैं कि इसके सामने उन्हे अन्य समस्त जप-तप केवल उसी साध्य को प्राप्त करने वाले साधन भर ही दिखलाई दे रहे है । कविवर के शब्दो मे सुनिये .—

खरच खेद नही अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप-तप-व्रत श्रुतसार यही है, बुधजन कर न अवेरा रे ॥

शुद्ध चैतन्यमय आत्म-स्वरूप को साक्षात्कार करने पर हमे त्याग करते समय खेद का अनुभव नहीं होता है क्योकि हमने निश्चय कर लिया है कि हमारा सम्बन्ध और अपनत्व केवल शुद्ध आत्म-स्वभाव से है, इसलिये अन्य समस्त पर वस्तुओ के त्याग मे हमे तनिक भी दु ख का अनुभव नही होता। जप-तप-व्रत और सपूर्ण शास्त्र ज्ञान का भी यही ध्येय है कि हमे अपने सच्चिदानन्द मय आत्म-स्वरूप के स्थिर दर्शन हो।

आज लोक मे अपने दायित्व को उपेक्षित कर कर्त्तव्य से जी चुराने वाले अनेक जन ऐसा कहते हुए पाये जाते हैं।

'बाबा मैं न काहू का, कोई नही मेरा रे।'

जैनाचार्यों ने प्राकृत के समान ही सस्कृत, अपभ्र श एव हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओ मे अपने विचारो की अभिव्यजना कर वाङ्मय की वृद्धि की है।

गृहस्थावस्था मे रहते हुए भी कवि ने सरस्वती की साधना द्वारा तीर्थंकर की वाणी को जन-जन तक पहुचाया है।

काव्य-साहित्य की आत्मा भोग-विलास और राग द्वेष के प्रदर्शनात्मक शृ गार और वीर रसो मे नही है किन्तु समाज कल्याण की प्रेरणा ही काव्य साहित्य के मूल मे निहित है।

दर्शन, आचार, सिद्धान्त प्रभृति विषयो की उद्भावना के समान ही जन-कल्याण की भावना भी काव्य मे समाहित रहती है। अतएव समाज के बीच रहने वाले कवि और लेखक गार्हस्थिक जीवन व्यतीत करते हुए करुण भाव की उद्-भावना सहज रूप में करते हैं।

एक ओर जहा सासारिक सुख की उपलब्धि और उसके उपायो की प्रधानता है तो दूसरी ओर विरक्ति एव जन-कल्याण के लिये आत्म-समर्पण का लक्ष्य भी सर्वोपरि स्थापित है।

निश्चय ही बुधजन के साहित्य मे अहिंसा सिद्धान्त की अभिव्यक्ति हुई है उसमे लोक-जीवन के स्वाभाविक चित्र अकित हैं। उसमे सुन्दर आत्म-पीयूष रस छल छलाता है। धर्म विशेष का साहित्य होते हुए भी उदारता की कमी नही है। मानव स्वावलबी कैसे बने, इसका रहस्योद्घाटन किया गया है। तत्व-चिंतन और जीवन शोधन ये कवि की रचनाओ के मूलाधार हैं।

आत्म शोधन मे सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का महत्वपूर्ण स्थान है। सम्यक् चारित्र, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की सपूर्णता है, जो वीतराग भाव में निहित है। प्रत्येक आत्मा का स्वतत्र अस्तित्व है। प्रत्येक

आत्मा राग द्वेष एव कर्ममल से अशुद्ध है, वह पुरुषार्थ से शुद्ध हो सकती है। प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा बनने की क्षमता है। 'जैन दर्शन निवृत्ति प्रधान है। रत्नत्रय ही निवृत्ति मार्ग है। सात तत्वो की श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। विचारो को अहिंसक बनाने के लिये अनेकान्त का आश्रय आवश्यक है।' कवि की आध्यात्मिक रचनाओ का आधार ही आत्मा है। अत आत्म-स्वरूप की यथार्थ जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। आत्मा के सम्बन्ध मे विभिन्न दार्शनिको ने गहन-चिंतन किये है और अपनी-अपनी स्वतत्र मान्यताए स्थिर की हैं, परन्तु वे सब एकान्त दर्शन पर आधारित हैं और यही कारण है कि वे अनन्त गुणात्मक आत्म-स्वरूप का स्पर्श नही कर पातीं। जैन-दर्शन मे आत्म-स्वरूप का अनेकान्त दृष्टि से किया गया सर्वागपूर्ण विवेचन उपलब्ध होता है[1]।' कहा भी है कि—

'जीव उपयोगमय है, अमूर्त्त है, कर्त्ता है, स्वदेह प्रमाण है, भोक्ता है, ससारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगामी है[2]।'

जीव उपयोगमय है :—

जीव आत्मा का नामातर है, उपयोग जीव का स्वरूप है। ज्ञान और दर्शन की उपयुक्त अवस्था को उपयोग कहते हैं। ज्ञान और दर्शन का अर्थ है—जानना और देखना। जीव को जानने की और देखने की क्रिया निरतर बनी रहती है। एक क्षण के लिये भी उपयोगात्मक स्वभाव को नही छोडता है, इसलिये जीव उपयोग मय कहा जाता है।

जीव अमूर्त्त है —

जीव का दूसरा स्वरूप अमूर्त्त है। मूर्त्त का अर्थ है—जिसमे रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चार गुण प्राप्त होते हैं। इस व्याख्या के अनुसार पुद्गल द्रव्य ही मूर्तिक ठहरता है। जीव मूर्तिक नही है, क्योकि उसमे रूप, रस गध और स्पर्श नही पाये जाते है।

जीव कर्त्ता है :—

जैन दर्शन मे जीव को कर्त्ता माना गया है। इसका अर्थ यह है कि जीव अपनी ससार और मुक्त दोनो दशाओ का स्वय कर्त्ता है। साख्य दर्शन आत्मा को कर्त्ता स्वीकार नही करता। उसकी मान्यता मे वह सर्वथा अविकारी-कूटस्थनित्य एव सर्वव्यापक है। निष्क्रिय है और अकर्त्ता है। क्रियाशीलता केवल प्रकृति का धर्म

---

१ जीवो उवओगमओ अमुक्तिकर्त्ता सदेह परिमाणो।
भोक्ता स सारत्थो सिद्धोसौ विस्ससोड्ढगई ॥
जैनाचार्य नेमिचन्द्र. द्रव्य स ग्रह गाथा न० २, पृ० ४, जबलपुर प्रकाशन

है। इस दर्शन मे आत्मा को पुरुष नाम से अभिहित किया गया है। साख्य दर्शन मे प्रकृति और पुरुष का निम्न लिखित लक्षण पाया जाता है[1]।

जो त्रिगुणमय, अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मी है वह प्रकृति है और इससे विपरीत जो त्रिगुणातीत, विवेकी, विषयी, विशेष, चेतन तथा अप्रसवधर्मी है, वह पुरुष है।

जीव स्वदेह प्रमाण है

वेदान्त दर्शन मे आत्मा को व्यापक और एक माना गया है। उसकी मान्यता है कि अखिल ब्रह्माण्ड मे एव आत्मा का ही प्रसार है। आत्मा के सिवाय अन्य कुछ भी नही है। साख्य, योग और मीमासा दर्शन भी आत्मा को व्यापक मानते हैं। एक अन्य मान्यता आत्मा को अणुपरिमाण स्वीकार करती है, परन्तु जैन दर्शन उसे स्वदेह प्रमाण मानता है। लघु और महत् शरीर के आधार पर एक आत्म-द्रव्य के प्रदेशो मे भी सकोच-विस्तार होता है। इस प्रकार प्रत्येक दशा मे वह शरीर प्रमाण ही रहता है।

जीव भोक्ता है

जैन दर्शन मे जहा प्रत्येक द्रव्य को अपने-अपने गुण-पर्यायो का कर्त्ता माना गया है वहा भोक्तृत्व योग्यता जीव मे ही मानी गई है। जीव के सिवाय अन्य द्रव्य जड है, उनमे भोग करने की योग्यता नही है। जीव मे यह भोक्तृत्व योग्यता भी स्वद्रव्य के भोग पर ही आधारित है। वह किसी भी स्थिति मे पर पदार्थों का भोग नहीं करता। जहा भी पर पदार्थों मे जीव के भोक्तृत्व की कल्पना की जाती है, वह मिथ्यात्व-विलास के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है।

जीव सिद्ध है

अन्य द्रव्यो की भाँति जीव भी एक स्वतत्र द्रव्य है। अनादि कालीन कर्म शरीर से बद्ध होने के कारण ही वह ससार दशा का भोग करता है, परन्तु ज्योही कर्म-बन्धन से मुक्त होता है अपने शाश्वत सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है और सदा के लिये अपने इस विशुद्ध स्वभाव मे रहता है। सिद्धत्व भी जीव का स्वभाव है।

जीव ऊर्ध्व गति है

यह एक गभीर प्रश्न है कि कर्म-बन्धन से मुक्त होते ही जब यह जीव अपने विशुद्ध स्वभाव को प्राप्त कर लेता है तब यह जाता कहा है? समाधान यह है कि ज्यो ही यह जीव कर्म बन्धन से मुक्त होता है लोक के अन्त तक ऊपर चला जाता है[2]। नीचे तिरछे इसलिये नही जाता है कि वह स्वभावत ऊर्ध्वगामी है। ऊर्ध्वगमन

---

१ त्रिगुणभवेकि विषय सामान्य भवेतन प्रसवधर्म।
व्यक्त तथा प्रधान तद्विपरीत स्तया पुमान्॥ साख्य कारिका, ११।

२ 'तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छन्त्यालोकान्तात्। उमास्वामी तत्वार्थसूत्र, अ० १०, सूत्र ५।

करता हुआ लोक के अन्त मे इसलिये ठहर जाता है कि लोक के वाहर गमन-निमित्तक धर्मद्रव्य का अभाव है [1]।

आत्म-स्वरूप की यथार्थ जानकारी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवम् सम्यक्-चारित्र द्वारा वतलाई गई है।

सम्यग्दर्शन-आत्म विकास की दृष्टि से किया गया, जीव, अजीव, आश्रव, वध, सवर, निर्जरा और मोक्ष स्वरूप तत्वो का यथार्थ दर्शन सम्यग्दर्शन है[2]।

इसकी दूसरी व्याख्या है—सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का तीन मूढताओ और आठ मदो से रहित और आठ अग सहित यथार्थ श्रदान करना सम्यग्दर्शन है[3]।

इसकी तीसरी व्याख्या के अनुसार स्वानुभूतिमयी श्रदा को सम्यग्दर्शन कहा है[4]।

सम्यग्दर्शन की उक्त तीनो व्याख्याओ मे शाब्दिक अन्तर होते हुए भी अर्थत. कोई अन्तर नही है। आत्म-जागरण की वेला मे साधक अपने आत्मा से सम्बद्ध अजीव तत्व की जानकारी करता है और इसके वाद उसके वन्ध के कारण तथा वन्धन मुक्ति के कारणो को हृदयगम कर अन्त मे विशुद्ध आत्मानुभूति को ही उपादेय मानकर अपनी रुचि आत्म-स्वभाव मे ही केन्द्रित कर लेता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन की तत्वार्थ श्रद्धान रूप प्रथम व्याख्या स्वानुभूतिमयी श्रद्धा से वाह्य नही ठहरती[5]।

सपूर्ण जैन साहित्य अध्यात्म प्रधान साहित्य है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श, प्रान्तीय भाषाए और हिन्दी मे जो कुछ भी जैन साहित्य आज प्राप्त है उस सवका मूल स्वर अध्यात्म है। इस तथ्य को ध्यान मे रख कर ही हम जैन साहित्यकारो की परपरा का अध्ययन सपूर्ण रूपेण कर सकेंगे।

---

१ धर्मास्तिकाया भावात्' उमास्वामी : तत्वार्थसूत्र १०।८

२ तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम् उमास्वामी तत्वार्थसूत्र १–२

३. श्रद्धान परमार्थानामाप्तानमतपो मृताम्।
त्रिमूढ़ापोढमष्टागं, सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥
आचार्य समन्तभद्र रत्नकरड श्रावकाचार, १–३, सरल जैन ग्र थ भडार, जवलपुर।

४ तस्माच्छ्र्द्धादय सर्वे, सम्यक्तवस्वानुभूति मत्।
ततो स्ति यौगिकी रूढि , श्रद्धासम्यक्त्व लक्षणम्॥
अर्थादप्यविरुद्धस्यात् सूक्त स्वात्मानुभूति मत्॥
पडित राजमल्ल : पचाध्यायी २, ४१६–४२३।

५ डॉ० राजकुमार . अध्यात्म पदावली, पृ० ५६, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

सपूर्ण जैन साहित्य विषय की दृष्टि से चार भागो मे विभक्त है—प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग ।

प्रथमानुयोग मे—महापुरुषो के जीवन-चरित्र और उन्ही की लोकोपकारी घटनाए ।

चरणानुयोग मे आधार और चरित्र सम्बन्धी चर्चाए । करणानुयोग मे लोक और नरक आदि गतियो का वर्णन ।

द्रव्यानुयोग मे—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस षट् द्रव्यो का वर्णन ।

जैन कवियो या लेखको का दृष्टिकोण धार्मिक होते हुए भी काव्य कौशल प्रदर्शित करने में वे किसी से पीछे नही हैं । ऐसे अनेक स्थल हैं जहा हमे एक अत्यन्त उच्चकोटि के सरल और सरस काव्य के दर्शन होते है । इनके काव्य मे लोक रुचि के अनुकूल पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है । सरलता और सरसता को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न प्रशसनीय है ।

कविवर बुधजन ने श्रावक धर्म का विशद वर्णन किया है । उन्होने श्रावक धर्म के ग्रहण की पात्रता वतलाकर ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षा व्रत तथा सल्लेखना के आचरण को सपूर्ण सागार धर्म वतलाया है । उक्त १२ प्रकार के धर्म को पाक्षिक श्रावक अभ्यास रूप से, नैष्ठिक आचरण रूप से और साधक आत्मलीन होकर पालता है । आठ मूलगुणो का धारण, सप्त व्यसनो का त्याग, देव पूजा, गुरू उपासना, पात्रदान आदि क्रियाओ का आचरण करना पाक्षिक आचार है । धर्म का मूल अहिंसा और पाप का मूल हिंसा है । अहिंसा का पालन करने के लिये मद्य, मास, मधु और अभक्ष्य का त्याग अपेक्षित है । रात्रि भोजन त्याग भी अहिंसा के अन्तर्गत है । गृह-विरत श्रावक आरभी हिंसा का त्याग करता है और गृहरत श्रावक सकल्पी हिंसा का । सत्याणुव्रत आदि का धारण करना भी आवश्यक है । श्रावक गुणव्रत और शिक्षाव्रतो का पालन करता हुआ अपनी दिनचर्या को भी परिमार्जित करता है । वह एकादश प्रतिमाओ का पालन करता हुआ अन्त मे सल्लेखना द्वारा प्राणो का विसर्जन कर सद्गति लाभ करता है । इस प्रकार कवि ने अपनी रचनाओ मे श्रावक की चर्याओ का वर्णन किया है ।

कवि ने आत्मा के अस्तित्व आदि का कथन करते हुए आत्म देव दर्शन निर्ग्रन्थ गुरू सेवा, जिनवाणी का स्वाध्याय इन्द्रिय-दमन आदि क्रियाओ को आत्म-स्वरूप की प्राप्ति का साधन बताया है । सम्यग्दृष्टि ही आस्तिक होता है और आस्तिक ही पूर्णज्ञानी और परमपद का स्वामी होता है । नास्तिक को ससार मे ही भ्रमण करना पडता है । उन्होंने भगवान महावीर के उस उपदेश का प्रतिपादन

किया जिसके लिये जाति, पद, भाषा, देश या धर्म की रेखाए बाधक नहीं थी सब उनके उपदेश से लाभ उठाते थे ।

प्रत्येक धर्म की आचार और विचार ये दो शाखाए होती हैं । इन दोनो ही शाखाओ मे जब तक रहता है, तभी तक धर्म की धारा अविच्छिन्न रूप से चलती है । आचार-चारित्र की दृढता लाता है जिससे शिथिलाचार नही आ पाता और दर्शन की परिपक्वता (विचार पक्ष) उसे आडबर नही बनने देती ।

कविवर बुधजन ने इन दोनो पक्षो का अपनी रचनाओ मे प्रतिपादन किया है । उन्होने दोनो के सन्तुलन का पूर्ण ध्यान रखा है । अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण या अपरिग्रह इन पाच अणुव्रतो को धर्म का आचार पक्ष कहा है । कवि मे भावानुभूति भी है और अभिव्यक्ति भी । धर्म मे आचार का महत्व है—(व्रत, उपवास, पूजन, तप आदि) परन्तु इस आचार मे हमारी निष्ठा होना चाहिये । इस आचार का सम्बन्ध हृदय से होना चाहिये, प्रदर्शन के लिये नही ।

धर्म मे वैराग्य एव अनासक्ति का विशेष महत्व है । अनासक्ति के अभाव मे चित्त मे निर्मलता नही आ सकती । चित्त की निर्मलता के बिना जीवन मे सादगी, पवित्र–चितन एव तप मे तल्लीनता असभव है ।

बुधजन की सैद्धान्तिक रचनाओ मे विषय-प्रधान वर्णन शैली है । कवि ने सभी सिद्धान्तो का समावेश सरल शैली मे किया है । हिन्दी मे इनके द्वारा लिखित ११ रचनाए विषय-प्रधान शैली मे लिखी गई है । "बुधजन सतसई" नीति परक रचना है ।

(३) प्रकृति–चित्रण

भारतीय साहित्य मे प्रकृति-चित्रण की परपरा प्राचीन काल से है । इसका कारण यह है कि भारतीय जीवन और सस्कृति मुख्यत प्रकृति के प्रागण मे ही विकसित हुई है । अत प्रकृति के प्रति भारतीय जनता का प्रेम स्वाभाविक ही है । रामायण और महाभारत की रचना तपोवनवासी ऋषियो द्वारा हुई अत. उनकी रचनाओ मे प्रकृति के अनेक चित्र दृष्टिगोचर होते हैं । अनेको जैन कवियो ने त्यागी बनकर वन का मार्ग ग्रहण किया वहा वे आश्रम मे रहे । उन्होने प्रकृति के खुले वातावरण मे रहकर प्रकृति का अवलोकन किया था ।

वाल्मीकि रामायण का एक चित्र देखिये—

राम पुष्पक विमान मे सीता को ले जा रहे हैं । प्रकृति का रम्य रूप उनके सामने है अत वे सीता जी से कहते हैं—हे सीते ! इस रमणीय तटवाली विचित्र मदाकिनी को देखो । जिसके तट पर हस और सारस कल्लोल करते हैं और जो पुष्पित वृक्षो से घिरे हैं । पवन से प्रताडित शिखरो से जो नृत्य सा करता है, ऐसा पर्वत वृक्षो से नदी पर चारो ओर पुष्प और पत्र विकीर्ण करता है । हे भद्रे ! पवन के झोको से नदी के तट पर बिखरे हुए पुष्पो के ढेर को देखो और इन दूसरे पुष्पो, को देखो जो उडकर जल मे जा गिरे हैं । जैन मुनी प्राय नदी, सरोवर के किनारें, पर्वतो के ऊपर या गुफाओ मे तप करते थे । प्रकृति अपना रोप दिखलाती

थी, किन्तु ये विचलित नहीं होते थे। सावन का महीना है और नेमीश्वर गिरनार पर्वत पर तप करने चले गये हैं इस पर राजमती कहती है—

पिया सावन मे व्रत लीजे नही, घनघोर घटा जुर आवेगी।
चहु ओर तें मोर जु शोर करें, वन कोकिल कुहल सुनावेगी।।
पिय रेन अंधेरी मे सूझे नही, कछु दामिनि दमक डरावेगी।।

उक्त उदाहरणो से यह बात स्पष्ट है कि भारतीय कवियो ने प्रकृति को अपनी खुली आखो से देखा है और उसके प्रति उनका सहज अनुराग है। प्रकृति के किसी दृश्य को चमत्कार पूर्ण ढग से कहने की प्रवृत्ति उनमे नही है। हिन्दी साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भक्तिकाल मे प्रकृति चित्रण तो हुआ है पर उस काल के सतो और भक्तो की वाणी उपदेश परक थी। उन्होने अपने आध्यात्मिक अनुभवो को व्यक्त करने के लिये प्रकृति के प्रतीको का सहारा लिया है अन्योक्ति के माध्यम से प्रकृति का आलवन लेकर उन्होंने अपने विचारो को व्यक्त किया है। तुलसी जैसे भक्त कवियो ने वर्षा और शरद् का वर्णन किया है, परन्तु प्रकृति के विभिन्न क्रियाकलापो के माध्यम से उन्होने उपदेश ही दिया है। उन्होने प्रकृति का वर्णन आलवन के रूप मे ही किया है।

रीतिकालीन कवियो ने इसके विपरीत प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप मे अधिक किया है। जायसी का बारहमासा वर्णन, बदलती हुई ऋतुओ मे नागमती की विरह व्यथा को उद्दीप्त करता है। षड् ऋतुओ का उपयोग भी उन्होने उद्दीपन रूप मे ही किया है। परन्तु जैन कवियो ने प्रकृति का वर्णन नीति व शिक्षा के रूप मे किया है। कविवर बुधजन द्वारा जैन साहित्य मे, वाह्य प्रकृति के नाना रूपो की अपेक्षा मानव-प्रकृति (स्वभाव) का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। कविता करने की प्रेरणा उन्हे जीवन की नश्वरता और अपूर्णता के अनुभव से ही प्राप्त हुई है। उनकी सौंदर्य ग्राहिणी दृष्टि प्रकृति के वाह्य रूपो की ओर भी गई और उन्होने प्रकृति के सुन्दर चित्र भी अकित किये पर शान्त रस के उद्दीपन के रूप मे ही।

प्रकृति के विभिन्न रूपो मे सुन्दरी नर्तकी के दर्शन भी अनेक जैन कवियों ने किये हैं, किन्तु वह नर्तकी कुछ ही क्षणो में कुरूपा और वीभत्स सी प्रतीत होने लगती है। रमणी के केश-क्लाप, सलज्ज कपोल की लालिमा और साज-सज्जा के विभिन्न रूपो मे विरक्ति की भावना का दर्शन करना जैन कवियो की अपनी विशेषता है। कविवर बुधजन ने होली का वर्णन किया है। वे लिखते हैं—

निजपुर मे आज मची होली निजपुर मे।
उमगि चिदानन्द जी इतआये, उत आई सुमती गोरी।। निज०।।
लोकलाज कुलकाणि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी।। निज०।।

समकित केसर रग वनायो, चारित पिचकारी छोरी ।। निज० ।।
गावत अजपा गान मनोहर, अनहद भरसो वरस्योरी ।। निज० ।।
देखन आये बुधजन भीगे, निरख्यो ख्याल अनखोरी ।। निज० ।।

चेतन आत्मा अपने मे ही होरी का खेल मचा रहा है। एक ओर उमग मे भरे चिदानद जी हैं तो दूसरी ओर सुमति रूप गोरी है। इन दोनो ने लोक लाज का ख्याल न रखते हुए ज्ञान रूपी गुलाल से अपनी झोरी भर ली है। उसने सम्यक्त्व रूपी केशर का रग वना लिया है और अव चिदानद जी चारित्र रूपी पिचकारी छोडेगे। इस प्रसग पर मनोहर अजपा गान होने लगा और अनहद नाद होने लगा। इस प्रकार की होली को, बुधजन को भी देखने का अवसर मिला तो वे भी सुमति रानी के साथ होली खेलने लगे। इस प्रकार सपूर्ण वातावरण आनद से भर गया।

जैन धर्म व जीवन, जीव को परम नि.श्रेयस् की ओर वढाने का एक प्रयत्न है अत यहा होली का मादक उन्माद भी समता–श्री वृद्धि का सहायक होता है। कवि की उपर्युक्त भावधारा मे मौलिक होली अध्यात्म प्रगति की होली वन गई है। आत्मा के घट मे वसन्त फूट पडा है और फिर मुमुक्षुओ के लिये शाम्वत सुख केलि का कोई अन्त ही नही रहा है।

१८वी शताब्दी के श्री 'वर्धमान पुराण" काव्य के प्रणेता श्री नवलराम ने अनेक होली पद लिखे हैं। यहा एक सक्षिप्त पद पर विचार किया जा रहा है। कवि का विमर्श है कि अश्लील भड रूप से होली खेलना उचित नही है। उसके अनुसार महाठग कुमति-रमणियो का साथ एकदम छोड, सुज्ञानरूप रूपसियो का प्रसग करना इष्ट है। होली का खेल तो कुछ इस प्रकार ही होना चाहिये। यथा—

ऐसे खेलि होरी को खेल रे।
कुमति ठगोरी को अव तजि करिके, साथ करो सुमती गोरी को ।।

कवि कह रहा है कि व्रत रूपी वन्दन लीजिये, तपरूपी सात्विक अरगजा (सुरभित लेपन) लेकर सयम रूपी जल छिडकिये, फिर देखिये क्या वहार आती है? ऐसा होली का खेल खेलिये।

कवि बुधजन अपनी 'बुधजन-विलास' रचना मे चेतन राजा को सावधान करते हुए कहते हैं कि 'हे चेतनराजा! यदि तुम्हे होली खेलना ही हो तो तुम सुमति-रानी के साथ ही होली खेलना। अन्य स्त्रियो की प्रीति तोडकर सुमति रानी से सग जोडने से चेतन और सुमति की अच्छी जोडी वन गई है। यह डगर-डगर डोलती थी। परन्तु इस प्रकार डगर-डगर डोलना उचित नही है। हे चेतन! अपना आत्मानुभव रूपी रग क्यो नही छिडकते? तुम ने सुमति रानी का साथ किया है,

अत उसके सहयोग से अपने मिथ्यात्व आदि पापो का त्याग कर आत्मानुभव रूपी गुलाल से अपनी झोरी भर ले, आत्मा को निर्मल बना ले। सुमति का सग न रहने से तू ने पहले अनेकानेक योनियो मे भ्रमण किया और अनेक कष्ट उठाये। कवि बुधजन कहते हैं कि अपने वेश को सुधारो अर्थात् सम्यग्दृष्टि बनकर चारित्र धारण करो, जिससे मुक्तिरमा के सग आनद की प्राप्ति हो सके[1]।

इसी प्रकार की होली खेलने के लिये कवि ने चेतनराजा को प्रोत्साहित किया है तथा अन्य प्रकार की होली खेलने का निषेध किया है। उन्ही का एक और पद द्रष्टव्य है —

'सुमति रूप नारी श्री जिनवर के दरबार मे होली खेलना चाहती है। इसके लिये वह विभाव-भावो का परित्याग कर शुद्ध स्वरूप बनाना चाहती है। वह प्रतिज्ञा करती है कि मैं कभी भी कुमति नारी का सग नहीं करना चाहती। मैं मिथ्यात्व रूप रग की अपेक्षा सम्यक्त्व रूपी रग मे डूबना उचित समझती हूँ। कवि बुधजन भी अपनी आत्मा के आनन्द रूपी रस मे (रंग) खूब छक गया है और अब उसे आनद ही आनद की प्राप्ति हो रही है। निरानन्द का कोई कारण ही नही रहा।' कविवर बुधजत ने लोक मगल की कामना से प्रेरित होकर प्रकृति का चित्रण किया है यह कोई नई बात नही है। तुलसी, गिरधर आदि कवियों ने भी इस प्रकार लोक मगल की कामना से प्रेरित होकर प्रकृति का चित्रण किया है।

'अनादि काल से प्रकृति मानव को सौंदर्य प्रदान करती आ रही है। वन, पर्वत, नदी, नाले, उषा, सध्या, रजनी, ऋतु आदि सदा से अन्वेषण के विषय रहे हैं। हिन्दी के जैन कवियो को कविता करने की प्रेरणा जीवन की नश्वरता और अपूर्णता के अनुभव से ही प्राप्त हुई है[2]।

मुख्य बात यह है कि भारतीय साहित्य मे प्राय सभी कवियो ने किसी न

---

१ बुधजन, बुधजन विलास, पाना सख्या ३१, पद्य स० ३३, हस्त लिखित प्रति।

चेतन खेलि सुमति सग होरी ॥ टेक ॥
तोरी आनकी प्रीति सयानी भली बनी या जोरी ॥१॥
डगर-डगर डोले है यो ही, आव पावनी पोरी।
निज रस फगुआ क्यो नहीं बाटो, नातर सुवारी तोरी ॥२॥
क्षार कषाय त्याग या गहिले, समकित केसर थोरी।
मिथ्यापाथर डारि धारिले, निज गुलाल की झोरी ॥३॥
खोटे भेष धरे डोलत हैं, दुख पावै बुधि मोरी।
"बुधजन" अपना भेष सुधारो, ज्यो विलसो सिव गोरी ॥४॥

२ डॉ० नेमिचन्द शास्त्री : सस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियो का योगदान, पृष्ठ सख्या ५८५, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

किसी रूप मे प्रकृति का आलवन, उद्दीपन रूप मे चित्रण किया है। यह चित्रण जहा सौंदर्य को अभिव्यक्त करता है वही मानवीय पक्षो के चित्रण मे भी सहायक माना जाता है किन्तु मानव की मूल प्रकृति का यथा तथ्य वर्णन करना विशिष्ट कवियों की प्रतिभा का ही कार्य प्रतीत होता है। प्रकृति के वाह्य रूपो का वर्णन करना सरल है, किन्तु वाह्य प्रकृति का आलवन लिये बिना प्रत्यक्ष रूप से मानव-प्रकृति का वर्णन करना असभव नही तो क्लिष्ट अवश्य है। 'बुधजन' जैसे कवि ही इस प्रकार के प्रकृति चित्रण करने मे समर्थ हैं। इतना ही नही 'अनेक जैन कवि प्रकृति के प्रागण मे पले और वह ही उनका साधना क्षेत्र बना अत. वे प्रकृति-चित्रण भी स्वाभाविक ढग से कर सके[1]।

उन्होने प्रकृति के माध्यम से अनेक प्रकार की शिक्षा दी है। यथा–रात्रि का दीपक चन्द्रमा है। दिन का दीपक सूर्य है। सारे ससार का दीपक धर्म है और कुल का दीपक शूरवीर पुत्र है[2]।

शिक्षा देने पर भी जो श्रद्धा नही करता। रातदिन झगडा और फिसाद करता रहता है। ऐसा पूत पूत नही, भूत है। वह तो अपने घोर पापो का फल है[3]।

कवि ने बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप मे भी प्रकृति का चित्रण किया है। यथा—

सपत्ति के सबही हितु, विपदा मे सब दूर।
सूखोसर पखी तजे, सेवें जलते पूर[4] ।।१६८।।

यहा पखी–सरोवर का बिम्ब
सपत्ति–पानी से भरा सरोवर
विपत्ति–सूखा सरोवर

---

१ डॉ० प्रेमसागर जैन : जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० २० ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला, ग्रन्थाान्क १८६ प्र० स स्करण, १६६४
२ बुधजन : बुधजन सतसई पृ० स० १८१, पृष्ठ स० ३७
३ बुधजन : बुधजन सतसई, पृ० स० १८२, पृष्ठ स ख्या ३८
४ बुधजन बुधजन सतसई, पद्य सख्या १६८, पृष्ठ स ख्या ३५/सनावद

द्वितीय-अध्याय

१. भाव पक्षीय विश्लेषण—

कविवर बुधजन की रचनाओ मे एक ओर भारतीय लोक-नीति-रीतिपरक भावाभिव्यजना प्रतिफलित हुई है, वही दूसरी ओर आत्मा को केन्द्र विन्दु मानकर उसके अस्तित्व, रुचि व श्रद्धा, ज्ञान एव ध्यान से सम्बन्धित भावो की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। भावो मे विकल्पात्मक चिंतन तथा साहित्यिक अभिव्यजना मानवीय सवेदनाओ को सहेजे हुए स्पष्टत लक्षित होती है। भावो मे भले ही कथात्मक सहजता तथा मार्मिक प्रसगो की योजना न मिलती हो, पर सरसता का गुण सर्वत्र है। मनुष्य का मानवीय पक्ष क्या है? जगत् और जीवन के साथ उसका क्या सम्बन्ध है? इन्ही बातो का विचार करते हुए लेखक ने चिन्तनपूर्ण विवेचन किया है। उनकी रागात्मिका अनुभूति भावो के उद्रेक मे उतनी अधिक रमी नही है, जितनी कि भावो के विश्लेपण मे सलीन लक्षित होती है।

भावो के होने मे चित्त की सहजवृत्ति तथा सस्कारो का प्रभाव विशेप रूप से क्रियाशील रहता है। इसलिये यदि कवि का झुकाव अनात्मीय पदार्थों से हट कर आत्मा-परमात्मा की ओर विशेप रूप से रहा है, तो यह सहज व स्वाभाविक है क्योकि ससार की विषय वासनाओ से प्रसूत होने वाले राग-रग के भाव एक ओर हैं और वीतरागता को प्रकट करने वाले भाव दूसरी ओर है। यह समझना उचित प्रतीत नही होता कि साहित्य मे शृ गारमूलक भाव ही मुख्य होते हैं। यदि ऐसा ही हो तो फिर शान्त रस के उज्जवल प्रकाशन मे महाकवियो की वाणी को क्यो मौन-भग करना पडा। क्या शान्ति व वैराग्य प्राणी मात्र को इष्ट नही है? ससार का स्वभाव बताता हुआ कवि कहता है—मिथ्या विकल्पों (राग द्वेष के भाव) की रचना करके ससारी जीव चित्त को चिता के समान रच रहा है। इस तरह के भाव तो सदा उत्पन्न होते ही रहते हैं। एक भाव के उत्पन्न होते ही तत्क्षण दूसरा भाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार भावो का प्रवाह शाश्वत रूप से अनादि काल से प्रवहमान है। अत प्राणी को सुख व शान्ति प्राप्त नहीं होती है।

कविवर ने लोक जीवन व लोक रीति की शिक्षा पर भी पर्याप्त ...
है। वास्तव मे प्राणी ने जैसे जैसे भाव किये हैं, कर रहा है व करेगा
प्राप्त कर चुका है, कर रहा है व करेगा। कोई किसी का भाग्य नह

है। जो अपना भाग्य बनाता है, वही बदल सकता है। इसलिये अशुभ-भावो से हटकर शुभभाव करते रहना चाहिए और शुद्ध भावो की भावना भानी चाहिये। कविवर के भाव पक्षीय विश्लेषण मे यही वृत्ति मुख्य रूप से लक्षित होती है। वे भूत, भविष्यत् की चिंता छोडकर वर्तमान को सम्भालने का भाव करने की ही सीख देते हैं। उनकी दृष्टि मे वर्तमान सबसे महत्त्वपूर्ण है। यदि इस समय हमारी रुचि सम्यक् नही बन पाई, भाव भी वैसे न हुए, तो हमारे जीवन से क्या लाभ ?

मूल भाव की दृष्टि से कविवर की रचनाओ मे रहस्यानुभूति के दर्शन होते है। विविध रूपको के द्वारा उन्होंने आत्मा-परमात्मा की रहस व सुरति को चित्रित किया है। एक सन्त कवि व नीति-उपदेशक के रूप मे उनके भाव स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए हैं।[1]

मोह मदिरा—

मोह मदिरा के नशे मे विन्हल मनुष्य की दशा मद्य-पान करने वाले व्यक्ति के सदृश हो जाती है। यही दशा मोही जीवो की जानना चाहिये।

स्वार्थी स सार —

जीव एकाकी मा के गर्भ मे आता है और नव मास पर्यंत अधोमुख होकर बिताता है, वहा से जब निर्गत होता है, उन दु खो को तो वही जानता है, अन्य कोई तो जान ही क्या सकेगा ? जो माता उसे उदर मे धारण करती है, उसे भी उस बालक के दु खो का पता नही। जब निर्गत हुआ तब बाल्यावस्था मे शक्ति व्यक्त न होने से, इच्छा के अनुकूल कार्य न होने से जो कष्ट उसे होते हैं, उनके वर्णन करने मे अन्य किसी की सामर्थ्य नही। उसे तो भूख लगी है, दुग्धपान करना चाहता है, परन्तु मा अफीम पान कराकर सुलाने की चेष्टा करती है। वह सोना चाहता है, मा कहती है बेटा दुग्धपान कर लो। कहने का तात्पर्य यह कि सब तरह से प्रतिकूल कार्यों मे ही बाल्यकाल को पूर्ण करना पडता है। जहा पाच वर्ष का हुआ, माता-पिता, बालक को पढाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी विद्या का अर्जन कराते हैं, जिससे लौकिक उन्नति हो। यद्यपि लौकिक उन्नति मे शान्ति नही मिलती तथापि माता-पिता को जैसी परपरा से पद्धति चली आ रही है, तदनुकूल ही उनका, बालक के प्रति भाव रहेगा। जिस शिक्षा से आत्मा को शान्ति मिले, उस ओर लक्ष्य ही नही।

---

१ झूठे विकलप रचि करे, चिता चत्त के माहि।
एक मिटै दूजी उठै, साता पावै नाहि॥

बुधजन बुधजन विलास, वैराग्य, दोहा स ख्या १३, पाना स २७।

पालक गुरु से कहते हैं—जिसमे बालक खान-पान के योग्य द्रव्यार्जन कर सके—अर्थकरी विद्या की ही शिक्षा देना। जहा बालक २०–२२ वर्ष का हो गया माता-पिता ने दृष्टि बदली और यह सकल्प करने लगे कि कब बालक का विवाह हो जाय ? इसी चिन्ता मे मग्न रहने लगे। अन्ततोगत्वा अपने तुल्य ही बालक को बनाकर, ससार वृद्धि का ही प्रयत्न करते है। इस तरह यह ससार चक्र चल रहा है। इसमे कोई विरला ही महानुभाव होगा जो अपने बालक को ब्रह्मचारी बनाकर स्व-पर के उपकार मे आयु पूर्ण करे।

आज से २००० वर्ष पूर्व श्रमण-सस्कृति थी। तब बालक गण मुनियो के पास रहकर विद्याध्ययन करते थे। कोई तो मुनिवेश मे अध्ययन करते थे। कोई ब्रह्मचारी वेश में ही अध्ययन करते थे। कोई साधारण वेश में विद्या अध्ययन करते थे। स्नातक होने के अनन्तर कोई तो गृहस्थावस्था को त्यागकर मुनि हो जाते थे, कोई आजन्म ब्रह्मचारी रहते थे, कोई गृहस्थ बनकर ही अपना जीवन-निर्वाह करते थे, परन्तु अब तो गृहस्थावस्था छोडकर कोई भी त्याग करना नही चाहता। सतत् गृहस्थ धर्म मे रहकर जन्म गवाते हैं।[1] कुछ लोग ज्ञान के क्षेत्र मे विभिन्न मतो की सृष्टि करते हैं। आत्मा और ब्रह्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन उपनिषदो मे तथा अद्वैत वेदान्त के रूप मे उपलब्ध होता है। वास्तव मे आत्मवाद और ब्रह्मवाद ये दोनो ही स्वतत्र सिद्धान्त हैं। किसी एक से दूसरे का विकास नही हो सकता। प्रथम सिद्धान्त के अनुसार अगणित आत्मा ससार मे परिभ्रमण कर रहे हैं, और अगणित ही परमात्मा बन गये हैं। ये परमात्मा ससार की उत्पत्ति, स्थिति और लय मे कोई भाग नही लेते। इसके विपरीत, ब्रह्मवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु ब्रह्म से ही उत्पन्न होती है और उसी मे लय हो जाती है। विभिन्न आत्माए एक परब्रह्म के ही अश हैं। जैन और साख्य मुख्यतया आत्मवाद के सिद्धान्त को मानते हैं, जबकि वैदिक परपरानुयायी ब्रह्मवाद को। परन्तु उपनिषद् इन दोनो सिद्धान्तो को मिला देते हैं और आत्मा तथा ब्रह्म की एकता का समर्थन करते हैं।[2]

वस्तुत बुधजन जैसे जैन कवि काव्य के माध्यम से दर्शन, ज्ञान, चारित्र की अभिव्यजना करते रहे है। वे आत्मा का अमरत्व एव जन्म-जन्मान्तरो के सस्कारो की अपरिहार्यता दिखलाने के पूर्व पर्वजन्म के आख्यानो का भी सयोजन करने रहे हैं। प्रसगवश, चार्वाक, तत्वोप्लववाद प्रभृति नास्तिक वादो का निरसन कर आत्मा का

---

१ वर्णीवाणी, ३/२५४/२६०

२ डॉ० आ० ने० उपाध्ये· परमात्म प्रकाश तथा योगसार की प्रस्तावना, रायचद्र शास्त्रमाला बम्बई, सन् १९७०

अमरत्व और कर्म सस्कार का वैशिष्ट्य प्रतिपादन करते रहे।[1]

कविवर बुधजन की समस्त रचनाओ का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होने अनादि कर्मबन्धनबद्ध जीवो को सन्मार्ग मे प्रवृत्त कराने का प्रयत्न किया है। उन्होने ससार भ्रमण की विभीषिका का बडे ही मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है। वे लिखते हैं

जगत् के प्राणी आत्म हित की खोज मे उद्यमशील दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु सदुपदेश के अभाव से मृगतृष्णा मे जल-सकल्प-भ्रान्त मृगो की तरह इतस्तत भटकते हुए अभीष्ट फल से वचित ही रहते हैं। उन्हे जीव का वास्तविक हित क्या है और उस हित साधन की साक्षात् तथा परम्परा प्रणाली क्या है? इसका ज्ञान न होने से खेद खिन्न होना पडता है।

जीव के आनन्द रूप गुण विशेष को सुख कहते है। यह सुख गुण अनादि काल से ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के निमित्त से वैभाविक परिणति रूप हो रहा है। सुख गुण की इस वैभाविक परिणति को ही दु ख कहते हैं।[2] इस आकुलता रूप दु ख के दो भेद है—एक साता और दूसरा असाता। ससार मे अनेक प्रकार के पदार्थ हैं, जो प्रति समय यथायोग्य निमित्त मिलने पर स्वाभाविक तथा वैभाविक पर्याय रूप परिणमन करते है। यदि परमार्थ दृष्टि से देखा जाय तो कोई भी पदार्थ न इष्ट है और न अनिष्ट है। यदि पदार्थों मे ही इष्टानिष्टता होती तो एक पदार्थ जो एक मनुष्य को इष्ट है वह सबही को इष्ट होता और जो एक को अनिष्ट है वह सबही को अनिष्ट होता। परन्तु ससार मे इससे विपरीत देखा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि पदार्थों मे इष्टानिष्टता नही है। किन्तु जीवो ने भ्रमवश किसी पदार्थ को इष्ट और किसी को अनिष्ट मान रखा है।

मोहनीय कर्म के उदय से दुरभिनिवेश पूर्वक इष्टानिष्ट पदार्थों मे यह जीव राग-द्वेष को प्राप्त होता है, जिससे निरतर ज्ञानावरणादिक कर्मों का बन्ध करके इस ससार मे भ्रमण करता हुआ इष्टानिष्ट, सयोग-वियोग मे अपने को सुखी-दु खी मानता है। भ्रमवश इस जीव ने जिसको सुख मान रखा है वह वास्तव मे आकुलतात्मक होने से दु ख ही है। ये सासारिक आकुलतात्मक सुख-दु ख आत्मा के स्वाभाविक सुख गुण का कर्मजन्य विकृत परिणाम है। कर्मो से मुक्त होने पर गुण की स्वाभाविक पर्याय को ही यथार्थ सुख अथवा वास्तविक आत्महित कहते हैं।

---

१ जैन डॉ० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य . भगवान महावीर और उनकी आचार्य परपरा, भाग–४, पृष्ठ–२।

२ दौलतराम : छहढाला, तृतीय ढाल, तेरहवां सस्करण, पद्य स० १ पृष्ठ स १७ सरल जैन ग्रन्थ भडार ४०७, जवाहरगज, जबलपुर।

कवि ने आत्म हित के दो साधन बतलाये हैं। पहला मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थ धर्म। उन्होंने मुनिधर्म को आत्महित का साक्षात् साधन कहा तथा गृहस्थ धर्म को परपरा मोक्ष का या आत्म-हित का साधन कहा। साक्षात् सुख के साधन को स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है कि, आत्मा के सुख गुण को विस्तृत करने वाले ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म हैं। जब तक ये कर्म आत्मा से जुदे न होंगे तब तक इस जीव को यथार्थ सुख नही मिल सकता। न्याय का सिद्धान्त है कि जिस कारण से जिस कार्य की उत्पत्ति होती है उस कारण के अभाव से उक्त कार्य की उत्पत्ति का भी अभाव हो जाता है। उक्त न्याय के अनुसार यह बात सिद्ध होती है कि जिन कारणो से कर्म का सम्बन्ध होता है उन कारणो के अभाव से कर्म का वियोग अवश्य हो जायगा। मिथ्या ज्ञान पूर्वक राग-द्वेष से कर्म का बन्ध होता है, अत सम्यग्ज्ञान पूर्वक राग-द्वेष की निवृत्ति से यह जीव कर्मों से मुक्त हो सकता है। एक देश ज्ञान की प्राप्ति तथा राग द्वेष की निवृत्ति यद्यपि गृहस्थाश्रम मे भी हो सकती है परन्तु पूर्णतया ज्ञान की प्राप्ति तथा राग-द्वेष की निवृत्ति मुनि अवस्था मे ही होती है। इसलिये आत्म-हित का साक्षात् साधन मुनिधर्म ही है। यह मुनिधर्म बारह भावनाओ के चितवन करने से ही प्रगट होता है।[1]

अध्यात्म राग :

कविवर अध्यात्म शास्त्रो के कोरे पडित ही न थे किन्तु उन्होने उन अध्यात्म शास्त्रो के अध्ययन-मनन एव चितन से जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया था, वे उसे दृढ़ श्रद्धा मे परिणत करने के साथ-साथ आशिक रूप से अपने जीवन मे तदनुकूल वर्तन करने का भी प्रयत्न करते थे। उनका जीवन अध्यात्म रस से सिंचित था तथापि वे इष्ट वस्तु का वियोग होने पर भी कायरो की भाति दुखी नही होते थे, किन्तु वस्तु स्थिति का बराबर चितन करते हुए कमजोरी से जो कुछ भी थोडे से समय के लिये दुख अथवा कष्ट का अनुभव होता था वे उसे अपनी कमजोरी समझते थे और उसे दूर करने के लिये वस्तु स्वरूप का चितन कर उससे मुक्त होने का प्रयत्न करते थे। इन्ही सब विचारो से उनकी गुणज्ञता और विवेक का परिचय मिलता है। वे आत्म ध्यान मे इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें बाहर की क्रियाओ का कुछ भी पता नही चलता था। किसी की निंदा और प्रशसा मे वे कभी भाग नही लेते थे। यदि दैवयोग से ऐसा अवसर आ भी जाता तो बुद्धि पूर्वक उसमे प्रवृत्त नही होते थे और न अपनी शान्ति भग करने का कोई उपक्रम ही करते थे। वे कर्मोदय

---

१. मुनि सकल व्रती बड भागी, भव भोगन तें वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंते अनुप्रेक्षा भाई॥
दौलतराम छहढाला, पाचवीं ढाल, पद्य स० १ पृष्ठ संख्या ३७, सरल जैन ग्रन्थ भडार, जबलपुर।

जन्म क्रियाओ द्वारा होने वाले इष्ट-अनिष्ट पदार्थों के वियोग . सयोग को कर्मोदय का विपाक समझते थे। उसमे अपनी कर्तृत्व बुद्धि और अह क्रिया रूप मिथ्या वासना को किसी प्रकार का कोई स्थान नही देते थे। इसी कारण वे व्यर्थ की अशान्ति से बच जाते थे। साथ ही अतत्व-परिणति और मोह ममता से अपने को वचाये रखने मे सदा सावधान रहते थे—कभी असावधान अथवा प्रमादी नही होते थे। वे स्वय सोचते और विचारथे वे कि हे आत्मन्! जब तेरी अन्तर्दृष्टि जागृत हो जायगी उस समय काललब्धि, सत्सग, निर्विकल्पता और गुरु उपदेश सभी सुलभ हो जायेंगे। विषय-कषायो की ललक मुरझा जायगी, वह फिर तुझे अपनी ओर आकृष्ट करने मे समर्थन हो सकेगी, मन की गति स्थिर हो जाने से परिणामो की स्थिरता हो जायगी। फिर विवेक रूपी अग्नि प्रज्वलित होगी और उसमे विभाव-भाव रूप ईधन नष्ट हो जायगा। तेरे अर्न्तघट मे विवेक जागृत होते ही मन पर परणति मे रागी नही होगा और तू सब तरह से समर्थ होकर अनुभव रूपी रग मे रग जायगा। तभी तू स्वानुभव रूप आत्म-रस का अनुभव करने लगेगा जो सहज, स्वाभाविक सार पदार्थ है।

जिनेन्द्र भक्ति-कवि का जीवन जहा अध्यात्म शास्त्रो के अध्ययन मे प्रवृत्त होता था, वहा वह भक्ति रस रूप वाग्गगा की निष्काम विमल धारा के प्रवाह मे डुबकिया लगाता रहता था। वे जिनेन्द्र भगवान के गुणो का चिन्तन एव भक्ति करते हुए इतने तन्मय अथवा आत्म-विभोर हो जाते थे कि उन्हे उस समय बाहर की प्रवृत्ति का कुछ भी ध्यान नही रहता था— भक्ति—रस के अपूर्व उद्रेक मे वे अपना सब कुछ भूल जाते थे—भगवद् भक्ति करते हुए उनकी कोई भी भावना उसके द्वारा धनादि की प्राप्ति अथवा ऐहिक भोगोपभोगो की पूर्ति रूप मनोकामना को पूर्ण करने की नही होती थी, इसी से उनकी भक्ति निष्काम कही जाती थी। कवि की भक्ति का एक मात्र लक्ष्य सासारिक विकल्पो को मिटाने और आत्मगुणो की प्राप्ति का था। उनकी यह दृढ श्रद्धा थी कि उस वीतरागी जिनेन्द्र की दिव्य मूर्ति का दर्शन करने से जन्म-जन्मान्तरो के अशुभ कर्मों का ऋण शीघ्र चुक जाता है—वह विनष्ट हो जाता है—और चित्त परम आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है।

यद्यपि जिनेन्द्र का गुणानुवाद अत्यन्त गभीर है, वह वचनो से नही कहा जा सकता और जिसके सुनने अवधारण करने अथवा श्रद्धा करने से यह जीवात्मा कर्मों के फन्द से छूट जाता है। वे स्वय कहते हैं—हे प्रभो! मैंने आज तक आपकी पहिचान नही की, यत्र तत्र भटकता रहा न जाने कौन कौन से रागी-द्वेषी देवो की उपासना करता रहा। यही कारण है कि भ्रमवश आत्मा के लिये अहितकारी पदार्थों को अपना हितकारी मानता रहा। मिथ्या मान्यता के कारण मैंने जो कर्मोपार्जन किये, उन्होंने मेरे संपूर्ण ज्ञान-धन को लूट लिया। ज्ञान-धन के लुट जाने से अपने कर्त्तव्य को भूलकर सन्मार्ग से भ्रष्ट हो अनेक प्रकार की खोटी गतियो मे भटकता रहा। हे प्रभो! आज की घडी धन्य है, आज का दिवस धन्य है, और आज मेरा

यह मानव जीवन भी धन्य हो गया। आज मेरे सौभाग्य का उदय हुआ है, जो मैंने आपके दर्शन प्राप्त किये। आपकी विकार वर्जित नासाग्र दृष्टि, अष्ट प्राति हार्य, नग्न मुद्रा, अनतगुण युक्त आपकी छवि को निरखकर आज मेरा जन्म-जन्मातर से लगा मिथ्यात्वभाव या अज्ञान भाव नष्ट हो गया। आज मेरे आत्म स्वरूप की पहिचान कराने वाला सम्यकत्व रूपी सूर्य का उदय हुआ है। हे प्रभो! आपके शुभ दर्शन प्राप्त कर मुझे अपार हर्ष हो रहा है। ऐसा हर्ष हो रहा है, जैसा किसी रक को मणि आदि रत्नो के प्राप्त होने पर होता है। हे प्रभो! मैं हाथ जोडकर आपके पवित्र चरणो मे नत मस्तक होता हू। हे प्रभो! आपके शुभ दर्शन कर मुझे किसी भी सासारिक पदार्थ की अभिलाषा नही है। मैं आपकी भक्ति के प्रताप से न स्वर्ग चाहता हू, न राजा बनना चाहता हू और न कुटुम्बियो का साथ चाहता हू। केवल एक ही प्रार्थना है कि मुझे जन्म-जन्मान्तर मे आपकी पुनीत भक्ति प्राप्त होती रहे। कवि के निम्न पद इसी भावना के द्योतक हैं[1] —

सरस्वती (जिनवाणी) की स्तुति जिनेन्द्रभक्ति के समान ही कवि द्वारा की गई है। जिनवाणी के प्रति कवि की आस्था अद्वितीय है। वे लिखते हैं—जिनेन्द्र के मुख रूपी कु ड से वाणी रूपी गगा निकलती है, उसने संसार के विषम सताप एव

---

१. प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेटि जामन मरण जी॥
तुम ना पिछान्यो अन्य मान्यो देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥
भव-विकट वन मे कर्म वैरी, ज्ञानधन मेरो हर्यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्यो।
धन घड़ी यो धन-दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभुजी को लखि लयो॥
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नाशा पै धरे।
वसु प्रातिहार्य अनत गुण युत कोटि रवि छवि को हरे॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनो रक चिंतामणि लयो॥
मैं हाथ जोड नवाऊ मस्तक, वीनऊ तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोक पति जिन सुनहु तारण-तरण जी॥
याचू नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथ जी।
बुध याचहू तुम भक्ति भव-भव दीजिये शिव नाथ जी॥

कवि बुधजन देवदर्शन स्तुति, ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि, पृ० ५३४–३५ भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रकाशन।

भ्रम को दूर कर दिया है। जो प्राणी जिनेन्द्र के वचन रूप जहाज मे बैठ जाता है वह भव समुद्र से तिर जाता है। इसके सिवाय ससार समुद्र से पार होने का अन्य कोई इलाज नही है।[1]

जिनवाणी के प्रति कवि के अन्त करण मे कैसी अटूट श्रद्धा है—अनन्य भावना है, यह देखते ही बनता है। यह रचना कवि की कवित्व-शक्ति की परिचायक है। कवि ने सरस्वती माता की अष्टद्रव्य से पूजा की है। वे लिखते हैं—हे माता! मैं जो आपके पुनीत चरणो मे जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप धूप और फल रूप अष्ट विध सामग्री चढाता हू वह तो आलवन मात्र है, वस्तुत मैं तो अपने भावो की शुद्धि चाहता हू और वही मेरा लक्ष्य है। वे आगे कहते हैं—मैं अनादि काल से ससार मे भ्रमण कर रहा हू। मिथ्याबुद्धि के कारण मैं आज तक आत्म-ज्ञान से सर्वथा अपरिचित रहा। मैं विषय-कषाय रूप अघ-कूप मे डूबा रहा। आज मैं भाग्य-शाली हू, जो मैंने आपका शरण प्राप्त किया। आप जिनेन्द्रदेव के मुख से प्रगट हुई हो, अनेकान्त स्वरूप हो। मुनिजन आपकी सदैव सेवा करते हैं। आप भ्रमरूप विष को दूर करने के लिये अमृत-तुल्य हो। ससार के विषम-सताप को दूर करने के लिये गंगा की धारा के समान हो। हे माता! आप दया की कद हो, परोपकार करने मे सदा तत्पर हो। आप चार अनुयोग रूप चार वेदो मे विभक्त हो।[2]

प्रथमानुयोग रूप प्रथम वेद द्वारा प्राणी पुण्य-पाप के फल का विचार करते हैं। करणानुयोग रूप द्वितीय वेद के द्वारा प्राणी तीनो–लोको की रचना का ज्ञान करते हैं। चरणानुयोग रूप तृतीय–वेद के द्वारा मुनि और श्रावक के आचरण की प्रेरणा प्राप्त करते हैं और द्रव्यानुयोग रूप चतुर्थ वेद के द्वारा प्राणी जीवादि षट् द्रव्यो के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार चार वेद रूप चारो अनुयोगो का सक्षेप मे वर्णन करते हुए कवि ने अतिम पद्य मे अपनी लघुता प्रकट करते हुए अपने नाम का भी उल्लेख किया है। वे लिखते हैं —

हे जिनवाणी। आप अत्यन्त उदार हो, गुण रूप जल की धारा आप मे

---

१ श्री जिन बेन जहाज, गहते ही भवि तरि गये।
या विन नाहि इलाज, जनम जलधि के तिरन को॥
बुधजनः सरस्वती पूजा, शास्त्र-भडार दि० जैन मदिर पाटोदी, जयपुर हस्तलिखित प्रति।

२ तुम दयाकद उपगार धारि, जन-जन कहते, हो वेद चार।
बुधजन सरस्वती पूजा, शास्त्र भडार दि० जैन मदिर पाटोदी, जयपुर हस्तलिखित प्रति।

प्रभावित होती है। आपके गुणो का कोई पार नही पा सकता। मैं केवल अपने मुख से आपका गुणानुवाद गाता हुआ आपके चरणो मे मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हू कि आप मेरे (बुधजन के) सपूर्ण दोषो को दूर करें।[1]

इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती आचार्यों एव कवियो की भाति बुधजन ने भी वारह भावनाओ का सुन्दर वर्णन किया है। वारह भावनाओ के वर्णन की जैन साहित्य मे एक लम्बी परपरा प्राप्त होती है। प्रस्तुत प्रकरण मे वारह भावनाओ के रचयिता आचार्यों एव कवियो के नाम मात्र दे रहा हू। इन विद्वानो ने विभिन्न शताब्दियो मे विभिन्न भाषाओ मे इस प्रकार की सरल रचनाए की हैं —

सर्वप्रथम जैनाचार्य कु दकु द ने प्राकृत भाषा मे 'वारस अणुवेक्खा' नाम से रचना की थी उनके पश्चात् स्वामी कार्तिकेय, जल्हसिह रइघू, भट्टारक सकल कीर्ति, प योगदेव, भट्टारक गुणचन्द्र, दीपचन्द शाह, बुधजन, मगतराय, प० लक्ष्मीचन्द, प० ब्रह्म साधारण, भूधरदास, जगसी, हेमराज, जयचन्द, दीपचन्द, दौलतराम, भैया भगवतीदास, शिवलाल, गिरधर शर्मा, ब्र० चुन्नीलाल देसाई, युगलजी कोटा, नथमल विलाला, क्षु० मनोहर वर्णी, नैनसुखदास, डॉ० ज्योतिप्रसाद बारेलाल आदि ने बारह भावनाए लिखी।

कविवर बुधजन ने 12 भावनाओ मे सासारिक जीवन की असारता को सरसता के साथ कहा है। इस ससार मे राजा और रक सवको मरना है। मरने से उन्हे कोई रोक नही सकता। लोक मे जन्म, जरा और मरण से आक्रान्त जीव की अशरण स्थिति का विचार करना अशरण भावना है। ससार के स्वरूप और उसके दु खो का विचार करना ससार अनुप्रेक्षा है। आत्मा अकेला जन्मता है और अकेला मरता है तथा अकेला ही अपने कर्मफल का अनुभव करता है। कोई किसी के सुख-दु ख मे साझी नही हो सकता। इस प्रकार चितन करना एकत्व भावना है। जीव का शरीर आदि से प्रथक् चितन करना अन्यत्व भावना है। शरीर की अपरिहार्य अशुचिता का विचार करते हुए उससे विरक्त होना अशुचि भावना है। कर्मों के आश्रव की प्रक्रिया का चितन करना और उसे अनन्त ससार वध का कारण समझना आश्रव भावना है। सवर के स्वरूप का चितन करना सवर अनुप्रेक्षा है। कर्म की निर्जरा और उसके कारणो के सम्वन्ध मे विचार करना निर्जरा भावना है। लोक के स्वभाव और आकार आदि का चितन करना लोक भावना है। सम्यक् दर्शन,

---

१. तुम परम उदारा हो गुन धारा, पारावारा पारकरो।
मुखतें गुनगाऊ, सीस नमाऊ, 'बुघजन' के सब दोष हरो ॥
कवि बुधजन सरस्वती पूजा, शास्त्र भडार दि० जैन मदिर, पाटोदी, जयपुर, हस्त-लिखित प्रति।

सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप वोधि की दुर्लभता का विचार करना वोधि दुर्लभ भावना है। धर्म के स्वरूप का विचार कर आत्मा को धर्ममय वनाने का विचार करना धर्म भावना है।[1]

कविवर वुधजन का कहना है कि इन वारह भावनाओ का चितवन करने से भावो मे वैराग्य की जागृति होती है। इस विश्व के एव देह के वास्तविक स्वरूप का विचार करते-करते आत्मा विषय-भोगो से विरक्त हो, विलक्षण प्रकाश युक्त दिव्य-जीवन की ओर झुकता है। जैन कवि मगतराय कितने उद्वोधक शब्दो मे मानव आकृति धारी इस लोक और उसके द्रव्यो का विचार करता हुआ आत्मोन्मुख होने की प्रेरणा करता है।[2]

प्रत्येक ससारी जीव अपने-अपने भावो के अनुसार किस प्रकार और कौन-कौन से कर्मों का बध करता है। वुधजन कवि के अनुसार उक्त सारणी मे दृष्टव्य है।

गुणस्थान अपेक्षा प्रकृतियों के बंध

१ मिथ्यात्व	तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक अगोपाग का वध छूट जाता है।	१२०–६–११७
२. सासादन	मिथ्यात्व, हुडक सस्थान, नपुसक वेद, नरकगति नरकगत्यानुपूर्व, नरकायु, असप्राप्तासृपाटिका-सहनन, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण का बंध छूट जाता है।	११७–१६–१०१
३ मिश्र	अनतानुवधी जन्म २५ प्रकृतिया और मनुष्यायु देवायु का बध नही होता है।	१०१–२७–७४
४ अविरत सम्यग्दृष्टि	तीर्थंकर, मनुष्यायु, देवायु का बध होता है।	७३–३–७७
५. देश विरति	अप्रत्याख्यान–४, मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी मनुष्यायु, देवायु, औदारिक	

---

१ जैन डॉ० राजकुमार : अध्यात्मपदावली, पृ० ५५, भा० ज्ञानपीठ प्रकाशन १९६४

२. लोक अलोक आकाश मांहि थिर, निराधार जाना।
पुरूष रूप करकटी भये, षट् द्रव्यनिसों मानो ॥
जैन कवि मगतराय : बारह भावना (लोक भावना), जिनवाणी संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रकाशन।

	शरीर अगोपाग वज्रवृषभनाराचसहनन का वध छूट जाता है।	७७–१०–६७
६ प्रमत्त	प्रत्याख्यान–४ का वध छूट जाता है।	६७–४–६३
७. अप्रमत्त	अस्थिर, अशुभ, असातावदनीय, अयश-कीर्ति अरति, शोक आदि ६ का वध छूट जाता है। आहारक शरीर, आहारक अ गोपाग का वन्ध होता है।	६३–६२–५६
८ अपूर्वकरण	देवायु का वध छूट जाता है।	५६–१–५८
६ अनिवृत्तिकरण	निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, ५ इन्द्रिय, तेजसशरीर, कार्माणशरीर, आहारक शरीर और अ गोपाग, समचतुरस्रसस्थान, वैक्रियक शरीर और अ गोपाग, देवगति, देव-गत्यानुपूर्वी, देवायु स्पर्श, रस, गध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, हास्य, आदेय, रति, जुगुप्सा भय।	५८–३६–२८
१० सूक्ष्मसापराय	सज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभ, पुरुष वेद ये पाच प्रकृतिया छूट जाती है।	२२–५–१७
११ उपशान्तमोह	ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ४, अ तराय ५, यश कीर्ति, उच्चगोत्र का वध छूट जाता है।	१७–१६–१
१२. क्षीणमोह	उपरोक्त अनुसार एक ही प्रकृति का वध होता है।	– – १
१३. सयोगकेवली	सातावेदनीय का वन्ध उपचार से होता है।	– – १
१४. अयोगकेवली	एक भी प्रकृति का वध नहीं होता है निर्वाण का किनारा है।[1]	

---

१ बुधजन' तत्वार्थबोध, पृष्ठ १६१–१७७, पद सख्या ६६–११५, प्रकाशक कन्हैयालाल गगवाल, लश्कर।

'कविवर बुधजन के औषधिविज्ञान से सम्बन्धित उदाहरण'

(१) अधिक खाने से बीमारी होती है। अधिक बोलने से मान घट जाता है। अधिक सोने से धन का विनाश हो जाता है। अत किसी भी बात की अति नही करना चाहिये।[1]

(२) वस्त्र, जूते, गाय का दूध, दवाई, बीज और भोजन इनसे जितना लाभ मिलता है, उतना लाभ अवश्य लेना चाहिये जिससे कि कष्टो का निवारण हो।[2]

(३) उलटी या कै करने से कफ का नाश होता है। मालिश करने से वायु-विकार मिटता है। स्नान करने से पित्त शमन होता है और लघन करने से बुखार का नाश होता है।[3]

(४) कोढी व्यक्ति को मास, ज्वर के रोगी को घृत, शूल के रोगी को दो दालो वाला अन्न, नेत्र के रोगी को मैथुन सेवन नही करना चाहिये। अतीसार के रोगी को नया अन्न नही खाना चाहिये।[4]

(५) अपथ्य-सेवन से, स्वाद का ध्यान रखने से, रोग दूर नहीं हो सकता अत. यदि रोग दूर करना हो तो कुटकी का चिरायता (कडवीदवा) पीने योग्य है और रूखा भोजन (सुपाच्य) करना योग्य है।[5]

(६) भूख से कम खाना अमृत तुल्य होता है और खूब अघाकर खा लेना विष के समान है। ऊनोदर भोजन शरीर को पुष्ट करता है और बल बढाता

---

१ अतिखाने मे रोग है, अति बोले ज्या मान।
अतिसोयें धनहानि है, अति मतिकरो सुजान ॥१२६॥

२ पट पनही बहुखीर गो, औषधि बीज अहार।
ज्यो लाभै त्यो लीजिये, कीजे दुख परिहार ॥२३८॥

३ वमन करतें कफ मिटै, मरदन मेटै वात।
स्नान किये तें पित्त मिटै, लघन तेंजुर जात ॥२७७॥

४. कोढ़ मास घृत जुरविषै, सूल द्विदल द्यो टार।
दृगरोगी मैथुन तजो, नवो धान अतिसार ॥२७८॥

५ स्वाद लखै रोग न मिटै, कीयै कुपथ अकाज।
तातै कुटकी पीजिये, खांजे लूखा नाज ॥३२३॥

कवि बुधजन सतसई, पद्य सख्या १२६,२३८,२७७,२७८।

है परन्तु अधिक खाने से रोगो की वृद्धि होती है ।[1]

(७) भूख की दवा भोजन और ठड की दवा वस्त्र है ।[2]

(८) खाना, पीना, सोना, लघुशका, दीर्घशका ये असाध्य रोग हैं ।[3]

(९) जीभ की लोलुपता वश अनेको व्यक्तियो का बिगाड होता है । अत जीभ की लोलुपता त्यागने पर ही सुख होता है । मछली, कबूतर, मगर, वन्दर ये जिव्हा के लोलुपी हैं अतः उन्हे हर कोई पकड लेता है । इनके प्राण सकटापन्न रहते हैं ।[4]

(१०) सत्य कहने से दोष मिट जाते हैं, परन्तु अन्यथा (असत्य) कहने से दोष नही मिटते । अपने रोग की यथावत् जानकारी देने वाले व्यक्ति की ही योग्य चिकित्सा सम्भव है ।[5]

(११) यदि किसी अनुचित कार्य को रोकने मे हमारा वश नही चलता हो तो उसका समर्थन न करते हुए अबोल रहना ही ठीक है, क्योकि बोलने से उपद्रव बढता है, जैसे तूफानी समुद्र मे हवा लगने से उपद्रव और बढता है ।[6]

बीच-बीच मे लोक प्रचलित एव रचनाओ मे समागत लोकोक्तियो का यथास्थान प्रयोग किया गया है । इनसे विषय की स्पष्टता के साथ-साथ शैली मे भी गतिशीलता आई है । कुछ इस प्रकार है —

---

१. अमृत ऊनोदर असन, विषसम खान अधाम ।
रहै पुष्ट तन बल करै, यातै रोग बढ़ाय ।।३२४।।

२ भूख रोग मेटन असन, वसन हरनकों सीत ।।३२५।।

३ खानां पीनां सोवना, फुनि लघु दीरघ व्याधि ।।३७६।।
रावरक के एकसी, ऐसी क्रिया असाधि ।।

४. जे बिगरेते स्वादतें, तजै स्वाद सुख होय ।
मीन परेवा मकर हरि, पकरिलेत हर कोय ।।३२२।।

५ सांच कहै दूषन मिटै, नातर दोष न जाय ।
ज्यो की त्यो रोगी कहै, ताको बनै उपाय ।।३३२।।

६. अनुचित हो है वसिविना, तामै रहो अबोल ।
बोले तैं ज्यों बारिलगि, सायर उठै कलोल ।।४१३।।

बुधजन सतसई, पद्य सख्या ३२४,३२५,३७३,३२२, तथा ४१३

बुधजन, सतसई, पद्य सख्या ११,१४,१५,३७,५४,६४,१२२,१२३,८४,११४,११५ तथा १६५ ।

(१) पीजै तृषा समान[2] ।
(२) हरषत है मनमोर[3] ।
(३) रतन चिंतामणिपायके गहै काच को हाथ[4] ।
(४) तारो गहकरि हाथ[5] ।
(५) जैसा वनिनिरखेतिसा सीसामे दरसाय[6] ।
(६) महाराज की सेव तजि सेवैं कौन कगाल[7] ।
(७) अछूती आस विचारिकैं छतीदैंत छिटकाय[8] ।
(८) सरधा तैं ससय सब जाय[9] ।
(९) सीख दई सरधै नही, करै रैन दिन सोर[10] ।
(१०) पूत नही वह भूत है, महापापफल घोर ।।
(११) कर्म ठिगारे ठिगत हैं[11] ।
(१२) अवसरतें बोलो इसो ज्यो आटे मे नौन[12] ।
(१३) मालनिढाके टोकरा, छूटे लखिके छैल[13] ।
(१४) अधिक सरलता सुखद नहिं, देखो विपिन निहार[14] ।
सीधे विरवा काटि गये, वाके खडे हजार[15] ।।

जैन शास्त्रो का एक वर्गीकरण चार अनुपयोगो के रूप मे भी कवि द्वारा किया गया है[1] —

(१) प्रथमानुयोग
(२) करणानुयोग
(३) चरणानुयोग
(४) द्रव्यानुयोग

अनुयोगो की कथन-शैली आदि का सामान्य वर्णन तो पूर्वाचार्यों के ग्रन्थो मे मिलता है पर वह अति सक्षेप मे है। कविवर बुधजन ने चारो अनुयोगो का सुन्दर एव सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

अब हम प्रत्येक अनुयोग के सम्बन्ध मे सक्षिप्त रूप मे अनुशीलन प्रस्तुत करेंगे।

प्रथमानुयोग

जिन ग्रन्थो मे चारो पुरुषार्थों, किसी एक महापुरुष के चरित्र और त्रेसठ शलाका पुरुषार्थों के चरित्र का वर्णन होता है उन कथा, चरित्र, और पुराण कहे जाने वाले ग्रथो को प्रथमानुयोग कहते हैं।

प्रथमानुयोग के अध्ययन से श्रद्धा की वृद्धि होती है। प्रथमानुयोग के

---

१ आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्डश्रावकाचार, अध्याय-२, श्लोक ४२-४६ सरल जैन ग्रन्थ भडार, जबलपुर।

अध्ययन से पुण्यमय परिणाम होते हैं। प्रथमानुयोग के अध्ययन से एक गरीव ब्राह्मण को वैराग्य हो गया। प्रथमानुयोग के अध्ययन के पश्चात् अन्य अनुयोगो के अध्ययन से आत्मा का कल्याण हो जाता है। प्रथमानुयोग के अध्ययन से महापुरुषो के जीवन मे कैसे उत्थान पतन होता है। ससार की दशा क्या है इस वात को स्पष्ट करते हुए बुधजन कहते हैं—ससार के सव नाते कच्चे धागे के समान हैं। सच्चा साथी एक मात्र धर्माचरण ही है।[1]

सामान्य श्रेणी मे अव्युत्पन्न व्यक्ति अथवा मिथ्यादृष्टि के लिये प्रथमानुयोग का अभ्यास आरम्भ से आवश्यक है। प्रथमानुयोग की शब्दश व्युत्पत्ति गोम्मटसार जीवकाड मे इस प्रकार प्राप्त होती है —

प्रथम अर्थात् मिथ्यादृष्टि, अव्रती अथवा अव्युत्पन्न विशेष ज्ञान रहित व्यक्ति का आश्रय लेकर प्रवृत्त हुआ जो अनुयोग अर्थात् अधिकार है वह प्रथमानुयोग है[2]। उसके अभ्यास से दुर्वल अन्त करण को अपार वल एव प्रेरणा प्राप्त होती है। राष्ट्र के जीवन-निर्माण मे उसके सत्पुरुषो का इतिहास जिस प्रकार उत्साह को जगाता हुआ नव चेतना प्रदान करता है, उसी प्रकार तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव, आदि महापुरुषों की जीवन गाथा मे अभ्यास से शीघ्र ही मन की मलिनता दूर होती है। हृदय का सताप दूर होता है। भावो मे सक्लेप वृत्ति के स्थान मे विशुद्ध परिणति का आविर्भाव होता है। उससे यह तत्व प्रकाश मे आता है कि महान् पतित परिणाम तथा अवस्था वाला जीव किस प्रकार धर्म की शरण ग्रहण कर क्रमश उन्नति करता हुआ श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त करता है। प्रथमानुयोग मे प्राप्त एक दृष्टान्त इस प्रकार है —

सुभग नाम के ग्वाले ने भयकर शीतऋतु में देखा कि एक मुनि रात्रि भर जगल मे ध्यान करते रहे। उनकी यह तपस्या देखकर उसका मन वारवार उनका स्मरण करता रहा। प्रात काल सूर्योदय के होने पर 'णमो अरहताणम्' शब्द का उच्चारण कर वे मुनिराज चारण ऋद्धि के प्रताप से आकाश मे गमन करते हुए अन्यत्र चले गये। उन मुनिराज के जीवन से गोपालक को वडी प्रेरणा मिली। उसने सदा 'णमो अरहताणम्' शब्द का उच्चारण करना–स्मरण करना अपना कर्त्तव्य वना लिया। मृत्यु के पश्चात् वह सुदर्शन सेठ हुआ और रत्नत्रय की आराधना के फलस्वरूप वह मोक्ष पदवी का स्वामी वन गया। प्रथमानुयोग मे भगवान महावीर के पूर्व भवों का वर्णन अत्यन्त रोचक ढग से कथा के रूप में वर्णित है जो प्राणी मात्र को प्रेरणादायक है।

---

१ बुधजन: बुधजन विलास, पद सख्या ४४, पृष्ठ सख्या २३, प्रका० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, १६१।१ हरीसन रोड़, कलकत्ता।

जनसाधारण की हितकारी सामग्री प्रथमानुयोग मे प्राप्त होती है। इसमे जीवन को विशुद्धता प्रदान करने वाली विपुल सामग्री प्राप्त होती है। इससे बालक, स्त्री, ग्रामीण, जन साधारण का अकथनीय कल्याण होता है। सकट के समय धैर्य धारण, धर्म पालन मे तत्पर आत्माओ का वर्णन पढकर दु खी हृदय को सान्त्वना प्राप्त होती है। उस विपत्ति की दिशा मे सत्पुरुषो की जीवनवार्ता चन्द्रिका के समान प्रकाश तथा शान्ति प्रदान करती है। महापुराण मे लिखा है कि नरकायु का वध होने पर व्यथित मन वाले श्रेणिक महाराज ने गौतम स्वामी से पुण्य कथा निरूपणार्थ प्रार्थना की थी उसने कहा था—

'भगवान! कृपा कर प्रारम्भ से,शलाका पुरुषो की जीवन कथा कहिये। मेरे दुष्ट कार्यों का निवारण पुण्यकथा–श्रवण द्वारा सम्पन्न होगा।[1]

विपत्ति की वेला मे तत्वज्ञान का शुष्क उपदेश मन पर उतना असर नही करता है जितना उन महापुरुषो का आख्यान, जिनने हसते-हसते विपत्ति के सागर को तिरा है। तत्वज्ञानी उपदेश देता है कि शरीर और आत्मा पृथक्-पृथक् हैं परन्तु उसका कथन शीघ्र समझ मे नही आता। परन्तु जब हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि आत्म ध्यान मे निमग्न साधुराज सुकुमाल स्वामी के शरीर का भक्षण स्यालिनी ने किया परन्तु साधुराज सुकुमाल ध्यानस्थ रहे उनके इस चरित्र द्वारा उपरोक्त कथन कितना स्पष्ट होता है। इसीलिये स्वामी समन्तभद्र ने प्रथमानुयोग को बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति का कारण कहा है तथा उसे समाधि का भडार बताया है।[2]

अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा के अनुसार कविवर बुधजन ने भी चारो अनुयोगो को आगम कहा है और आगम प्रमाण माना है। प्रथमानुयोग का ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है क्योकि वह आगम है।

इन पुराणो (प्रथमानुयोग के ग्रन्थों) के पढने से तत्काल महान् पुण्य का सचय होता है और अशुभ कर्मों की निर्जरा हो जाती है। चू कि ये भी जिनवचन

---

१ तत्प्रसीद विभो वक्तुमामूलात्पावना कथाम्।
निष्क्रियो दुष्कृतस्यास्तु ममपुण्य कथा श्रुति ॥

आचार्य जिनसेन· महापुराण, पर्व–२, श्लोक–२५, प्रथम भाग, १९४४, प्रथम सस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

२ प्रथमानुयोगमथाख्यान चरित पुराणमति पुण्यम्।
बोधि समाधि निधान बोधति बोध. समीचीन· ॥
आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्ड श्रावकाचार, द्वितीय परिच्छेद, श्लोक सख्या ४३ सरल जैन ग्रन्थ भडार, जबलपुर।

है, बारहवें अग के पाच भेदो (परिकर्म, सूत्रो, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका) मे से यह प्रथमानुयोग तृतीय भेद रूप है, इसलिये द्वादशाग के अन्तर्गत ही है ।[1]

करणानुयोग

जो श्रुतज्ञान लोक-अलोक के विभाग को, युग के परिवर्तन को और चारो गतियो के परिवर्तन को दर्पण के समान जानता है उसे करणानुयोग कहते हैं ।[2]

प टोडरमल लिखते हैं—जिसमे गुणस्थान मार्गणास्थान आदि रूप जीव का तथा कर्मों का और तीन लोक सम्बन्धी भूगोल का वर्णन होता है उसे करणानुयोग कहते हैं ।[3] करण शब्द के दो अर्थ हैं परिणाम और गणित के सूत्र अत खगोल और भूगोल का वर्णन करने वाला तथा जीव और कर्म के सम्बन्ध आदि के निरूपक कर्म सिद्धान्त विषयक ग्रथ करणानुयोग मे लिये जाते हैं ।

इसके अन्तर्गत द्वीप, समुद्र, पर्वत, नदिया, क्षेत्र एव नगरादि के साथ सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि का भी वर्णन आता है । यह ऐसा लोक साहित्य है, जिसमे आधुनिक ज्योतिष, निमित्त, ग्रह-गणित और भूगोल का समावेश हो जाता है । इसमे अधोलोक, मध्यलोक, उर्ध्वलोक इन तीन लोको का वर्णन रहता है । अधोलोक मे ७ नरको तथा उनके ४६ पटलो का वर्णन रहता है । मध्यलोक मे जबूद्वीप तथा लवण-समुद्र आदि असख्यात द्वीप समुद्रो का वर्णन रहता है । ऊर्ध्वलोक में कल्प और कल्पातीत विमानो को बतलाकर सोलह स्वर्गों मे विमानो की सख्या इन्द्रक विमानो का प्रमाणादि, श्रेणिवद्ध विमानो का अवस्थान, दक्षिणेन्द्रो और उत्तरेन्द्रो का निवास, सामानिक आदि देवो की सख्या कल्पो मे स्त्रियो के उत्पत्ति स्थान, प्रवीचार, विक्रिया अवधिज्ञान का विषय, जन्म मरण का अन्तरकाल, इन्द्रादिका उत्कृष्ट विरहकाल, आयु, लोकान्तिक देवो का स्वरूप, देवागनाओ की आयु, उच्छ्वासव आहार ग्रहण का काल, गति अगति आदि का कथन है ।

सस्थान विचय धर्मध्यान करणानुयोग के ग्रन्थो के अध्ययन से ही किया जाता है । कर्म प्रकृतियो के उदय आदि के समय विपाक विचय धर्मध्यान होता है अत यह स्पष्ट है कि यह करणानुयोग सम्यकत्व व सयम का कारण है ।

---

१ लोकालोक विभवतेर्युग परिवृतेश्चतुर्गतीना ।
आदर्शमिव तथा मतिरवैति करणानुयोग च ।
आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरड श्रावकाचार, पद्य स० ४४ पृ० स० ३३ सरल जैन ग्रन्थ भडार जबलपुर ।

२ आर्यिका ज्ञानमती. प्रवचननिर्देशिका, पृ० स० १४३–४४ प्रका० दि० जैन त्रिलोक शोध सस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) १९७७ ।

३ प टोडरमल मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० स० ३९३, किशनगढ

चरणानुयोग

जो सम्यग्ज्ञान श्रावक और अनगार (मुनि) के चारित्र की उत्पत्ति वृद्धि और रक्षा का साधन है ऐसे शास्त्रो को आचार्य चरणानुयोग आगम कहते है ।[1]

गृहस्थ और मुनियो के आचरण नियमो का वर्णन चरणानुयोग के शास्त्रो मे होता है ।[2]

द्वादशाग मे भी आचाराग नामक अग सबसे प्रथम अ ग है जिसमे मुनियो के चारित्र का सागोपाग वर्णन है । भगवान के समवशरण मे भी बारह सभाओ मे से भगवान के सन्मुख पहली सभा मे मुनिगण ही विराजते हैं चू कि भगवान के उपदेश को साक्षात् ग्रहण करके मोक्ष की सिद्धि करने वाले मुनि ही है । चारित्र सभी के द्वारा और सदा पूज्य है । अत चरणानुयोग से चारित्र का लक्षण जानकर उसे धारण करना चाहिये ।

द्रव्यानुयोग

जो शास्त्र, जीव-अजीव तत्वो को, पुण्य-पाप को, बध-मोक्ष को भाव श्रुत के अनुसार जानता है उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं ।[3]

करणानुयोग विषयक साहित्य की तरह द्रव्यानुयोग विषयक जैन साहित्य भी बहुत महत्वपूर्ण है । भगवान महावीर उक्त तत्वो के प्रधान ज्ञाता एव प्रवक्ता थे । द्रव्यानुयोग विषयक साहित्य का मूलश्रोत श्रुत का दृष्टिवाद अ ग है । भगवान महावीर के पश्चात् आचार्य कुन्द कुन्द नेद्रव्यानुयोग सम्बन्धी साहित्य की रचना की । द्रव्यानुयोग के विषय को स्पष्ट रूप से समझाने के लिये सबल युक्तियो का प्रयोग आचार्य कुन्द कुन्द ने किया है । क्योकि वे इस अनुयोग के विषयभूत पदार्थों का सच्चा श्रद्धान कराना चाहते थे । उन्होने जीवादि छह द्रव्य व सात तत्वो की व्याख्या इतने सुन्दर ढग से की है कि मध्यस्थ भाव धारण करने वाला व्यक्ति इसके अध्ययन से वीतरागता की प्रेरणा प्राप्त कर लेता है । वीतरागता की प्राप्ति करना ही उनका प्रयोजन था । भगवान महावीर एव गौतम गणधर के पश्चात् कु दकु दाचार्य का स्मरण इस बात का प्रमाण है कि वे जैन सिद्धान्तो के प्रभावक प्रवक्ता एव ज्ञाता रहे हैं ।[4]

इस द्रव्यानुयोग विषयक साहित्य को दो भागो मे विभक्त किया गया है—

१　गृहमेध्यनगाराणा, चारित्रोत्पत्ति वृद्धिरक्षागम् ।
　चरणानुयोग समय, सम्यग्ज्ञान विजानाति ।।
आचार्य समन्तभद्रः रत्नकरड श्रावकाचार, श्लोक स० ४५, पृ स. ३३

२　प टोडरमल　मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ० स ० ३६३, किशनगढ़ ।

३　जीवाजीवसुतत्वे, पुण्यापुण्ये च बध मोक्षौ च ।
　द्रव्यानुयोग दीप श्रुतविद्या लोकमातनुते ।।
आचार्य समन्तभद्रः रत्नकरड श्रावकाचार, श्लोक सख्या ४६, पृ० स ० ३४

४　मगल भगवान् वीरो, मगल गौतमो गणी ।।
　मंगल कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मगलम् ।। मगलाचरण ।

विषयक शास्त्रो के प्रणेता एव प्रवक्ता हैं। इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ हैं— समयसार, अष्ट पाहुड, इष्टोपदेश, परमात्म प्रकाश आदि जिनमे तत्वो का निर्णय विविध युक्तियो व प्रवल प्रमाणो द्वारा किया जाता है, वह तत्व ज्ञान विषयक शास्त्र हैं। पचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, तत्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि तत्वार्थवार्तिक, द्रव्यसग्रह, तत्वार्थसार, वृहद्रव्यसग्रह आदि ग्रन्थ तत्वज्ञान का प्रतिपादन करते हैं अत इन्हें तत्वज्ञान विषयक शास्त्र कहा जाता है। दोनो ही प्रकार के द्रव्यानुयोग विषयक साहित्य का मुख्य प्रयोजन स्व-पर का भेद विज्ञान कराना है।

चारो ही अनुयोग वीतराग भावो की वृद्धि करने वाले हैं। अत कोई एक अनुयोग विशेष अच्छा है ऐसा कहना ठीक नही।

अनुयोगो का अध्ययन क्रम

अनुयोगो के अध्ययन क्रम का कोई निश्चित नियम निर्धारित करना सभव नहीं, क्योकि पात्र की योग्यता और रुचि भिन्न भिन्न प्रकार की होती है तथापि कतिपय ग्रन्थो मे अनुयोगो के अध्ययन क्रम का वर्णन मिलता है। पूजन के वाद जो शाति पाठ जैन मदिरो मे पढने की परपरा है उसमे क्रम इस प्रकार है। प्रथम करण चरण द्रव्य नम प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार है।

सपूर्ण श्रुतज्ञान या द्वादशाग वाणी को ११ अ ग व चौदह पूर्व मे गू था गया है। उनमे सर्वप्रथम आचाराग का उल्लेख है क्योकि आचारशास्त्र आबाल वृद्ध सभी के जीवन को सुखी वनाने वाले नियमो का निर्धारण कर वैयक्तिक और सामाजिक एव राष्ट्रीय जीवन को व्यवस्थित वनाता है। अशुभ परिणामो या अशुभ कार्यों से निवृत्त होना और शुभ परिणामो मे या सत कार्यों मे प्रवृत्त होना ही आचारशास्त्र का विधान है। आचारशास्त्र जीव को सचेत करता है तथा विषय-सुखो मे रत होने वाले जीव को विषय सुख से विरक्त करता है। विषय सुख को हेय वताकर उससे ग्लानि उत्पन्न कराता है। विपय सम्वन्धी मोह और तृष्णा को दूर करता है। मोह और तृष्णा के दूर होने से विषय विष के समान मालूम होने लगते हैं। सासारिक दुखो का मूल-कारण विषय वासना है। उसका परित्याग आचाराग वताता है। आचाराग यह भी वताता है कि हे जीव! यदि तुझे अलौकिक आत्म-रस का पान करना है तो विषय-वासनाओ का परित्याग कर आत्म सुख का विकास करो और मनुष्य पर्याय को सफल करो। जो आनन्द ज्ञान की चर्चा मे है उससे अनन्त गुणा इस चारित्र मे है। तेंतीस सागर तक ज्ञान चर्चा का अनुभव करके जो आनन्द प्राप्त नही हुआ उससे अनन्तगुणा आनन्द मुनिपद धारण करने मे हुआ। इसलिये मानव-मात्र का कर्त्तव्य है कि वह अपनी अग्नि की शिखा के समान प्रज्वलित विषय-वासनाओ का त्याग करने के लिये प्रथम आचाराग का आश्रय ले। अध्यात्म विषयक और तत्वज्ञान विषयक। अभेद रत्नत्रय का जिसमे वर्णन हो वह अध्यात्म शास्त्र है। कु दकु द, अमृतचन्द्रसूरि, जयसेन आदि आचाय अध्यात्म
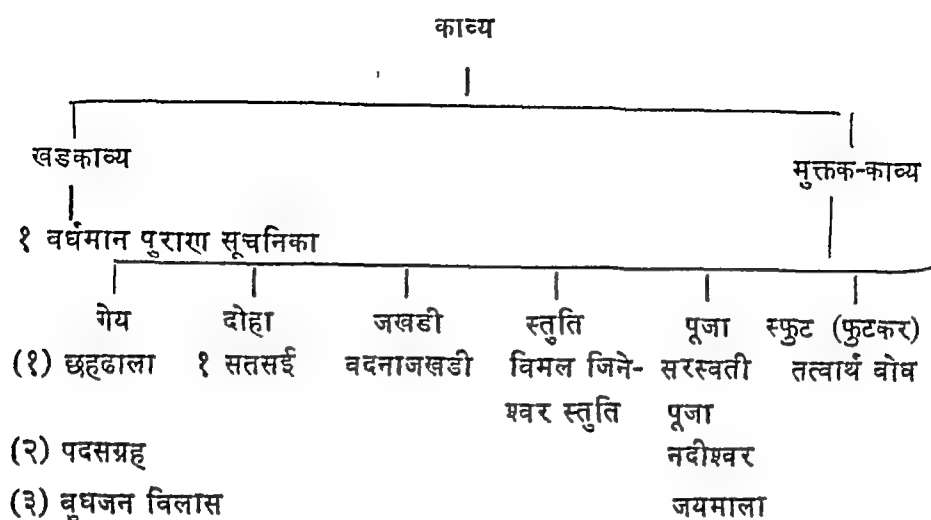
बुधजन विलास के विषय

बुधजन : विलास

गेयपद

१ विनती (२) ढाल मगलकी
३ ढाल त्रिभुवन गुरु स्वामी की
४ विमल जिनेश्वर विनती
५ अरे मूढ तू क्यो भरमाना (विनती)
६ ऐसी है वाणी जिनवर की (विनती)
७ लगन मोहिलागी देखन की (विनती)
८ थें तत्व विचारो जी (विनती)
९ तुम जगत पिछान्याजी (विनती)
१० अरहत देव की स्तुति
११ समकित भावना
१२ पूजाष्टक
१३ गुरु विनती
१४ जिनोपकार स्मरण स्तोत्र भाषा
१५ शुद्धात्म जखडी

छन्दोवद्ध मुक्तक

१ विचार पच्चीसी
२ विबुध-छत्तीसी
३ उपदेश छत्तीसी
४ बोध-द्वादसी
५ दर्शन-पच्चीसी
६ दोष बावनी
७ वचन बत्तीसी
८ ज्ञान पच्चीसी
९ वैराग्य भावना
१० चौबीस ठाणा
११ इष्ट छत्तीसी
१२ द्वादशानुप्रेक्षा
१३ श्रावकाचार बत्तीसी

१६ शारदाष्टक

१७ नदीश्वर जय माला

१८ जिनवाणी जय माला

१९ दर्शनाष्टक

कविवर बुधजन ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'तत्वार्थ बोध' मे विभिन्न विषयो पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उन्होने चित्त की एकाग्रता के लिये ध्यान को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उनके द्वारा प्रतिपादित ध्यान के प्रकार निम्न चार्ट द्वारा समझे जा सकते हैं।

ध्यान

आर्त ध्यान	रौद्र ध्यान	धर्म ध्यान	शुक्ल ध्यान
१ इष्ट वियोग	१ हिंसानद	१ आज्ञाविचय	१ पृथक्त्व वितर्क
२ अनिष्ट सयोग	२ मृषानन्द	२ उपायविचय	२ एकत्व वितर्क
३ पीडा चिंतन	३ स्तेयानद	३ विपाकविचय	३ सूक्ष्मक्रिया प्रति पाती
४ निदानबध	४ परिग्रहानद	४ सस्थानविचय	४ व्युपरत क्रिया निवर्ती

ध्यान की परिभाषा कविवर बुधजन के शब्दो मे :—

चित्त को एकाग्र करना अर्थात् आत्म गुणो की ओर लगाना तथा अन्य ससार सम्बन्धी सपूर्ण विकल्पो को हटाना या उनसे दूर रहना, उन्हें चित्त मे न आने देना इसी का नाम ध्यान है। वह ध्यान चार प्रकार का है।' आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमे से प्रथम दो प्रकार का ध्यान (आर्त और रौद्र ध्यान) अशुभ ध्यान हैं। दूसरे दो ध्यान

---

१. चित्त एकाग्ररोकना, विकल्प आन निवार।
ध्यान कहत है तासका, भेद चार परकार ॥१२॥
आरत रुद्र कुध्यान दो, अशुभ कुगति दातार।
धर्म शुक्ल शुभ ध्यान जो सुरशिव सुख दातार ॥१३॥

क—विबुधजनः तत्वार्थबोध पृ० २५८ ध्यानरचना प्ररूपण, श्लो० १२–१३, पृ०स० २५८

(धर्म और शुक्ल) ये शुभ ध्यान है। ये दोनो ध्यान स्वर्ग व मोक्ष के साधक हैं। इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि प्रारभ के दो ध्यान नरक व तिर्यंच गति के साधक हैं।

लोक की व्यवस्था के सम्बन्ध मे कवि के विचार—

लोक

जो समस्त द्रव्यो को अपने मे अवकाश देता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। आकाश द्रव्य के दो भेद है। १ लोकाकाश, २ अलोकाकाश। आकाश द्रव्य के जितने भाग मे धर्मादिक द्रव्य निवास पाते हैं उतने भाग को लोकाकाश और जहा अन्य कोई द्रव्य नही केवल आकाश ही आकाश है, उसे अलोकाकाश कहते है। यह सपूर्ण लोक घनोदधि वातवलय घनवातवलय और तनुवातवलय से वेष्टित है। तनुवातवलय आकाश के आश्रय है और आकाश अपने ही आश्रय है। उसको दूसरे आश्रय की आवश्यकता नही है क्योकि आकाश सर्वव्यापी है। घनोदधि वातवलय का वर्ण मूग के समान, घनवातवलय का वर्णन गोमूत्र के समान और तनुवातवलय का वर्ण अव्यक्त है।[1] इस लोक के बिलकुल बीच मे एक राजू चौडी, एक राजू लम्बी और चौदह राजू ऊची त्रस नाडी है। इसका व्यास एक राजू है। त्रस जीवो की उत्पत्ति त्रस नाडी मे होती है। त्रस नाडी के बाहर नही। यह क्षेत्र का प्रमाण स्वत है किसी के द्वारा किया हुआ नही है। इस स्वत के प्रमाण मे कमी-बेशी नही होती।[2]

इस लोक के तीन भाग हैं, १ अधोलोक २ मध्यलोक ३. उर्ध्वलोक। मूल से सात राजू की ऊचाई तक अधोलोक है। सुमेरू पर्वत की ऊचाई (एक लाख चालीस योजन) के समान मध्य लोक है और सुमेरू पर्वत के ऊपर अर्थात् एक लाख चालीस योजन कम सात राजू प्रमाण ऊर्ध्वलोक है।

अधोलोक

नीचे से लगाकर मेरू की जड पर्यन्त सात राजू ऊचा अधोलोक है। जिस पृथ्वी पर अस्मदादिक निवास करते हैं उस पृथ्वी का नाम चित्रा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक हजार योजन है और यह पृथ्वी मध्यलोक मे गिनी जाती है।

सुमेरू पर्वत की जड एक हजार योजन चित्रा पृथ्वी के भीतर है तथा निन्यानवे हजार योजन चित्रा पृथ्वी के भीतर है तथा निन्यानवे हजार योजन चित्रा पृथ्वी के ऊपर है और चालीस योजन की चूलिका है। सब मिलाकर एक लाख चालीस योजन ऊचा मध्यलोक है। मेरू की जड के नीचे से अधोलोक का प्रारभ है।

---

१. बुधजन : तत्वार्थ बोध, पद्य स० २५, पृ० ४३
२ बुधजन : तत्वार्थ बोध पद्य स० २६–३०, पृ० ४४

सबसे पहने मेरू पर्वत की आधारभूत रत्नप्रभा पृथ्वी है। इस पृथ्वी का पूर्व पश्चिम और उत्तर-दक्षिण दिशा मे लोक के अन्त पर्यन्त विस्तार है। इस ही प्रकार शेष छह पृथ्वियो का भी पूर्व, पश्चिम और उत्तर दक्षिण दिशाओ मे लोक के अन्त पर्यन्त विस्तार है। मोटाई का प्रमाण सबका भिन्न-भिन्न है ।

पाप के उदय से यह जीव नरक गति मे उपजता है, जहा कि नाना प्रकार के भयानक तीव्र दुखो को भोगता है । पहली बार पृथ्वी तथा पाचवी के तृतीयाश नरको मे उष्णता की तीव्र वेदना है तथा नीचे के नरको मे शीत की तीव्र वेदना है । अन्य स्वकृत-परकृत नाना प्रकार के दुख हैं जिनका वर्णन असभव है। इसलिए जो महाशय इन नरको के घोर दु खो से भयभीत हुए हो, वे जुआ, चोरी, मद्य, मास, वेश्या, पर स्त्री तथा शिकार आदिक महापापो को दूर ही से छोड देवे ।

मध्यलोक

मध्यलोक का वर्णन कविवर बुधजन ने काफी विस्तार के साथ किया है। उन्होने मध्यलोक पचासिका शीर्षक द्वारा ५० पद्यो मे मध्यलोक का वर्णन किया है। प्रारभ करते हुए कवि लिखते हैं— मैं सर्वज्ञ को मस्तक झुकाकर तथा आगम (जिनवाणी) का सार समझकर मध्यलोक पचासिका का वर्णन बहुत सोच विचार कर करता हू ।

भूमि मे जड है तथा निन्यानवे हजार योजन भूमि के ऊपर ऊचाई है और चालीस योजन की चूलिका है। यह सुमेरू पर्वत गोलाकार भूमि पर दश हजार योजन चौडा है तथा ऊपर एक हजार योजन चौडा है। सुमेरू पर्वत के चारो तरफ भूमि पर भद्र शाल वन है। यह भद्रशाल वन पूर्व और पश्चिम दिशा मे बावीस २ हजार योजन और उत्तर दक्षिण दिशा मे ढाई-ढाई सौ योजन चौडा है। पृथ्वी से पाच सौ योजन ऊचा चलकर सुमेरू केचारो तरफ द्वितीय कटनी पर पाच सौ योजन चौडा सोमनस वन है। सौमनस से छत्तीस हजार योजन ऊचा चलकर सुमेरू के चारो तरफ तीसरी कटनी पर चार सौ चोरानवे योजन चौडा पाण्डुक वन है। मेरू की चारो विदिशाओ मे चार गजदन्त पर्वत हैं। दक्षिण और उत्तर भद्रसाल तथा निषध और नील पर्वत के बीच मे देवकुरू और उत्तर कुरू हैं। मेरू की पूर्व दिशा मे पूर्व विदेह और पश्चिम दिशा मे पश्चिम विदेह है। जम्बूदीप से दूनी रचना धात की खड और पुष्करार्थ द्वीप मे है। मनुष्य लोक के भीतर पन्द्रह कर्मभूमि और तीस भोग भूमि हैं।

---

१ सरवग कू सिरनायकै, लखिजिन आगम सार ।
मध्यलोक पचासिका, वरनू विविध विचार ।।
बुधजन. तत्वार्थ बोध, पद्य सख्या ४४, पृ०४५ लश्कर ।

आठवें नदीश्वर द्वीप मे अकृत्रिम जिन मदिर तथा अकृत्रिम जिन प्रतिमाए है। "मानुषोत्तर पर्वत के बाहर जो जिन मदिर है वहा की प्रतिमाओ के दर्शन देवगण ही कर सकते हैं तथा मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर अर्थात् ढाई द्वीप मे जो अकृत्रिम जिन मदिरो मे अकृत्रिम जिन प्रतिमाए हैं उनके दर्शन देव तथा विद्याधर कर सकते हैं। ढाई द्वीप के बाहर भूमि गोचरी जीव नही पहुच सकते, केवल ऋद्धिधारी ही पहुच सकते हैं। यह समस्त रचना अनादि अनिधन है। यहा कभी कोई परिवर्तन नही होता।[1]"

ऊर्ध्वलोक

मेरु से ऊर्ध्वलोक के अन्त तक के क्षेत्र को ऊर्ध्वलोक कहते हैं। इस ऊर्ध्वलोक के दो भेद हैं, एक कल्प और दूसरा कल्पातीत। जहा इन्द्रादिक की ?

अधोलोक के ऊपर एक राजू लम्बा एक राजू चौडा और एक लाख चालीस योजन ऊचा मध्यलोक है। इस मध्यलोक के बिल्कुल बीच मे गोलाकार एक लक्ष योजन व्यास वाला जम्बूद्वीप को खाई की भाति घेरे हुए गोलाकार लवण समुद्र है। इस लवण समुद्र की चौडाई सर्वत्र दो लक्ष योजन है। पुन लवण समुद्र को चारो ओर से घेरे हुए गोलाकार धातकी खड द्वीप है जिसकी चौडाई सर्वत्र चार लक्ष योजन है। धातकी खड को चारो तरफ से घेरे हुए आठ लक्ष योजन चौडा कालोदधि समुद्र है तथा कालोदधि समुद्र को चारो तरफ से घेरे हुए सोलह लक्ष योजन चौडा पुष्कर द्वीप है। इस ही प्रकार से दूने दूने विस्तार को लिए परस्पर एक दूसरे को घेरे हुए असख्यात द्वीप समुद्र हैं। अत मे स्वयभू रमण समुद्र है। चारो कोनो मे पृथ्वी है। पुष्कर द्वीप के बीचो बीच मानुषोत्तर पर्वत है जिससे पुष्कर द्वीप के दो भाग हो गये हैं। जम्बू द्वीप धातकी खड द्वीप पुष्करार्ध द्वीप इस प्रकार ढाई द्वीप मे मनुष्य रहते हैं। ढाई द्वीप से बाहर मनुष्य नही है तथा तिर्यंच समस्त मध्यलोक मे निवास करते हैं। स्थावर जीव समस्त लोक मे भरे हुए हैं। जलचर जीव लवणोदधि, कालोदधि और स्वयभू रमण इन तीन समुद्रो मे ही होते हैं अन्य समुद्रो मे नही।

जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन चौडा गोलाकार है। इस जम्बूद्वीप मे पूर्व और पश्चिम दिशा मे लम्बायमान दोनो तरफ पूर्व और पश्चिम समुद्र को स्पर्श करते हुए हिमवन्, महाहिमवन निषध, नील रुक्मि और शिखरी इस प्रकार छह कुलाचल (पर्वत) हैं। इन कुलाचलो के कारण सात भाग हो गये हैं। दक्षिण दिशा के प्रथम

---

१ मानुषोत्र बाहर जिनधाम, तहाँ देव ही करें प्रणाम ।
ढाईद्वीप भीतर जिनगेह, सुर विद्याधर बदें तेह ।।
बुधजन तत्वार्थ बोध, पद्य सख्या ४५–४६, पृष्ठ सख्या ४६ लश्कर ।

भाग का नाम भरत क्षेत्र, द्वितीय भाग का नाम हेमवत और तृतीय भाग का नाम हरिक्षेत्र मे। इस ही प्रकार उत्तरदिशा के प्रथम भाग का नाम ऐरावत, द्वितीय भाग का नाम हैरण्यवत और तृतीय भाग का नाम रम्यक क्षेत्र है। मध्यभाग का नाम विदेह क्षेत्र है।' भरतक्षेत्र की चौडाई ५२६ ६/१९ योजन है[1]। विदेह क्षेत्र के बीचो बीच सुमेरु पर्वत है। सुमेरु पर्वत की एक हजार योजन कल्पना होती है, उनको कल्प कहते है और जहा यह कल्पना नही है उसे कल्पातीत कहते हैं। कल्प मे १६ स्वर्ग हैं—१ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ महिन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ ब्रह्मोत्तर ७ लावत, ८ कापिष्ठ, ९ शुक्र, १० महाशुक्र, ११ सतार, १२ सहसार, १३ आनत १४ प्राणत, १५ आरण, १६ अच्युन। इन सोलह स्वर्गों मे से दो-दो स्वर्गो मे सयुक्त राज्य है। इस कारण सौधर्म ईशान, सानृत कुमार-माहेन्द्र इत्यादि दो-दो स्वर्गों का एक-एक युगल है। उपरोक्त १६ स्वर्गों मे १२ इन्द्र है। सोलह स्वर्गों के ऊपर कल्पातीत मे तो अधो ग्रैवेयक, तीन मध्यम ग्रैवेयक और तीन उपरिम ग्रैवेयक इस प्रकार नव ग्रैवेयक है। नव ग्रैवेयक के ऊपर नव अनुदिश विमान तथा उनके ऊपर पच अनुत्तर विमान हैं। इस प्रकार इस उर्ध्वलोक मे वैमानिक देवो का निवास है।

मेरू की चूलिका से एक बाल के (केश के) अन्तर पर ऋजु विमान है। यहा से सौधर्म स्वर्ग का आरभ है। मेरू तल से लगाकर डेढ राजू की ऊचाई पर सौधर्म-ईशान युगल का अन्त है। उसके ऊपर डेढ राजू मैं सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल है। उससे ऊपर आधे-आधे राजू मे छह युगल है। इस प्रकार छह राजू मे आठ युगल हैं।

लोक के अन्त मे एक राजू चौडी, सात राजू लम्बी और आठ योजन मोटी ईशत् प्राग्भार नामक आठवी पृथ्वी है। उस आठवी पृथ्वी के बीच मे रूप्यमयी छत्राकार मनुष्यक्षेत्र समान गोल ४५ लक्ष योजन चौडी मध्य मे आठ योजन मोटी (अत तक मोटाई क्रम से घटती हुई है।) सिद्ध शिला है। उस सिद्ध शिला के ऊपर तनुवाद मे मुक्तजीव विराजमान हैं। उस शिवालय धाम (मोक्ष) मे अनन्त सिद्धजीव हैं वे अनत ज्ञान अव्याबाध सुख आदि अनत गुणो से शोभायमानहै कविवर बुधजन उनको सदा प्रणाम करते हैं[1]।

---

१ सिद्ध अनतानतको, तहा शिवालयधाम।
राजे अव्याबाधसुख, तिनको सदा प्रणाम॥

बुधजनः तत्वार्थबोध, पद्य सख्या ४२ पृष्ठ ४६ प्रका० कन्हैयालाल गगवाल, लश्कर

तृतीय अध्याय

(भाषा वैज्ञानिक अध्ययन)

१. भाषा शिल्पसम्बन्धी विश्लेषण

कविवर बुधजन ने जिस भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओ मे किया है, उसके सम्बन्ध मे गभीरता से विचार करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनकी मौलिक तथा अनुदित रचनाओ की भाषा मे--न्युनाधिक अन्तर अवश्य रहा है। अत यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा के दो रूप रहे हैं। कविवर बुधजन ने सस्कृत, प्राकृत भाषाओ मे लिखें ग्रन्थो का देशी भाषा मे रूपान्तरण किया। उन्होने अनेक दार्शनिक एव सैद्धान्तिक ग्रन्थो का हिन्दी मे मूल-स्पर्शी अनुवाद किया। अनुवाद मे मौलिकता की पूर्ण सुरक्षा है। उन्होने देशी भाषा मे दार्शनिक विचारो का प्रतिपादन कर जन-जन तक अध्यात्म धारा प्रवाहित करने का महान कार्य किया।

प्राचीन काल मे मगधी और अर्द्ध मागधी भाषा मे ग्रन्थ लिखे जाते थे। कालान्तर मे जव उस भाषा मे समझना कठिन हो गया, तब सस्कृत मे शास्त्र रचना होने लगी। और जव सस्कृत भाषा व्याकरण के नियमो से अत्यधिक जकड दी गयी, तब उसमे भी समझना कठिन हो गया और तभी देशी भाषाओ मे रचनाए होने लगी। जन-साधारण को समझाने के निमित्त ही ऐसी रचनाओ का प्रणयन हुआ। कहा भी है—इस निकृष्ट समयविर्षे हम सारिख मद बुद्धीन तें भी हीन बुद्धि के धनी धनेजन अवलोकिये हैं। तिनको तिनपदनि का अर्थ ज्ञान होने के अर्थिधर्मानुराग के वशतें देश भाषामय ग्रन्थ करने की हमारे इच्छा भई, ताकारी हम यह ग्रन्थ बनावें हैं। सौ इन विषें भी अर्थ सहित तिन ही पदनि का प्रकाशन ही है। इतना तो विशेष है जैसे प्राकृत, सस्कृत पद लिखिये है, परन्तु अर्थविषें व्यभिचार किछू नाहीं[1]।

जैनाचार्यों एव विद्वानो ने प्राकृत के समान ही सस्कृत, अपभ्र श एव हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओ मे समान रूप से अपने विचारो की अभिव्यजना कर वाङमय की वृद्धि की है। कविवर बुधजन ने भी उक्त पद्धति का अनुसरण कर वाङ्मय की वृद्धि की।

---

१. पं० टोडरमल : मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृ० सख्या-२६, अनन्त कीर्ति ग्रन्थमाला, बबई

उक्त निश्चित डूंढाड़ी (राजस्थानी) भाषा कवि की कृतियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। कविवर की रचनाओं में सामान्यतः यही भाषा प्रयुक्त है। राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थानी है। यह राजपूताना, मध्यभारत के पश्चिमी भाग, मध्यप्रदेश, सिंध तथा पंजाब के निकटवर्ती क्षेत्रों में बोली जाती है। मुख्य रूप से यह मरुभूमि की भाषा है। डा० ग्रियर्सन ने इसे चार भागों में विभक्त किया है —

(१) मारवाड़ी (२) मध्यपूर्वीय समुदाय (जिसकी विशिष्ट बोली जयपुरी है) (३) पश्चिमोत्तरी समुदाय (जिसकी विशिष्ट बोली मेवाती है) और (४) मालवी। इन्हीं चारों को राजस्थानी की चार मुख्य-विभाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है। डॉ० चटर्जी ने राजस्थानी बोलियों को पश्चिमी और पूर्वी इन दो वर्गों में समाहित किया है, किन्तु डॉ० तिवारी इनके चार वर्ग मानते हैं। यथा— (१) पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) (२) पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी, किशनगढ़ी, अजमेरी, हाड़ौती) (३) दक्षिण पूर्वी राजस्थानी (मालवी) (४) दक्षिणी राजस्थानी (भीली-सौराष्ट्री) इनके अन्तर्गत प्रसिद्ध उप बोलियां भी हैं। साहित्यिक दृष्टि से मारवाड़ी भाषा समृद्ध है।

वास्तव में राजस्थानी का उद्गम शौरसेनी अपभ्रंश से खोजा जाता है। इसका एक पर्वतीय रूप मध्य पहाड़ी का स्रोत भी है। दूसरी बात यह है कि हूण, शक, गूजर आदि लोगों के आवागमन और प्रसार ने इन क्षेत्रों को कुछ समानता प्रदान की है। राजस्थानी में अनेक द्वारों से शब्द-प्रवेश हुआ है। यह व्यवस्था केवल राजस्थानी भाषा पर ही लागू नहीं होती, अपितु प्रायः सभी बोलियों और भाषाओं पर लागू होती है। राजस्थान एक प्रदेश है, जहाँ प्राचीन काल में अनेक जातियों का आवागमन होता रहा है। उनके संपर्क से अनेक शब्द राजस्थानी में प्रविष्ट हुए। राजस्थानी का शब्द समूह अधोलिखित स्रोतों से सम्बन्धित है और उसका विभाजन इस प्रकार है।[1]

१ तत्सम शब्द

२ तद्भव शब्द

३ अनार्य भाषाओं के शब्द

४ आधुनिक बोलियों से उधार लिये शब्द

५ देशज शब्द

६ विदेशी-शब्द

विभिन्न स्रोतों में प्राप्त इन शब्दों को राजस्थानी बोली में ध्वनि और रूपतत्व के अनुरूप इस प्रकार पचा लिया है कि वे अब उसी के बन गये हैं। संस्कृत अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी शब्द इस प्रकार राजस्थानी की प्रकृति में ढले

मिलते है कि वे विदेशी प्रतीत ही नही होते । यहा तक कि कई सस्कृत शब्दो मे ध्वन्यात्मक परिवर्तन ही नही हुए, वरन् उनमे अर्थ-परिवर्तन के भी मनोरजक दृष्टान्त मिलते है। इसमे तत्सम शब्द की अपेक्षा तद्भव शब्द अधिक हैं। उन सवका विवरण प्रस्तुत करना सभव नही है। यहा कतिपय विशिष्ट शब्दो को ही लिया जा रहा है, जो इस प्रकार है —

तत्सम शब्द—सुरपति (६) आनदघन (१४) आताप (१४) भानुप्रताप (१८) वचनामृत (२२) दीनानाथ (४२) प्रतिविम्वित (८१) पाषाण (१०८) साम्राज्य (८७) क्षुधा (१२८) अतिथिदान (१७६) सुगुरू (२३५) रिपुघात (२८७) वृथा (३५६) अन्याय (३६०) हितमित (४१०) उज्जवल (४६८) कोविद (५१४) ज्ञानामृत (५४४) अपवर्ग (५८६) तद्भव शब्द—पदार्थ (पदारथ) प०स० ८, तृषा (तस) ११, अर्गला (आगल) ग्राहक (गाहक) लवण (लोण) तत्वार्थ (तत्वारथ) त्रिया (तिया) ७८, ज्वर (जुर) ६१, सर्वस्व (सरवस) ४७०, रत्न (रतन) १५, प्रगट (परगट) माग (मारग) ४६, अल्प (अलप) ३०७, निर्वाह (निरनाह) ६३, दर्शक (दरसक) ५२, इत्यादि ।

देश शब्द—नातरि (२२१) आछी (२२१) वुगला (२२१) हुकमी (२५८) परेवा (३१५) मौत ४०५) इत्यादि ।

विदेशी शब्द—

विदेशी शब्द—मुसलमानो और अग्रेजो के प्रभाव से आये हैं। राजस्थान पर मुसलमानो का शासन नही रहा, पर दिल्ली दरवार से उनका सपर्क रहा है, जिसके फलस्वरूप अनेक अरवी, फारसी के शब्द राजस्थानी मे प्रविष्ट हुए। इन्हें वोलने वाला ग्रामीण व्यक्ति यह अनुभव नही करता कि ये राजस्थानी के शब्द नहीं हैं। ये शब्द हिन्दी, उर्दू के माध्यम से, कुछ जनसपर्क से और कुछ कचहरियो के माध्यम से राजस्थानी भाषा मे घुलमिल गये हैं। यथा—

दर्द (४६१) वकत (५८) मतलव (६२) मगरूर (११४) गाफिल (३८५) जल्दी (५१३) करार (इकरार) (उस्ताद) दरगा (दरगाह) जायदाद, तजुर्वा, दस्तखत, दुरूस्त, परवस, मतलव (६२) इत्यादि ।

अग्रेजी शब्द—टाइम, पेंसिल, फोटू, पेंसन, अफसर, साइस मिडिल, पुलिस मास्टर, मिनिट, अस्पताल, मीटिंग इत्यादि ।

राजस्थानी शब्द—वनरी (५) वरजोरी (५) चडार (३६) अवार (१२) दुखा की खान (६६) खोसिलेय (२३५) कलाविना, पायसी (६३६) इत्यादि

ढूढारी का क्षेत्र विभाजन—

शेखावटी के अतिरिक्त पूरा जयपुर, किशनगढ तथा अलवर का अधिकाश भाग, अजमेर-मेरवाडा का उत्तर पूर्वी भाग ।

कविवर बुधजन ने अपनी रचनाओ मे प्रचलित लोकोक्तियो एव मुहावरो के प्रयोग भी यथा स्थान किये हैं, जो अन्यत्र दृष्टव्य हैं। यथा—

(१) जिसो अन्न खावे, तिसो मन्न हुवे।

(२) कदं घी घणा, कदं मुटठी चणा॥ इत्यादि

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने 'हिन्दी भाषा का इतिहास' मे शौर-सेनी अपभ्र श से राजस्थानी भाषा का विकास माना है। वास्तव मे राजस्थानी भाषा मे 'ड' वर्ण की बहुलता है। बहु वचन के अन्त मे आ जाता है। यथा

तारा (तारो) राता (रातो) वाता (वातो)। को के स्थान पर ने न इ, हम के लिये म्हें, चलसू (चलूगा) जासू (जाऊगा) चलसी (चलेगा) इत्यादि।[1]

भाषाओ के सम्बन्ध मे निम्न लिखित चार्ट से यह स्पष्ट हो जायेगा कि हिन्दी प्रदेश की भाषाए किस प्रकार एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

हिन्दी प्रदेश की भाषाएं (मध्यदेश)
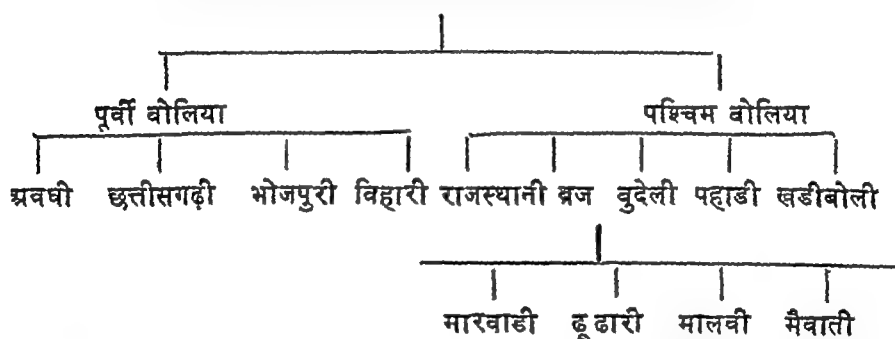
राजस्थानी पद-रचनात्मक सगठन मे भी कुछ समानताए देखी जा सकती हैं कर्त्ता मे न, कर्म मे कू, करण मे से, सप्रदान में ताई, कू, अपादान मे से, ते सम्बन्ध में को, का, की, रो, रा, री, अधिकरण मे मा। पूर्वी राजस्थानी मे तो 'न' (हिन्दी ने) कर्त्ता कर्म तथा सप्रदान तीनो मे पाया जाता है इसमे सहायक क्रिया 'छे' पाई जाती है। भूतकालिक कृदन्त वाले रूप, राजस्थान मे यो (ब०व०या) प्रत्यय वाले पाये जाते हैं। यथा-चल्यो, गयो।

बुधजन की रचनाओ मे ब्रज भाषा व राजस्थानी का सम्मिश्र समावेश देखा जा सकता है। ब्रज भाषा का सक्षिप्त व्याकरण निम्न प्रकार दृष्टव्य है—

---

१ डॉ. जगदीश प्रसाद हिन्दी उद्भव विकास और रूप, पृ० स० ६३, प्रथम सस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

कर्त्ता कारक—नें, मे ।

कर्मकारक—क–व सप्रदान कारक–कु , कू , को, कें, के ।

करण व अपादान—सो, सूं , तें, ते ।

सम्बन्ध कारक—कौ, के (पुल्लिग), स्त्रीलिंग की ।

अधिकरण कारक—मे, मैं, पे, लौ ।

विशेषण प्राय खडी वोली की भाति ही होते हैं, किन्तु पुल्लिग अकारान्त शब्द यहा औकारान्त हो जाते हैं । इनके तिर्यक रूप एक वचन के रूप से अथवा ए और पुल्लिग वहुवचन के रूप ए, ऐ या एँ प्रत्यान्त होते है ।

क्रिया रूप—

वर्तमान—मे, हू । भूत–मे था या हतौ ।

एकवचन		वहुवचन
हौं	–	हैं
है	–	हैं
है	–	हैं
एकवचन (पु०)		एकवचन (स्त्री०)
हो । हौ ।		ही
वहुवचन (पु०)		वहुवचन (स्त्री०)
है । है		ही

सक्षेप मे, कविवर बुधजन ने जिस देश भाषा का अपनी रचनाओ मे प्रयोग किया है, वह ढूढारी (जयपुरी) भाषा कही जाती है । यही उस प्रदेश की तत्कालीन लोक प्रचलित भाषा थी । इसमे व्याकरण के विशेष वन्धन नही थे । अत जो लोग व्याकरणादि से अपरिचित थे, वे भी भली भाति समझ सकते थे । कवि के साहित्य मे तत्सम, और देशी भाषा के शब्द मिलते हैं । इतना ही नही, अन्य भाषाओ के देशी-विदेशी लोक-परपरा के माध्यम से आवगत शब्द भी कविवर वुधजन की रचनाओ मे भली-भाति परिलक्षित होते हैं ।

जहा तक भाषा-शिल्प का प्रश्न है, कवि ने विभिन्न-धाराओ से समागत वोलचाल की शब्द सम्पत्ति से भरपूर सहज, स्वाभाविक-पदग्रामो की रचनाकर भाषा को एक विशिष्ट कलेवर प्रदान किया है ।

(२) ध्वनि ग्रामीय प्रक्रिया—

ध्वनि भाषा का मूल रूप है । हम जो भी उच्चारण करते है, वह सब

ध्वनिमय है। इसलिये भाषा की रचना वर्णों मे नही ध्वनियो से होती है। मानव के लिये ध्वनि की शक्ति अपरिमित है। मत्र, तत्र, यत्र, सगीत, साहित्य तथा विज्ञान मे ध्वनि की विशिष्ट शक्तियो का उल्लेख निहित है। सपूर्ण वायुमडल मे ध्वनि अव्यक्त रूप मे व्याप्त रहती है। अत सामान्यत ध्वनि शरीर व्यापार की वह क्रिया है जिसे स्वासोच्छास लेने की क्रिया कहा जाता है। ससार की लगभग सभी भाषाओ मे फेफडे से नि सृत होने वाली वायुध्वनि का निर्माण करती है।

ध्वनि की कोई निश्चित परिभाषा नही की जा सकती क्योकि ध्वनि विभिन्न प्रकरणो के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ की वाचक होती है। घटा या किसी वाद्य के ध्वनित होने के पूर्व उस पर ठोका या आघात किया जाना आवश्यक है। जिस स्थान से ध्वनि उत्पन्न होती है, यदि उसका स्पर्श किया जाए तो हम उसकी गति का अनुभव कर सकते है जिसे कपन कहते है। अत कपनशील गति का नाम ही ध्वनि है। ध्वनिया कई प्रकार की हो सकती हैं, किन्तु हमारा यहा अभिप्राय भाषण-ध्वनि (Speach sound or plan) से है। यथार्थ मे भाषण मे परिलक्षित होने वाली कई ध्वनिया भाषा मे नही मिलती। अत ध्वनिया वे कपन हैं जो क्षिप्रता, तीव्रता तथा समय परिमाण से कर्णेन्द्रिय से टकराकर अपने गुणो के साथ श्रोत्र-ग्राह्य होते हैं। भाषण ध्वनि एक ध्वन्यात्मक इकाई है, किन्तु ध्वनिग्राम एक परिवार है जिसे वाग्ध्वनि भी कहा गया है।

पहले कहा जा चुका है कि भाषण-ध्वनि एक ध्वन्यात्मक इकाई है। इसमे किसी प्रकार का परिवर्तन सभव नही है। वैयाकरणो के मत मे ध्वनि स्फोट मूलक है। 'स्फोट' शब्द है, क्योकि उससे अर्थ स्फुटित होता है और ध्वनि शब्द का गुण है। दोनो मे व्यग्य-व्यजक सम्बन्ध है। ध्वनि व्यजक है और शब्द व्यग्य।

'ध्वनिग्राम किसी भाषा की वह अर्थ भेदक ध्वन्यात्मक इकाई है जो भौतिक यथार्थ न होकर मानसिक यथार्थ होती है तथा जिसकी एकाधिक ऐसी सध्वनिया होती है, जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से मिलती-जुलती अर्थ भेदकता मे असमर्थ तथा आपस मे या तो परि पूरक या मुक्त वितरण मे होती है। भाषा विशेष के ध्वनिग्रामो मे उस भाषा मे अर्थ-भेद करने की क्षमता होती है। उदाहरण के लिये हिन्दी मे काना और 'गाना' मे अर्थ का अन्तर 'क' और 'ग' के कारण है अर्थात् 'क' 'ग' हिन्दी मे अर्थ-भेदक हैं। ये ध्वनिग्राम है।[1]

जब तक ध्वनियो के विषय का सूक्ष्म-विवेचन नही किया जाता तब तक ध्वनि शब्द को तत्सम्बन्धी ध्वनि ग्राम कहते हैं, जैसे का, की, कू मे मूल ध्वनि क है। वैज्ञानिक दृष्टि से इस 'क' को ध्वनिग्राम कहते हैं। ध्वनिग्राम दो प्रकार के होते हैं —खड्यध्वनि ग्राम तथा खड्येतर ध्वनिग्राम।। प्रथम का उच्चारण स्वतत्र रूप से हो सकता है। इसमे किसी भाषा के स्वर-ध्वनिग्राम तथा व्यंजन ध्वनिग्राम

आते हैं । खड्येतर-ध्वनिग्राम जिनका उच्चारण स्वतत्र रूप से न हो सके, जो अपने उच्चारण के लिये खड्यध्वनि ग्राम पर ही आधारित हो । दीर्घता, अनुनासिकता, बलाघात, सुर, लहर, सगम या निवृत्ति खड्येतर ध्वनिग्राम के अन्तर्गत आते हैं ।

हिन्दी मे ध्वनिग्राम दो प्रकार के हैं —खड्य और खडेतर । खड्यध्वनि ग्राम के दो भेद हैं—

(१) स्वर ध्वनिग्राम

(२) व्यजन ध्वनिग्राम

खड्येतर ध्वनिग्राम के ५ भेद हैं—दीर्घता, अनुनासिकता, बलाघात, अनुमान और सगम । यथा आॅफिस मे आ-आॅ । वाल-वॉल । काफी-कॉफी । हाल का हॉल ।

हिन्दी मे सभी स्वरो के अनुनासिक रूप मिलते है यथा—हसना, दात सिघाडा, सीचना, सोठ, भैंस इत्यादि ।

इनके अतिरिक्त धातुओ के पीछे शब्द लगाकर अनेक कृदन्त रूप व धातुओ को छोडकर शेष शब्दो के परे प्रत्यय लगाने से अनेक तद्धित शब्द बनते हैं । इसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है ।

तद्धित

१ भाववाचक २ गुण जैसे-दूधवाला ५ खटिया

हिन्दी मे मुख्य केन्द्रीय ध्वनिग्राम ३५ हैं । इनमे से मुख्य स्वर ध्वनि-ग्राम १० हैं यथा—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ इनमे भी ए ऐ ओ औ सयुक्त हैं व्यजनध्वनिग्राम-व्यजन ध्वनियो का वर्गीकरण मुख्य रूप से तीन प्रकार से किया जा सकता है—

(१) घोषत्व की दृष्टि से ।

(२) उच्चारण प्रयत्न की दृष्टि से ।

(३) उच्चारण स्थान की दृष्टि से ।

व्यजनो मे कुछ सयुक्त व्यजन हैं । यथा—क्ष त्र ज्ञ । उदाहरण मित्र, विज्ञ, विद्यार्थी, बच्चा, क्षत्रिय इत्यादि । दो व्यजन वाले शब्द फैक्ट्री, वक्तृत्व,

लक्ष्मी, व्यंग्यार्थ, तीक्ष्ण, सूक्ष्म । तीन व्यजन वाले शब्द-स्वातन्त्र्य, वत्स्यं इत्यादि ।

बलाघात—त्याग, बुद्धि परजाय कू ।
त्यागबुद्धि, परजाय कूं ।
त्याग बुद्धि परजाय, कू ।
ये, मेरे गाढी गढी ।
ये 'मेरे', गाढी गढ़ी ।
ये मेरे 'गाढी, गढ़ी' ।

सुरलहर—करो नाहि कछुराग ।
करो नाहि कछु राग ?
करो नाहि कछु राग ।

संगम— तोरी, मोरी लाज ।
तोरीमोरी, लाज ।
रोको, मत जाने दो ।
रोकोमत, जाने दो ।

यहा तोरी शब्द मे चमत्कार है । हिन्दी की कुल ध्वनिया ५६ हैं । 'उ' और 'ल' स्वतत्र ध्वनिया हैं । कवि की रचनाओ मे भी 'उ' और 'ल' स्वतत्र ध्वनिया हैं । यद्यपि ये केवल स्वर, मध्य, तथा पदान्त मे ही पाई जाती हैं, पद के आदि मे नही । ठीक यही बात 'ण' ध्वनि के विषय मे भी कही जा सकती है । यह भी इन दोनो बोलियो मे परिनिष्ठित खडीबोली की तरह 'न' का ध्वन्यग नही है तथा यह ध्वनि कथ्य खडी बोली तक मे पाई जाती है ।

ध्वनि के विषय मे यह ध्यान देना आवश्यक है कि ध्वनि का अभिप्राय केवल भाषण-ध्वनि से है । यह भाषा की अत्यन्त सूक्ष्मधारा है । सवेदन-शील और अभ्यासगत है कि ध्वनि सयोगो के उच्चारो को सुनते ही उसका अर्थ होने लगता है । शब्द मे अर्थ कही से आता नही है अपितु उसी मे है ।

सक्षेप मे इतना ही कहना है कि ध्वनियो के परिवार को ध्वनिग्राम कहा जाता है । ये ध्वनिया किसी परिधि या परवेश तक उच्चारगत अर्थ की दृष्टि से भिन्न प्रतीत नहीं होती । इसलिये सुनने वाला परिचित ध्वनि के रूप मे ही उसे सुनता है । ध्वनिग्राम स्वन प्रकारों का समूह है जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान तथा परिपूरक, वितरण या मुक्त परिवर्तन मे होते हैं ।[1]

---

१. डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री : भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा पृ० १०३

अर्थतत्व

१ अर्थ परिवर्तन की दिशाए
२ अर्थ-विस्तार
३ अर्थ सकोच
४ अर्थादेश
५ प्रत्यय
६ उपसर्ग
७ समास
८ पूर्व-सर्ग
९ परसर्ग
१० ध्वनि-अर्थ
११ मुहावरे, लोकोक्तिया तथा अन्य प्रयोग

१ अर्थपरिवर्तन की दशाए —यथार्थ अर्थ परिवर्तन की दिशाए पूर्ण रूप से नियत नही की जा सकती, क्योकि अर्थ परिवर्तन का मुख्य कारण मानव-मस्तिष्क है। उच्चरित एक ही शब्द का मानव-मस्तिष्क विभिन्न अर्थ ग्रहण कर लेता है। इसका कारण यह है कि शब्द स्थूल होते है और अर्थ सूक्ष्म। अर्थ बौद्धिक होते हैं अत उनमे सतत परिवर्तन होते रहते है। शब्दो की अपेक्षा अर्थ अधिक व्यापक होता है। कई बार शब्द-प्रयोग न होने पर भी सकेत मात्र ग्रहण किये जाते हैं।

'ब्रील' महोदय के अनुसार अर्थ परिवर्तन की तीन दिशाए मानी जाती हैं—

१ अर्थ-विस्तार
२ अर्थ-सकोच
३ अर्थादेश

प्राय: प्रत्येक युग मे शब्द और उनके अर्थ मे कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। इसी प्रक्रिया मे दरिया (नदी) शब्द गुजराती और हिन्दी मे समुद्र का वाचक हो गया है। सस्कृत का 'आम्र' शब्द अपभ्र श मे आम अर्थ देने लगा और साहसिक (डाकू) शब्द, उर्दू-हिन्दी मे साहसी (हिम्मती) अर्थ का वाचक हो गया अत्यन्त प्राचीन काल मे सस्कृत मे घृणा का अर्थ 'पिघलना था' बाद मे दया हो गया और अब वह नफरत का अर्थ देने लगा। इसी प्रकार 'पाखड' शब्द पहले एक सप्रदाय था, बाद मे उस शब्द मे कुछ परिवर्तन हुआ तो पाप का खडन करने वाला अर्थ देने लगा और आज उसका अर्थ ढोग या आडबर है।[1]

(१) अर्थ परिवर्तन

अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया से यद्यपि शब्द और अर्थ सदा किसी सदर्भ मे परिस्थति वश बदल जाते हैं, किन्तु वे अपने मूल अर्थ को नही छोडते इसलिये हजारो वर्षों के बाद भी उनका मूल स्रोत खोज लिया जाता है और उनकी वास्तविक स्थिति का पता चल जाता है। इस प्रकार अर्थ परिवर्तन की पद्धति से शब्द के इतिहास की जानकारी मिलती है।

(२) अर्थ विस्तार

जन सामान्य शब्द विशेष अर्थ मे और विशिष्ट शब्द सामान्य अर्थ मे प्रयुक्त होता है, तब अर्थ विस्तार हो जाता है। अर्थ के विस्तार के कारण अर्थ अपने शाब्दिक अर्थ से अधिक बढ जाता है। "भर्तृहरि" ने बहुत विस्तार के साथ इसका विचार किया है। उनका कथन है कि विशेष की अविवक्षा और सामान्य की विवक्षा से प्राय अर्थ विस्तार हो जाता है। जैसे—तेल 'शब्द' तिल के द्रवित सार को कहते थे, परन्तु अब—सरसो, मू गफली, अलसी सोयाबीन यहा तक कि घासलेट को भी तेल कहने लगे। इसी प्रकार चाह अर्थ मे चाय (४६८) जुआरी (४५५) चारि (४४६) ख्याल (४३२) लगन (४२६) गार (४१७) परत (४०४) भाटा (३८३) इत्यादि शब्दो के प्रयोग होने लगे। इस प्रकार मनुष्य जब काम करके बहुत थक जाता है, तब कहता है—आज तो मेरा तेल ही निकल गया।

(३) अर्थ सकोच

'ब्रील' महोदय का कहना है कि जो राष्ट्र या जाति जितनी अधिक विकसित होगी, उसमे अर्थ-सकोच उतना ही अधिक होगा। यदि इस प्रकार से अर्थ का सकोच न हो तो सभी शब्द सभी अर्थों के वाचक हो जायेंगे। अर्थ के सकोच मे सास्कृतिक परिवर्तन विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है

(४) अथादेश

एक अर्थ के स्थान पर दूसरा अर्थ हो जाना ही अथादेश है। कभी-कभी, ज्ञात-अज्ञात, रूप से विचारो के सम्पर्क के कारण गौण अर्थ से सम्बन्ध हो जाता है और वह अर्थ ही मुख्यार्थ बन जाता है। इस प्रकार एक अर्थ के स्थान पर दूसरा अर्थ हो जाता है। जैसे—गवार शब्द का मूल अर्थ ग्रामीण है, किन्तु आम जनता मूर्ख मनुष्य को गवार कहती है। इसी प्रकार 'बुद्ध' शब्द का अर्थ बुद्धिमान है, किन्तु लोक मे बुद्धि-हीन व्यक्ति को 'बुद्ध' कहा जाता है। इस प्रकार अथादेश मे अर्थ अपने मूल से भिन्न हो जाता है। उपसर्ग के विविध प्रयोगो से भी अर्थ मे परिवर्तन लक्षित होने लगता है। जैसे कि सस्कृत की 'ह' धातु से हर और हार शब्द निष्पन्न होते हैं। 'हार' के पहले 'प्र' उपसर्ग जोड देने से 'प्रहार' 'वि' जोड देने से 'विहार' 'आ' जोड देने से आहार 'स' जोड देने से सहार, 'नी' जोड देने से नीहार' आदि विभिन्न अर्थ के वाचक शब्द बनते हैं।

इसी प्रकार विश्लेपण, लोक प्रसिद्धि, प्रत्ययो के प्रयोग से भी अर्थ परिवर्तन हो जाता है। चू कि अर्थ-परिवर्तन की दिशा कभी अच्छे और कभी बुरे अर्थ की ओर प्रवाहित होती रहती है। अत इन्हे अलग से अर्थ-परिवर्तन की दिशाए मानना उचित नहीं है।

प्रत्यय

ऐसे अधिकारी शब्द या शब्दाश जो धातु या मूल शब्द के पश्चात् जुटकर उनका अर्थ परिवर्तन कर देते हैं, प्रत्य कहलाती हैं। जैसे मिठाई शब्द मे वाला प्रत्यय जोड देने से 'मिठाई वाला' बन जाता है। इस प्रकार मिठाई और मिठाई वाला शब्दो के अर्थों मे परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार पढना से पढाई शब्द मे भी अर्थ बदल जाता है। प्रत्ययो का स्वतत्र अर्थ और प्रयोग नही होता। केवल मूल शब्द से जुडकर ही वे भिन्न अर्थ के प्रतिपादक होते हैं। प्रत्यय सभी प्रकार के शब्दो के साथ सयुक्त हो जाते हैं।

प्रत्ययो से निर्मित शब्दो के दो भेद होते हैं—कृदन्त और तद्धित। धातुओं के पीछे जो शब्द लगाये जाते हैं वे कृदन्त कहलाते हैं। जैसे—लिखना से लिखाई तथा धातुओ के अतिरिक्त सज्ञा, सर्वनाम, विश्लेषण शब्दो मे जो प्रत्यय लगाये जाते हैं तथा उनके लगाने से जो शब्द बनते हैं उन्हे तद्धित कहते हैं। जैसे दशरथ से दाशरथि, प्यार से प्यारा इत्यादि।

हिन्दी प्रत्यय (कृदन्त)

अ—यह प्रत्यय अकारान्त धातुओ से जोडा जाता है, जिससे भाव-वाचक सज्ञाए बनती हैं। जैसे लूटना से 'लूट' उछलना से 'उछलकूद' इत्यादि।

आ—इस प्रत्यय के योग से भाववाचक सज्ञाए बनती हैं जैसे घेरना से घेरा इत्यादि। इसी प्रकार आई, आऊ, आव, आप, आव आवह, आवना, आवा, आस, आहट, इयल, ई, इया, ऊ, एरा, ऐया आदि अनेक प्रत्यय हैं, जिनके सयोग से अनेक शब्दो मे अर्थ-परिवर्तन होता है।

हिन्दी प्रत्यय (तद्धित)

(१) भाववाचक (२) गुणवाचक (३) अपत्य वाचक (४) कर्तृ वाचक (५) न्यूनवाचक इत्यादि अनेक प्रकार के तद्धित हैं, जिनके उदाहरण क्रमशः निम्न प्रकार हैं :—

(१) बुढापा (२) रगीला (३) वासुदेव (४) दूधवाला (५) खटिया

जिन शब्दो या शब्दाशो का धातु के पूर्व प्रयोग होता है, उन्हें उपसर्ग कहते हैं। तथा जिन शब्द या शब्दाशो का प्रयोग धातु के अत मे होता है, वे प्रत्यय कहे जाते हैं। सस्कृत और हिन्दी मे शब्द के साथ-प्रत्यय का सयोग प्राय अत मे होता है। प्रकृति और प्रत्यय के योग से ही शब्द का निर्माण होता है।

६ उपसर्ग

ऐसे अविकारी शब्द या शब्दाश जो मूलशब्द के आदि या पूर्व मे जुडकर उनका अर्थ परिवर्तन कर देते हैं, उपसर्ग कहलाते है। जैसे कर्म शब्द के आगे सु जोड देने से 'सुकर्म' शब्द उपसर्ग से वना है जो, 'कर्म' शब्द का अर्थ वदल देता है।

७ समास

भाषा रचना मे शब्द तथा शब्दाशो का योग किसी न किसी रूप मे देखने को मिलता है। दो या दो से अधिक शब्दो के योग को समास कहा जाता है। जिस प्रकार शब्द एक इकाई है, उसी प्रकार एक इकाई के रूप मे जब समस्त पद का प्रयोग किया जाता है, तब वह समास कहलाता है। समास एक प्रकार से शब्दो का सक्षेपीकरण करने हेतु प्रयुक्त होता है। समास का अर्थ ही सक्षेप है। हिन्दी की समास रचना पूर्णत सस्कृत का अनुसरण नही करती। यही कारण है कि हिन्दी में न तो लम्बे समास मिलते हैं और न वन सकते हैं।

८-९ पूर्वसर्ग-परसर्ग

हिन्दी मे सज्ञा शब्दो के रूप मिलते हैं जो सघटना के अनुसार निश्चित होते हैं। परसर्ग के पूर्व । लडके। तथा अन्य लगभग सभी स्थानों पर। लडका। प्रयुक्त होता है। कुछ परसर्ग सीधे सज्ञा शब्दो के पश्चात् प्रयुक्त होते हैं। अधिकतर परसर्गों की स्थिति कारक की है। जहा पर वे भिन्न स्थिति मे लक्षित होते है वहा वे व्याकरणात्मक शब्द हैं।

१० ध्वनि-अर्थ

पहले कहा जा चुका है कि ध्वनिया सार्थक होती हैं। समाज मे भाषा का महत्त्व केवल अर्थ के कारण है। ध्वनियो के माध्यम से ही प्राणीमात्र भाव-प्रेषण करता है। ध्वनियो का सीधा सम्वन्ध अर्थतत्त्व से है। यदि वक्ता भाषा के ध्वनि सयोगो के रूप और अर्थ सादृश्य पर अवलवित न रहे तो एक क्षण से दूसरे क्षण मे भाव-प्रेषण असभव हो जायगा।[1]

इसलिये भाषा—जगत् मे केवल श्रोत्र-ग्राह्य ध्वनियो का ही विचार किया जाता है, जो भाषण ध्वनियो के अनुक्रम मे अर्थ से सम्बद्ध होती हैं। ध्वनि और अर्थ सदा सश्लिष्ट रूप मे रहते हैं, इसलिये भाषा मे परिवर्तन इन्ही दो रूपो मे होता है।[2]

---

१ रावर्ट ए० हाल० :—इंट्रोडक्टरी लिंग्विष्टिक्स, पृ० २२८।
२ डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ० १६७।

शब्द मे अर्थ कही से आता नही है, वल्कि उसमे से ही उद्भापित होता है। यथार्थ मे शब्द की सत्ता अर्थ बोध मे निहित है। 'गुलाव' शब्द कहने से केवल गुलाब के फूल का ही नही वरन् गुलावी रग का भी वोध होता है। यह अर्थ बोध स्वय शब्द मे निहित है। वाक् और अर्थ दोनो ही सप्रक्त हैं—एक दूसरे से अभिन्न। सस्कृत विद्वान पाणिनि ने लिखा है—"सर्वेशब्दा स्पेन भावेन भवति, स तेपामर्थं अर्थात् सभी शब्द अपने भाव मे रहते है जो उनका अर्थ कहा जाता है। शब्द से, शब्द और अर्थ दोनो की प्रतीति होती है, परन्तु अर्थ पहले से ही सृष्टि मे विद्यमान है। इसलिये शब्द अर्थ का उत्पादन न होकर ज्ञायक या प्रतीति कराने वाला है।

सक्षेप मे—शब्द से अर्थ भिन्न नही है। जिस प्रकार शिव से शक्ति भिन्न नहीं है हमे अर्थ का पता शब्द से ही चलता है। शब्द से ही अर्थ समझ मे आता है।[1]

११ मुहावरे और लोकोक्तियां

रचना को अधिक सजीव एव प्राणवान् बनाने के लिये भाषा मे लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग किया जाता है। साधारण वाक्यो की अपेक्षा मुहावरेदार वाक्यावली वाचको को अत्यधिक प्रभावित करती है। कभी-कभी तो एक ही लोकोक्ति हमे लम्बी-चौडी व्याख्या के श्रम से बचा लेती है। अत इस कथन मे किसी भी प्रकार की अतिशयोक्ति नही है कि लोकोक्तियो और मुहावरो मे भाव को श्रोताओ के हृदय तल तक पहुचाकर उन्हे गुदगुदा देने तथा प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता होती है। अत भाषा मे अभिव्यजना-कौशल, प्रगट करने के लिये अधिक से अधिक लोकोक्तियो एव मुहावरो का प्रयोग किया जाना चाहिए।

मुहावरा तथा लोकोक्ति मे अन्तर —मुहावरा तथा लोकोक्ति दोनो मे पर्याप्त अन्तर है। 'मुहावरा एक ऐसा वाक्याश है, जिसके शब्दो का साधारण अर्थ (वाच्यार्थ) न लगाकर एक विशेष अर्थ (लक्ष्यार्थ) लगाया जाता है। जैसे—वह तो आस्तीन का साप है'। यहा, 'आस्तीन का साप' आस्तीन मे साप पालना नही है; किन्तु इस वाक्याश का अर्थ है—एक ऐसा आदमी जो ऊपर से मित्र तथा भीतर से शत्रु हो। इस कथन मे कितनी अधिक लाक्षणिकता है। यह लाक्षणिकता सीधे-सादे शब्दो से पैदा नही होती। यदि कथन मे चमत्कार लाना है तो मुहावरो का प्रयोग अपेक्षित है, जो भाषा को सजीव बना देते हैं।

---

१ गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। रामचरित मानस बालकाड, १८।
वागर्थाविव सपृक्तौ, वागर्थ प्रतिपत्तये। जगत् कि तिरो वन्दे, पार्वती परमेश्वरौ। रघुवंश, १, १।
तुलसीदास रामचरित मानस, बालकाड, १८।

लोकोक्ति या कहावत एक पूरा वाक्य होता है और अपनी स्वतत्र सत्ता रखता है। इसका प्रयोग किसी कथन की पूर्ति मे उदाहरण स्वरूप किया जाता है। जैसे बनावटी परहेज के लिये कहा जाय कि 'गुडखाय गुलगुलो से परहेज' तो इस कथन मे अधिक-चमत्कार आ जाता है।

४. अलकार योजना

अलकार शब्द का अर्थ है शोभा बढाने वाला। इसकी व्युत्पत्ति 'अलकरोति इति अलकार' है, जो वस्तु को अल अर्थात् पर्याप्त सुन्दर बना दे, वह अलकार है। जिस प्रकार भाति-भाति के अलकार (आभूषण) पहनने से नारी-शरीर की शोभा बहुत बढ जाती है, उसी प्रकार कविता मे प्रयुक्त होने वाले विशेष शब्द या उक्तिया उसके भाव को अत्यन्त आकर्षक बना देते हैं। आचार्यों ने काव्य की शोभा बढाने वाले धर्मों को अलकार कहा है—'काव्य शोभा करान् धर्मान् अलकारान् प्रचक्षते' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि आचार्य केशवदास को तो भूषण के बिना कविता वनिता (नारी) दोनो ही अच्छी नही लगती थी, चाहे वे कितनी ही उच्च क्यो न हों। परन्तु,

"जैन कवियो की कविताओ से प्रमाणित है कि उनमे अलकारो का प्रयोग तो हुआ है, किन्तु उनको प्रमुखता कभी नही दी गई। वे सदैव मूलभाव की अभिव्यक्ति मे सहायक भर प्रमाणित हुए हैं। जैन कवियो का अनुप्रासो पर एकाधिकार था[1]।"

हिन्दी के जैन काव्यो मे अनेक अर्थालकारो का प्रयोग हुआ है। उनमे भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और श्लेष में सौंदर्य अधिक है। हिन्दी के जैन कवियो की रचनाओ मे रूपक अलकारो के सुन्दर प्रयोग हुए हैं। उन्होने उपमेय मे उपमान का आरोप कुशलता से किया है। देखिये—

'मन सुआ है, और भगवान जिनेन्द्र के पद पिंजडा। इस मन रूपी सुए ने ससार के अनेक वृक्षो के कडवे फलो को तोड–तोड कर चखा है किन्तु उनसे कुछ नही हुआ, फिर भी वह निश्चिन्त है। भगवान के चरण रूपी पिंजरे मे नही बसता। काल रूपी वन—विलाव उसको ताक रहा है। वह अवसर पाते ही दाव लेगा फिर कोई न बचा सकेगा[2]।'

---

१ जैन डॉ० प्रेम सागर हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, प्रथम सस्करण १९६४, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन।

२ मेरे मन सुआ, जिनवर पींजरे बस, यार लाव न वार रे।।
ससार मे बलवृक्ष सेवत, गयो काल अपार रे।।
विषयफल तिस तोडि चाखे, कहा देख्यो सार रे।।
डॉ० प्रेमसागर जैन : हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, प्रथम सस्करण १९६४, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन।

काव्य मे अलकार योजना का भी विशेष स्थान है। भावो की स्फुट अभिव्यक्ति और वस्तु के उत्कर्ष एव प्रातीय मानचित्र या विम्व को अभिव्यजित करने के लिये अलकार योजना आवश्यक ही नही अनिवार्य भी प्रतीत होती है। यदि कल्पना भावो को जगाती है तो अलकार उसे रूप प्रदान करता है। इसलिये प्राचीन आचार्यों ने काव्य मे अलकार विधान की अनिवार्यता का निर्देश किया है।

वास्तव मे सीधी सादी वात मे आकर्षण कम दिखाई पडता है। अलंकार योजना से उसका चमत्कार वढ जाता है। इसीलिए काव्य मे उसका महत्व है। अलकारो को सीमा मे नही वाधा जा सकता है। वात कहने के जितने ढग होते हैं उतने ही अलकार हो सकते हैं। अलकारो मे उपमा सवसे प्रधान अलकार है और कदाचित् अलकारो के विकास के मूल मे यही अलकार रहा होगा। भारतीय साहित्य मे ऐसा कोई काव्य न होगा जिसमे उपमा अलकार का प्रयोग न हुआ हो।

अलकार—विधान मे कविवर वुधजन का पाडित्य स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है। अलकारो से तथा छन्दो की विविधता से समूचा काव्य भरा पडा है। उन्होने तीनो ही प्रकार के अलकारो का प्रयोग किया है।

शब्दालकारो मे कविवर वुधजन ने छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, वीप्सा, लाटानुप्रास आदि का एव अर्थालकारो मे उपमा, दृष्टान्त, अर्थान्तिरन्यास, रूपक, यथासख्य, उल्लेख, तुल्योगिता आदि का एव उभयालंकार मे ससृष्टि का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

इनके अतिरिक्त भी उनकी रचनाओ मे अन्य अनेको अलकारो के सुन्दर प्रयोग पाये जाते हैं। इतने अधिक अलकारो का प्रयोग होने पर भी उनके काव्य मे रसात्मकता की कमी नही। कवि की यह आश्चर्य-जनक सफलता उनकी प्रौढ एव असाधारण कला-कुशलता की परिचायक है। 'वुधजन', काव्य के स्वाभाविक स्वरूप के विकसित करने मे विश्वास करते थे। काव्य को वाह्य उपकरणो द्वारा चमत्कृत करना कदाचित् वे अनावश्यक समझते थे।

'वुधजन', के काव्य मे अलकारो के प्रयोग देखिये .—

शब्दालकार—

गिरिगिरि प्रति मानिक नहीं घन वन चदन नांहि[1] ।। वीप्सा

सुधरसभा मे यो लसै, जैसे राजत भूप[2] ।। छेकानुप्रास

धनसम कुलसम धरमसम समवय मीत वनाय[3] ।। लाटानुप्रास

---

१. बुधजन सतसई : पृष्ठ २८ । २६४ ।

२ बुधजन सतसई पृष्ठ ३१ । २८९ ।

३. बुधजन सतसई : पृष्ठ ४७ । ४४२ ।

दुराचारितिय कलहिनी, किंकर क्रूर कठोर[1] ॥ वृत्यनुप्रास

अर्थालंकार

वकवन हित उद्यम करें, जे हैं चतुर विसेखि[2] ॥ उपमा

सत्यदीप बाती क्षमा, सील तेल सजोय[3] ॥ रूपक

भलाकिये करि है बुरा, दुर्जन सहज सुभाय ।

पय पाये विष देत हैं, फणी महा दुखदाय[4] ॥ दृष्टान्त

जैसी संगति कीजिये, तैसा हूँ परिनाम ।

तीर गहे ताकें तुरत, माला तें ले नाम[5] ॥ अर्थान्तरन्यास

उभयालंकार

नीतिवान नीति न तजे, सहैं भूख तिसत्रास ।

ज्यो हंसा मुक्ता विना, वनसर करें निवास[6] ।

(लाटानुप्रास, छेकानुप्रास, दृष्टान्त की संसृष्टि)

५ छन्द-योजना

वि० संवत् १६०० से १६०० तक के हिन्दी–जैन कवियो ने वर्णिक एवम् मात्रिक दोनो ही प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है । अनूदित ग्रन्थो मे वर्णिक का और मौलिक ग्रन्थो मे मात्रिक छन्दो का प्रयोग है । दोहा, सवैया, चौपाई, कवित्त इन मात्रिक छन्दो का विशेष प्रयोग हुआ है । घनाक्षरी आदि का भी प्रयोग हुआ है ।

'बुधजन विलास' मे कवि ने सर्वाधिक छन्दो का प्रयोग किया है, जिनका उल्लेख द्वितीय अध्याय मे किया जा चुका है ।

विधान, छन्द, शैली

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बुधजन सतसई' मे कवि ने मुक्तक दोहो का प्रयोग किया है । छन्दशास्त्र की दृष्टि से ये दोहे प्राय निर्दोष हैं । सामान्यत तथ्य-निरूपक शैली का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है । उपदेशात्मक तथा शब्दावर्तक शैलिया दिखाई तो देती हैं, परन्तु बहुत कम हैं[7] ॥

---

१ बुधजन सतसई पृष्ठ ३४ । ३१६ ।

२ बुधजन सतसई पृष्ठ २७ । २५१ ।

३. बुधजन सतसई पृष्ठ २२ । २०० ।

४. बुधजन सतसई पृष्ठ १२ । १०४ ।

५ बुधजन सतसई : पृष्ठ ३४ । ३१६ ।

६ बुधजन सतसई : पृष्ठ ३५ । ३२० ।

७ जैन डॉ० प्रेमसागर : हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृष्ठ ४३५, प्रथम संस्करण, १६६४, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन ।

जिस प्रकार सस्कृत मे श्लोक को, प्राकृत भापा मे गाथा को, अपभ्र श भापा मे दूहा को मुख्य छन्द माना गया है। उसी प्रकार हिन्दी मे 'दोहा' छन्द को प्रमुखता दी गई है। जैन कवियो ने दोहा छन्द का प्रयोग अपनी आध्यात्मिक रचनाओ में किया है। १६वी शताब्दी के पाण्डे रूपचन्द आदि ने, १७वी शताब्दी के पाण्डे हेमराज आदि ने, १८ वी शताब्दी के मनराम आदि ने, १६वी शताब्दी के 'वुधजन' आदि कवियो ने इस छन्द का प्रयोग अपनी आध्यात्मिक एव नीति—परक रचनाओं मे किया है। आपने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वुधजन सतसई' मे इस छन्द का इतना सफल प्रयोग किया है कि उस काल का अन्य कोई कवि अपनी सफलता से उसका प्रयोग नही कर सका। उन्होने सम्पूर्ण ग्रन्थ ही दोहा छन्द में लिखा है। 'वुधजन सतसई' के अतिरिक्त अपनी अन्य रचनाओ मे कवि ने चौपाई कवित्त, सवैया, दोहा, छप्पय, धनाक्षरी, फागु पद आदि अनेकों छन्दो का सफल प्रयोग किया है। रचनाओ की भापा सरल और प्रवाह पूर्ण है। अनेक नये-नये छन्द, नयी-नयी राग-रागिनियो मे प्रयुक्त किये गये हैं। इस दिशा मे कवि की मौलिकता प्रशसनीय है।

चतुर्थ खण्ड

तुलनात्मक अध्ययन

(१) हिन्दी साहित्य के विकास मे कविवर बुधजन का योग

अपभ्र श तथा लोक साहित्य की विभिन्न विधाओ से सामान्यत हिन्दी साहित्य प्रभावित हुआ। जैन कवि व्रज और राजस्थानी मे प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्यो की रचना करने मे सलग्न रहे। इतना ही नही वे मानव जीवन की विभिन्न समस्याओ का समाधान करते हुए काव्य रचना मे प्रवृत्त रहे। जन-सामान्य के लिये यह साहित्य पूर्णतया उपयोगी है। इसमे सुन्दर आत्म-पीयूष-रस छल छलाता है और मानव की उन भावनाओ तथा अनुभूतियो को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है—जो समाज के लिये सबल हैं और जिनके आधार पर ही समाज का सघटन, सशोधन तथा सस्करण होता है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का यदि पुन. सर्वेक्षण हो तो वह जैन कवियो की रचनाओ के आधार पर ही किया जा सकता है। क्योकि जैन कवियो ने गौतम-रासा, सप्तक्षेत्र रासा, यशोधर रासा, धनपाल रासा, सम्यक्तत्व रासा, नेमीश्वर रासा आदि अनेक रासा ग्र थ उस काल मे लिखे थे। भारतीय साहित्य के मध्यकाल पर यदि विचार करें, तो यह काल भी काव्य सृजन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस युग मे भी जैन कवियो ने जो भी लिखा, वह मात्र 'कला के लिये कला' का आयोजन नही था वरन् उसमे तात्कालिक जन-जीवन भी स्पदित था।

इन कवियो ने कवि दृष्टि के साथ सस्कृति, नीति और धर्म को भी अपने काव्य की प्रमुख भूमि बनाया और साहित्य की रचना की जिसने जनजीवन को ऊ चा उठाया और श्रमण सस्कृति की निर्मलताओ को उजागर किया। लोक जीवन के जिस चारित्रिक धरातल पर जैन कवियो ने साहित्यिक रचनाए की, उनसे न केवल जैन समाज उपकृत हुआ वरन् सम्पूर्ण भारतीय समाज उपकृत हुआ। इन कवियो ने अपनी रचनाओ के द्वारा हमारे जीवन को उन्नत बनाया। मानव को पशुता से मनुष्यता की ओर ले जाना ही जैन कवियो का लक्ष्य रहा है। जैन कवियो ने साहित्य को कलाबाजी कभी नही माना। उनका साहित्य गुण और परिमाण दोनो ही दृष्टियो से महान है। सस्कृत, प्राकृत, कन्नड, तमिल, गुजराती, मराठी,

राजस्थानी, ब्रजभाषा प्रभृति भारत की समस्त प्रादेशिक भाषाओ मे जैनाचार्य और जैन कवियो ने साहित्य का सृजन किया। सम्पूर्ण जैन साहित्य अभी तक प्रकाश मे नहीं आया है। जितने ग्र थ प्रकाश में आये हैं, उनसे कही अधिक सख्या मे जैन भाण्डागारो मे अद्यावधि अप्रकाशित दशा मे हैं।

हिन्दी जैन साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'दि० जैन साहित्य मे हिन्दी ग्रन्थो की सख्या भी बहुत अधिक है। विगत तीन सौ वर्षो मे अधिकाश ग्रन्थ हिन्दी मे ही रचे गये हैं। जैन-श्रावक के लिये स्वाध्याय करना आवश्यक है। अत. जन साधारण की भाषा मे जिनवाणी को निबद्ध करने की चेष्टा प्रारम्भ से ही होती आई है। इसी से हिन्दी जैन साहित्य मे गद्य-ग्रन्थ बहुतायत से पाये जाते हैं। लगभग सोलहवी शताब्दी से लेकर हिन्दी गद्य-ग्रन्थ जैन साहित्य मे उपलब्ध हैं और इसीलिए हिन्दी भाषा के क्रमिक विकास का अध्ययन करने वालो के लिये वे बडे काम के हैं।[1]

आलोच्य काल मे सस्कृत, और अपभ्र श भाषा के ग्रथो का हिन्दी गद्य मे अनुवाद हुआ। अनुवाद का यह कार्य सर्व प्रथम जयपुर के विद्वानो ने ढ ढारी भाषा मे प्रारम्भ किया था। आज भी उनके अनुवाद उसी रूप मे पाये जाते हैं। जैन कवियो ने केवल अनुवाद ही नही किये, किन्तु स्वतन्त्र रूप से भी हिन्दी और पद्य दोनों में रचनाए की। गद्य साहित्य मे पडित प्रवरमल का 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' प० दौलतराम की पद्मपुराण की वचनिका आदि प्रसिद्ध ग्र थ हैं। पद्य-साहित्य मे पं० दौलतराम छहढाला, कविवर बुधजन की छहढाला व बुधजन सतसई, आदि जैन साहित्य की अमूल्य-निधि है। इनके अतिरिक्त प० सदासुख, द्यानतराय, भैया भगवतीदास, प० जयचन्द छावडा, भूधरदास आदि विद्वानो ने अपने समय की भाषा मे गद्य एव पद्य अथवा दोनो मे पर्याप्त रचनाए की।

'बुधजन साहित्य मे यो तो सभी रस यथास्थान अभिव्यजित हुए हैं, पर मुख्यता शान्त-रस की है। कवि की मूल भावना अध्यात्म-प्रधान है। वह ससार से विरक्ति और मुक्ति से अनुरक्ति की प्र रणा देती है। शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है। यही कारण है कि प्रत्येक काव्य का अन्त शान्त रसात्मक ही है। श्र गार रस सर्वथा नही है, ऐसी बात नही है'।[2]

---

१ प० कैलाशचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री · जैन धर्म, पृ० सं० २५६, चतुर्थ सस्करण, १९६६, भा० दि० जैन सघ, चौरासी, मथुरा।

२. डॉ० नरेन्द्र भानावत . 'जिनवाणी' पत्रिका, वर्ष ३२, अंक ४-७, जयपुर।

गीतिकाव्य के क्षेत्र मे भी बुधजन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके सम्पूर्ण पद गेय हैं, जिनमें हृदय का मार्मिक स्पदन माधुर्य से अनुप्राणित है। उन्होने भाषा को अपने प्रकृत रूप में ही प्रभावशाली बनाया। उनके साहित्य मे आडंबरो के लिये आग्रह नही है। उनके साहित्य मे मौलिक चेतना तरंगित होती है। गम्भीर-चिंतन, समुन्नत हार्दिक प्रसार, कवि की रचनाओ में उपलब्ध है।

वैसे तो हिन्दी साहित्य का निर्माण वि० स० ६६० से प्रारम्भ हुआ। एक जैन कवि ने इसका प्रारम्भ किया था। वह सतत चलता रहा। जैन कवि लिखते रहे। उन्होने जो कुछ लिखा उनमें थोडा या बहुत भक्ति का अश अवश्य था। अत. मध्यकाल में वि० स० १००० से १६०० तक हिन्दी साहित्य में भी जैन भक्ति धारा चलती रही[1]। इस काल में बनारसीदास, भूधरदास, आनन्दघन, दौलतराम आदि के समान बुधजन ने भी भक्ति-रस-पूर्ण रचनाए की हैं जो जैन जगत में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इस प्रकार की रचनाओ में "बुधजन" का एकमात्र लक्ष्य रहा है कि मनुष्य केवल लौकिक विषय-वासनाओ मे आसक्त न रहे। किन्तु अपनी पहिचानकर, अपनी उन्नति का प्रयत्न करे। उन्होने जितनी भी रचनाए की हैं उनके पीछे उनका कोई स्वार्थ नही रहा। वे साधारण गृहस्थ थे उन्होने जो कुछ लिखा स्वान्त. सुखाय ही लिखा। रीतिकाल के कवि होते हुए भी उन्होने नायिकाओ के नख शिख का वर्णन रचमात्र भी नही किया। यह उनकी बहुत बडी विशेषता कही जा सकती है।

'मध्ययुग के साहित्यिक कवियो ने हिन्दी भाषा मे जिस भावधारा का ऐश्वर्य विस्तार किया है उसमे असाधारण विशेषता पाई जाती है। यह विशेषता यह है कि उनकी रचनाओ मे उच्च कोटि के साधक एव कवियो का एकत्र सम्मिश्रण हुआ है। इस प्रकार का सम्मिलन दुर्लभ है।'[2]

जीवन-व्यापिनी साधना तथा साहित्य-साधना को हम भिन्न-भिन्न रूपो मे लक्षित नहीं कर सकते हैं। क्योंकि मध्य-युगीन हिन्दी कवियो मे अधिकतर ऐसे ही सन्त कवि हुए हैं, जिनकी वैयक्तिक साधना ने ही उनके साहित्यिक जीवन का निर्माण किया और साधना की जीवन्त-धारा ही साहित्य-बनकर स्फुटित हुई। अध्यात्म की एक ओर पूर्ण झुकाव होने के कारण बुधजन भी सन्त कवि के समान थे। वे एक सन्त-साधक थे और उनकी साधना ही उनके साहित्य की पीयूष धारा है।

'इस प्रकार मध्ययुगीन साहित्य मे स्वत. उद्भूत, बहुमुखी, साहित्यिक भावधाराए प्रसारित हुई। जिनमे तात्कालिक जन-जीवन अत्यधिक प्रभावित हुआ। सासारिक नश्वर सुख-दुख की परिधि से उसका हृदय ऊपर उठा, उसने बडे शान्त-

---

१ अनेकान्त वर्ष १६ : किरण ६, फरवरी १६६७, पृ० स० ३४६।

२. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीः हिन्दी साहित्य, पृ० ८७।

भाव से परिस्थितियो से समन्वय किया तथा भक्तिपरक जीवन की ओर अग्रसर हुआ।[1]

कविवर बुधजन जयपुर के निवासी थे। अत उनकी समस्त रचनाओ में ढूढारी भाषा का प्राधान्य है। कवि की १४ रचनाए अभी तक उपलब्ध हो सकी हैं। उनकी सभी रचनाए भाव और भाषा की दृष्टि से उपादेय हैं। कवि बाह्य ससार से अनासक्त प्रतीत होते है। ऐसा लगता है साहित्य रचना करते समय कवि ने अन्तर्मन से अधिक प्रेरणा प्राप्त की है। चर्म-चक्षुओ की अपेक्षा कवि के मानस-चक्षु अधिक उद्‌बुद्ध प्रतीत होते हैं। आत्मानुभूति का परिचय ही विशेष रूप से दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि कवि ने आत्म शान्ति की प्राप्ति के लिये ही रचनाए की हैं। कवि हिन्दी साहित्य मे अध्यात्म स्रष्टा के रूप मे प्रकट हुआ है। जहा हम अन्यान्य प्रकार की रचनाओ को महत्व देते है, वहा हमे इन अध्यात्म स्रष्टा कलाकारो की रचनाओ को भी महत्व प्रदान करना होगा।

हमे यह स्वीकार करने मे तनिक भी सकोच नही होता कि बुधजन जैसे जैन कवियो के साहित्य के अध्ययन और स्वाध्याय से कुछ समय के लिये सासारिक विषमताओ को भुलाया जा सकता है। पाठक के समक्ष आदर्श का ऐसा मनोरम चित्र उपस्थित होता है जिससे वह अपनी कुत्सित वृत्तियो से जीवन को परिष्कृत करने के लिये दृढ सकल्प कर लेता है। जीवन को परिष्कृत करने की जितनी क्षमता जैन साहित्य मे है, उतनी लोकग्राही शक्ति भी विद्यमान है। साहित्य मानव मात्र की सौंदर्य पिपासा, चारित्रिक उत्थान एव जीवन-निर्माण के करने मे उपादेय है। जैन साहित्य स्रष्टाओ ने अखड चैतन्य आनन्द रूप आत्मा का अपने अन्तस् मे साक्षात्कार किया और साहित्य मे उसी की अनुभूति को मूर्तरूप प्रदान कर सौंदर्य के शास्वत प्रकाश की रेखाओ द्वारा वाणी का चित्र अ कित किया है। जिस जैन समाज पर ऐसे कवियो के साहित्य को प्रकाश मे लाने का उत्तर-दायित्व है। वे इस ओर सचेष्ट प्रतीत नही होते। इससे भी अधिक परिताप का विषय यह है कि हिन्दी साहित्य के विकास मे जिनका पर्याप्त योगदान रहा है। ऐसे कविवर बनारसीदास, द्यानतराय, दौलतराम, भूधरदास, भागचन्द, बुधजन आदि के विषय मे हिन्दी के साहित्यकार भी मौन हैं। इनमे से अधिकतर कवियो का हिन्दी साहित्य के इतिहास मे नामोल्लेख तक नही हैं। बुधजन भी एक ऐसे कवि हैं, जिनका हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उल्लेख नही है। किन्तु इनकी "सतसई" एक अमर रचना है जो हिन्दी की दीर्घ परपराओ को सहेजे हुए हैं। उसमे लोक की रीति-नीतियो का जो वर्णन किया गया है, वह अनुपम है। उसी को लक्ष्यकर सभवत कहा गया है कि 'जैन साहित्य की विशेषता

---

१ सुखदेव मिश्र : हिन्दी साहित्य का प्रभाव, पृ० १९३–९४।

यह है कि विवेक उसका पथ-प्रदर्शन करता है और उसके भावो को अनुप्राणित करने वाली विश्वप्रेम पूरक अहिंसा है।[1] इनके ही समकालीन जैन कवियो मे प दौलतराम, चैनसुखदास, पारसदास, जवाहरलाल, जयचन्द, महाचन्द के नाम तो उल्लेखनीय हैं ही। इनके अतिरिक्त कवि नथमल विलाला, नयनसुखदास, रूपचद पाडेय, जगजीवन, धर्मदास, कु वरपाल, सालिवाहन, नदकवि, हीरानद, बुलाकीदास और जगतराम आदि भी है। इन कवियो की सख्या डेढ सौ के लगभग कही जाती है। उन सबका उल्लेख करना यहा उचित नही।

(२) बुधजन साहित्य मे प्रतिपादित आध्यात्मिक एव दार्शनिक तत्व

वस्तुत जैनधर्म निवृत्ति-मूलक प्रवृत्ति मार्ग है। पर इसका यह अर्थ नही कि इसमे प्रवृत्ति के लिये यत्किंचित् भी स्थान नही। वस्तुत प्रवृत्ति कथचित् निवृत्ति की पूरक है। अशुभ और शुभ से निवृत्ति होकर जीव की शुद्ध आत्म-स्वरूप मे प्रवृत्ति हो, यह इसका अतिम लक्ष्य है। इसका अपना दर्शन है जो आत्मा की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार करता है। आचार्य कु दकु द समयसार मे पर से भिन्न आत्मा की पृथक् सत्ता का मनोरम चित्र उपस्थित करते हुए कहते हैं कि—

अहो आत्मन्! ज्ञानदर्शन स्वरूप तू अपने आपको स्वतत्र और एकाकी अनुभव कर। विश्व मे तेरे दायें-बायें, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे पुद्गल की जो अनत राशि दिखलाई देती है उसमे अणुमात्र भी तेरा नही है। वह सब जड है और तू चेतन है वह सब अविनाशी पद का धारी है। उसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर तूने खोया ही है, कुछ पाया नही। ससार खोने का मार्ग है। प्राप्त करने का मार्ग इससे भिन्न है, वह अध्यात्म का मार्ग है।

कविवर बुधजन ने अपने साहित्य मे प्रतिपादित किया है कि जैन धर्म ने प्रत्येक आत्मा की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार करके व्यक्ति स्वातत्र्य के आधार पर उसके बधन से मुक्त होने का निर्देश किया है। उसने प्रत्येक आत्मा को स्वावलबी बनने का उपाय बताया है। स्वावलबी सुखी है और परावलबी दु खी है। स्वावलबी बनने के लिये अपने शुद्ध स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। आत्म-शक्तियो का परिचयज्ञान ही मनुष्य को स्वावलबी बनाता है। अनादि काल से यह जीव पर का अवलबन लेता रहा है। एक बार, स्वावलबन की झलक भी इसने नही देखी। हा! यदि प्रयत्न करे, आत्म-शक्तियो को पहिचान ले तो स्वावलबी हो सकता है। जब तक यह जीव भौतिकवाद मे भटकता रहेगा तब तक उसे सुख-शान्ति और सतोष की प्राप्ति नही हो सकती। कवि बुधजन, ग्रन्थो मे यही प्रतिपादित करते हैं, कि भोगवादी

---

१ बाबू कामता प्रसाद हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास, प्रथम सस्करण, १९७७ पृ०स० १७, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

दृष्टिकोण सपन्न मानव सदा आकुलित रहता है और जब तक आकुलता है तब तक दुख है। स्वावलवी व्यक्ति केवल आत्म-गुणो का अवलवन करता है। स्व का अवलवन करना यानी आत्मगुणो का अवलवन करना और इनसे भिन्न राग द्वेषादि, शरीरादि, धनादि का अवलवन छोडना, यही सुखी होने की अव्यर्थ औषधी है। जैन सस्कृति का लक्ष्य ही जीव को स्वावलवी बनाना है।

मानव स्वावलवी कैसे बने, इसका रहस्योद्घाटन इसमे किया गया है। तत्व-चिंतन और जीवन-शोधन ये दो जैन साहित्य के मूलाधार है। आत्म-शोधन मे सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान के साथ सदाचार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन धर्म सदाचार, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप है। प्रत्येक आत्मा का स्वतत्र अस्तित्व है। प्रत्येक आत्मा-राग द्वेष एव कर्ममल से अशुद्ध है पर वह पुरुषार्थ से शुद्ध हो सकता है। प्रत्येक आत्मा परमात्मा बनने की क्षमता रखती है।

जैन दर्शन निवृत्ति प्रधान प्रवृत्ति मार्ग है। रत्नत्रय ही प्रवृत्ति मार्ग है। सात तत्वो की श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। आत्मा की तीन अवस्थाए होती हैं, (१) वहिरात्मा (२) अन्तरात्मा (३) परमात्मा[1]। जो शरीर और आत्मा को एक मानता है वह मिथ्यावादी, अज्ञानी वहिरात्मा है। जिसने शरीर आदि से भिन्न आत्मा को जाना है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा के उत्तम, मध्यम, जघन्य ऐसे तीन भेद किये गये है। अरहत एव सिद्ध जीव परमात्मा कहलाते हैं। यह मानव जीवन बडा ही दुर्लभ है। मानव जीवन की दुर्लभता एव उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध मे कवि का निम्न पद देखिये —

नरभवपाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो।
नाहक ममत ठानि पुद्‌गल सो, करम जाल क्यो परना हो ॥१॥
यह तो जड तू ज्ञान अरूपी, तिलतुषज्यो गुरु वरना हो।
रागद्वेष तजि, भज समता को, कर्म साथ के हरना हो ॥२॥
यो भवपाय विषय सुख सेना, गजचढि ईंधन ढोना हो।
बुधजन समुझि सेय जिनवर पद, जो भव सागर तरना हो ॥३॥
नर भव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो ॥

---

१. जिनवरदेवसिद्ध परमातम। सम्यक्ती सो अन्तर आतम।
बहिरातम मिथ्या अज्ञानी। त्रिविध आत्मा कहे सुज्ञानी ॥८२॥
बुधजन तत्वार्थबोध, पृ० सख्या २२, पद्य सख्या ८२, प्रकाशक कन्हैयालाल गंगवाल, लश्कर।

मानव। जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति है। उसकी प्राप्ति पूर्ण अहिंसक बनने पर ही हो सकती है।

कविवर बुधजन ने अपने साहित्य मे अनेक आध्यात्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तो का सरल भाषा मे वर्णन किया है। वे प्रमाण, नय और निक्षेप का अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ तत्वार्थबोध एव पचास्तिकाय भाषा मे बडी ही सूक्ष्मता एव स्पष्टता के साथ वर्णन करते हैं —

नय—प्रमाण द्वारा जाने गये पदार्थ के एक अ श को जानने वाला ज्ञान नय है।

प्रमाण—वस्तु के समस्त अ शो को जानने वाला ज्ञान प्रमाण है[1]।

नय को विशेष रूप से समझाते हुए कवि ने विविध दृष्टान्तो का प्रयोग किया है। वे नय के मुख्य दो भेद करते है–द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। द्रव्यार्थिक नय-द्रव्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिक एव पर्याय मात्र को विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय है। द्रव्यार्थिक नय के १० भेद हैं—(१) पर उपाधि-निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे—ससारी जीव सिद्ध के समान शुद्ध है (२) सत्ता-ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे जीव नित्य है। (३) भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे—द्रव्य अपने गुण पर्याय स्वरूप होने से अभिन्न है। (४) पर उपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे—आत्मा कर्मोदय से क्रोध, मान आदि भाव रूप है। (५) उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे—एक ही समय मे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप है। (६) भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, जैसे–आत्मा के ज्ञान दर्शन आदि गुण हैं। (७) अन्वय द्रव्यार्थिक नय, जैसे–द्रव्य गुण-पर्याय-स्वभाव है। (८) स्वचतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक नय, जैसे–स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा द्रव्य है। (९) परचतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक नय, जैसे पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा द्रव्य नही है (१०) परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय, जैसे-आत्मा ज्ञान स्वरूप है।

इसी प्रकार पर्यायार्थिक नय के ६ भेद बतलाये हैं १–अनादि नित्य पर्यायार्थिक। जैसे सुमेरुपर्वत आदि पुद्गल पर्याय नित्य है। २–सादि नित्य पर्यायार्थिक नय–जैसे सिद्ध पर्याय नित्य है। ३–उत्पादव्यय ग्राहक पर्यायार्थिक नय। जैसे पर्याय क्षण क्षण मे नष्ट होती है। ४–सत्ता सापेक्ष पर्यायार्थिक नय। जैसे–पर्याय एक

---

१ सकलदेश परमाण है। नय एक देश प्रमान।
विन सापेक्षानय मिथ्या, सापेक्षा सत्तिमान।
बुधजन. तत्वार्थबोध, पद्य स० २० पृ० स. १५ प्रकाशक/कन्हैयालाल गगवाल लश्कर, प्रकाशन।

ही समय मे उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप है। ५–पर उपाधि निरपेक्ष शुद्ध पर्यायार्थिक नय–जैसे ससारी जीवो की पर्याय सिद्ध भगवान के समान शुद्ध है। ६–पर उपाधि सापेक्ष अशुद्ध पर्यायार्थिक नय। जैसे–ससारी जीवो के जन्म मरण होते हैं।

सकल्प मात्र से पदार्थ को जानने वाला नैगम नय है। उसके तीन भेद हैं—१–भूत, २–भावी, ३–वर्तमान।

भूतकाल मे वर्तमान का आरोपण करना भूत नैगम नय है। जैसे दीपावली के दिन कहना कि–आज भगवान महावीर मुक्त हुए हैं। भविष्य का वर्तमान मे आरोपण करना भावी नैगम नय है। जैसे अर्हत भगवान को सिद्ध कहना। प्रारभ किये हुए कार्य को सम्पन्न हुआ कहना वर्तमान नैगम नय है। जैसे–चूल्हे मे अग्नि जलाते समय यो कहना कि मैं चावल बना रहा हू।

पदार्थों को सग्रहीत (इकट्ठे) रूप से जानने वाला सग्रहनय है। इसके दो भेद हैं–सामान्य सग्रह–जैसे समस्त पदार्थ द्रव्यत्व की अपेक्षा समान है। परस्पर अविरोधी हैं। २–विशेष सग्रह–जैसे समस्त जीव जीवत्व की अपेक्षा समान हैं। परस्पर अविरोधी हैं।

सग्रह नय के द्वारा जाने गये विषय को विधि पूर्वक भेद करके जानना व्यवहार नय है। इसके दो भेद हैं–सामान्य व्यवहार जैसे पदार्थ दो प्रकार के हैं १ जीव २ अजीव। विशेष व्यवहार नय–जैसे जीव दो प्रकार के है। १ ससारी, २ मुक्त।

वर्तमान काल को ग्रहण करने वाला ऋजुसूत्र नय है। इसके भी दो भेद हैं। १ सूक्ष्म ऋजु सूत्र। जैसे पर्याय एक समयवर्ती है। २ स्थूल ऋजु सूत्र। जैसे–मनुष्य आदि पर्याय को जन्म से मरण तक आयु भर जानना।

सख्या, लिंग आदि का व्यभिचार दूर करके शब्द के द्वारा पदार्थ को ग्रहण करना। जैसे–अभिन्न लिंग वाची दार (पु०) भार्या (स्त्री०) कलत्र (न०) शब्दो के द्वारा स्त्री का ग्रहण होना। एक शब्द के अनेक अर्थ होने पर भी किसी प्रसिद्ध एक रूढ अर्थ को ही शब्द द्वारा ग्रहण करना। जैसे–गो शब्द के पृथ्वी वाणी, कटाक्ष, किरण, गाय आदि अनेक अर्थ हैं फिर भी गो शब्द को ही जानना।

शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार उसी क्रिया मे परिणत पदार्थ को उस शब्द द्वारा ग्रहण करना एवमूत नय है। जैसे गच्छति इति गो (जो चलती हो सो गाय है) इस व्युत्पत्ति के अनुसार चलते समय ही गाय को गो शब्द से जानना एवमूत नय है।

नय की शाखा को उपनय कहते हैं। उपनय के ३ भेद हैं–१ सद्भूत व्यवहारनय २ समद्भूत व्यवहारनय ३ उपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

सद्भूत व्यवहारनय के दो भेद हैं–१ शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय–जो शुद्ध गुण गुणी, शुद्ध पर्याय पर्यायी का भेद कथन करे जैसे सिद्धो के केवल ज्ञान दर्शन आदि गुण हैं।

२-अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय जो अशुद्ध गुण गुणी तथा अशुद्ध पर्याय पर्यायी का भेद वर्णन करे—जैसे ससारी आत्मा की मनुष्य आदि पर्याय है।

असद्भूत व्यवहार नय के ३ भेद हैं—१ स्वजाति असद्भूत व्यवहारनय—परमाणु बहुप्रदेशी है। २ विजाति असद्भूत व्यवहारनय—जैसे मूर्ति। मतिज्ञान मूर्तिक पदार्थ से उत्पन्न होता है ऐसा कहना। ३ स्वजाति विजाति असद्भूत व्यवहारनय जैसे ज्ञेय (ज्ञान के विषयभूत) जीव अजीव मे ज्ञान है क्योंकि वह ज्ञान का विषय है ऐसा कहना।

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के भी ३ भेद है। १ स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार—जैसे पुत्र, स्त्रीआदि मेरे हैं। २ विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय—जैसे मकान, वस्त्र आदि पदार्थ मेरे हैं। ३ स्वजाति विजाति उप-चरित असद्भूत व्यवहार—जैसे नगर-देश मेरा है। नगर मे रहने वाले मनुष्य स्वजाति (चेतन) हैं। मकान वस्त्र आदि विजाति (अचेतन) हैं।

नय के दो भेद और भी किये गये है—१ निश्चय २ व्यवहार। जो अभेदोपचार से पदार्थ को जानता है वह निश्चयनय है—जैसे आत्मा शुद्ध, बुद्ध, निरजन है। जो भेदोपचार से पदार्थ को जानता है वह व्यवहारनय है जैसे जीव के ज्ञान आदि गुण हैं।

प्रकारान्तर से भी कवि ने इन दोनो नयो का स्वरूप बताया है।

जो पदार्थ के शुद्ध अ श का प्रतिपादन करता है वह निश्चय नय है, जैसे जो अपने चेतन प्राण से सदा जीवित रहता है वह जीव है। जो पदार्थ के मिश्रित रूप का प्रतिपादन करता है वह व्यवहारनय है। जैसे—जिसमे इन्द्रिय ५, बल ३, आयु और श्वासोच्छ्वास ये यथायोग्य १० प्राण पाये जाते हैं, या जो इन प्राणो से जीता है वह जीव है।

वस्तुत नय आशिक ज्ञान रूप है अत वे सभी सत्य होते है जबकि वे अन्य नयो की अपेक्षा रखते हैं। यदि वे अन्य नयो की अपेक्षा न रखें तो वे मिथ्या कहलाते हैं। कहा भी है "सापेक्ष्य नय सत्य होते है और निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं।[1]

प्रयोजन-दोनो नयो का प्रयोजन आत्मा को जानने का है जैसे शरीर मे आख, नाक, कान दो-दो है पर जिव्हा जिससे स्वाद लेते हैं वह एक ही है। आत्मानुभव के समय तत्वो का स्वाद लेने मे दोनो नयो की अपेक्षा नही है। एक नय वस्तु स्वरूप को नही बताता। निश्चयनय केवल एक नय है और व्यवहार नय भी एक नय है अत किसी भी नय के प्रति पक्षपात नही करना चाहिए। नय छोडना नही पडते, छूट जाते हैं। अत' नयो के विषय मे पक्षपात करना या उन्हे विवाद का विषय बनाना उचित नहीं।

सप्ततत्व एव षट्द्रव्य

सप्ततत्व–विवेचन मे अन्य दार्शनिको की भाति कविवर बुधजन ने भी इनका सूक्ष्म एव विशद विवेचन किया है—कवि ने तत्वार्थवोध मे पृष्ठ सख्या २६ से पृष्ठ सख्या ५२ तक उपरोक्त विषय का ही स्पष्टीकरण किया है।

'जीव, अजीव, आश्रव, वघ, सवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्व हैं। इनका श्रद्धान करने वाला सम्यग्दृष्टि है।[1]'

इन तत्वो की यथार्थता के सम्बन्ध मे डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं —'यह यथार्थ है कि जैन दर्शन का विकास मात्र तत्वज्ञान की भूमि पर न होकर आचार की भूमि पर हुआ है। जीवन शोधन की व्यक्तिगत मुक्ति प्रक्रिया और समाज तथा विश्व मे शान्ति स्थापना की लोकेपरणा का मूलमत्र अहिंसा है अत मुमुक्षु के दु खो से निवृत्ति प्राप्त करने के लिये तत्वज्ञान की आवश्यकता है। प्रयोजनीभूत तत्व सात हैं —(१) जीव (२) अजीव (३) आश्रव (४) वध (५) सवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष। पुण्य और पाप ये दोनो वन्धतत्व ही के अन्तर्गत होने के कारण प्रथक् तत्व रूप मे परिगणित नही हैं। इनको अलग मानने से नो पदार्थ हो जाते हैं[2]।' जीव तत्व-जो भूतकाल मे जीता था, वर्तमान मे जीता है और भविष्य काल में जीता रहेगा, जिसका कभी नाश नही होना। जैसे अग्नि मे उष्णता है उसी प्रकार जीव मे चेतना गुण है। वह चेतना गुण कवि बुधजन के विचार से तीन प्रकार का होता है– १ ज्ञान चेतना, २ कर्म चेतना, ३ कर्मफल चेतना।

सिद्ध आत्माओ मे एव सम्यग्दृष्टि जीवो मे ज्ञान चेतना पाई जाती है। राग द्वष की प्रधानता वाले त्रस जीव कर्म चेतना सम्बन्ध वाले है तथा स्थावर जीव कर्म-फल चेतना युक्त हैं। वह अमूर्तिक है। चेतनागुण सयुक्त है। कर्ता है, भोक्ता है, शरीर प्रमाण है, ऊर्ध्वगामी और उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य युक्त है। आत्मा (जीव) मे वीतरागता, चेतना, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुण विद्यमान हैं। पर–सयोग से राग, द्वेष, तृष्णा, दु ख आदि विकार आत्मा मे निहित हैं। अत आत्मा के यथार्थ स्वरूप द्वारा ही विकारी और पर सयोगी प्रवृत्ति को दूरकर उसे शुद्ध और निर्मल वनाया जा सकता है।

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त ने जीव तत्व का विश्लेषण करते हुए लिखा है.— 'यह स्मरणीय है कि जैनो के अनुसार आत्मा (जीव) जिस शरीर मे रहती है, उसे पूर्ण रूप से व्यापती है। परिणामत मस्तक के बाल के अग्रभाग से पैर के नाखून

---

१ जीव अजीव आश्रवाबध, सवर निर्जर मोक्ष समंध।
सातत्व इनका सरधान, सो नर सम्यक् दर्शनवान ॥
बुधजन तत्वार्थबोध पृ० सख्या २६ पद्य सख्या ११३

२ उमास्वामी : तत्वार्थसूत्र, प्र० अध्याय।

तक जहा कही भी इन्द्रियक ज्ञान का कारण होता है, वह (आत्मा) उसका तुरन्त अनुभव कर लेती है[1]।'

मुख्य बात यह है कि जैन दर्शन में बहुजीववाद स्वीकार किया गया है तथा प्रत्येक जीव की स्वतत्र सत्ता स्वीकार की गई है।

अजीव द्रव्य के पाच भेद हैं —पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि गुणों से युक्त है वह पुद्गल है। यह स्कध अवस्था में पूरण-गलन क्रिया रूप होता रहता है। समस्त दृश्य जगत् इसी का विस्तार है। शब्द, बध, सूक्ष्म, स्थूल, सस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत, आतप से सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें (दशाए) हैं[2]। पुद्गल परमाणु स्वभावतः क्रियाशील है। उसकी गति-तीव्र, मन्द, मध्यम, अनेक प्रकार की होती है। शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अपान, श्वासोच्छ्वास आदि पुद्गल से ही निर्मित हैं। धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य-जीव और पुद्गल के समान धर्म और अधर्मद्रव्य भी दो स्वतत्र द्रव्य हैं। इनका अर्थ पुण्य-पाप नहीं है। धर्मद्रव्य गतिरूप परिणमन करने वाले जीव और पुद्गलो को गमन मे सहायक होता है और अधर्मद्रव्य ठहरते हुए पुद्गल और जीवो को ठहरने मे सहायक हैं। ये दोनों द्रव्य लोकाकाश के बराबर हैं। रूप, रस, गध, स्पर्श और शब्द से रहित होने के कारण अमूर्तिक और निष्क्रिय हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है। लोक और अलोक का विभाग इन दोनो द्रव्यों के सद्भाव का फल है।

यह द्रव्य समस्त अजीवादि द्रव्यो को अवगाह स्थान देता है। अर्थात् जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म, कालादि समस्त पदार्थ युगपत जिसमे अवकाश प्राप्त करते हैं, वह आकाश है। यह निष्क्रिय और रूप, रस, गध, स्पर्श एव शब्दादि से रहित होने के कारण अमूर्तिक है। अवकाश दान ही इसका असाधारण गुण है। पुद्गल का एक परमाणु जितने आकाश को रोकता है, उसे प्रदेश कहते हैं। इस प्रमाण से

---

1 It is well remembrance that according to the Jain's the sound occupies the whole of the body in which it lives, so that from the tip of the hair to the nail of the foot, where ever there may be any cause of sensation, It can atonea feel it.

A history of Indian Philosophy Cambridge University press, 1938 P 189

२ सद्दोबधो सुहमो, थूलो स ठाण भेदतम छाया।
उज्जोदादव सहिया, पुग्गल दव्वस्स पज्जाया॥

आचार्य नेमिचन्द्र, द्रव्यसंग्रह, गाथा क्रमाक १६, पृ०सं० १२ वि०स० २०३३ प्रका० हस्तिनापुर।

आकाश अनन्त प्रदेशी है। इसके दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। कुछ दार्शनिको ने दिशा को स्वतत्र द्रव्य माना है परन्तु जैन दार्शनिको ने दिक् द्रव्य का अन्तर्भाव आकाश द्रव्य मे ही कर लिया है।

काल द्रव्य

समस्त द्रव्यो के उत्पादादि रूप परिणमन मे सहकारी कालद्रव्य होता है। इसका लक्षण वर्तना है। यह स्वय परिवर्तन करते हुए अन्य द्रव्यो के परिवर्तन मे सहकारी होता है और समस्त लोकाकाश मे घडी, घटा, पल, दिन, रात आदि व्यवहार मे निमित्त होता है। यह भी अन्य द्रव्यो के समान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है, अमूर्तिक है। 'प्रत्येक लोकाकाश के प्रदेश पर एक-एक कालाणु अपनी स्वतत्र सत्ता बनाये हुए है। धर्म और अधर्म द्रव्य के समान यह लोकाकाश व्यापी एक द्रव्य नही है, क्योकि प्रत्येक आकाश प्रदेश पर एक एक कालाणु अवस्थित है। कालद्रव्य के दो भेद है—निश्चयकाल और व्यवहारकाल[1]।'

(३) आस्रव तत्व

'कर्मो के आने के द्वार को आश्रव कहते है[2]।' जिस प्रकार द्वार से हम गृह मे प्रवेश करते हैं उसी प्रकार जिस मार्ग मे आत्मा मे कर्मो का आगमन होता है उसे आश्रव कहते हैं। योग के निमित्त से (मन, वचन, काय) आत्मा मे पुद्गलो का आगमन होता है। इसके दो भेद हैं। भावाश्रव और द्रव्याश्रव। जिन भावो से कर्मो का आश्रव होता है उन्हे भावाश्रव और कर्म का आना द्रव्याश्रव कहलाता है।

(४) दो पदार्थो के विशिष्ट सम्बन्ध को बन्ध कहते हैं। बन्ध दो प्रकार का है—एक भाव बन्ध और दूसरा द्रव्य बन्ध। जिन राग द्वेप और मोह आदि विकारी भावो से कर्मो का बन्धन होता है, उन भावो को भावबन्ध कहते हैं और कर्मपुद्गलो का आत्म-प्रदेशो से सम्बन्ध होना द्रव्य बध कहलाता है। आत्मा और कर्म के प्रदेशो का परस्पर मिलकर एक क्षेत्रावगाह रूप होना बधतत्व है[3]।

(५) सवरतत्व

जिन द्वारो से कर्मो का आश्रव होता था, उन द्वारो का निरोध करना सवर-तत्व है। आश्रव योग से (मन, वचन, काय की चचलता) होता है, अत योग को रोकना ही सवरतत्व है।

---

१ लोयायास पदेसे इक्केक्के जेठिया हु इक्वेक्का
रयणाण रासीमिव ते कालाणू असंख दव्वाणि।
नेमिचन्द्र आचार्य : द्रव्यसग्रह, गाथा साख्या २२ पृ० साख्या १६, हस्तिनापुर (मेरठ) प्रकाशन।

२. पूज्यपाद आचार्य : सर्वार्थसिद्धि, प्र० अ० सूत्र १।

३. पूज्यपाद आचार्य सर्वार्थसिद्धि अ० १, सूत्र १।

(६) निर्जरातत्व

पूर्वबद्ध कर्मों को थोडा-थोडा नष्ट करना निर्जरा है। यह दो प्रकार की है— अविपाक और सविपाक। व्यक्ति अपने पुरूषार्थ से अपने सचित कर्मों को उदयावस्था को प्राप्त हुए विना ही नष्ट कर सकता है। यह सवर पूर्वक होती है और सवर पूर्वक सम्पन्न होने वाली निर्जरा ही मुक्ति का कारण है। इसे अविपाक निर्जरा कहते हैं। कर्मों की स्थिति पूरी होने पर जव वे उदय मे आते हैं और उनका फल भोग लिया जाता है तव वे निर्जीर्ण हो जाते हैं, वह सविपाक निर्जरा है। ये दोनो भेद भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा दोनो मे ही अन्तर्भूत हो जाते हैं।

(७) मोक्षतत्व

"समस्त कर्म वन्धनो का आत्मा से पृथक् हो जाना मोक्षतत्व है[1]।" आत्मा का जो परिणाम सभी कर्मों के क्षय मे हेतु है, वह परिणाम भावमोक्ष कहलाता है और आत्मा से सर्व कर्मों का क्षय हो जाना द्रव्य मोक्ष है। इस प्रकार मोक्षतत्व के भावाश्रव एव द्रव्याश्रव ऐसे दो भेद हैं।

कर्म-सिद्धान्त

समस्त लोक मे कर्मवर्गणा जाति के असख्य सूक्ष्म परमाणु (Matter) भरे हुए हैं जिनमे फलदान करने की शक्ति है जीवात्मा का स्वभाव निश्चल और निष्कप रहने का है किन्तु जिस समय वह मन वचन काय के द्वारा अपने स्वभाव के विपरीत कुछ भी क्रिया करता है तो उसके आत्म-प्रदेशो मे हलन-चलन की क्रिया होती है। जीवात्मा मे होने वाले इस अस्थायी कर्म से लोक मे भरे हुए कर्म प्रदेश उसी प्रकार आकर्षित होते हैं जिस प्रकार आग मे तपा हुआ लोहे का गोला पानी मे पड जाने पर पानी को शीघ्र अपनी ओर खीचता है। इस प्रकार कर्म वर्गणाएं आत्मा मे आती तो हैं किन्तु यदि आत्मा मे क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय रूप गोद विद्यमान होता है तब तो वे वहा आकर चिपक जाती हैं (एक क्षेत्रावगाही हो जाती है, अन्यथा वहा से निकलकर चली जाती है। कषाय तेज होगी तो कर्म-वर्गणाए अधिक समय के लिये वधेगी।

इस प्रकार पुद्गल कर्म-वर्गणाओ द्वारा फल का दिया जाना, ईश्वर या यमराज या धर्मराज जैसी किसी शक्ति का फल से सम्बन्ध न वतलाकर कर्म सिद्धान्त को वैज्ञानिक रूप मे उपस्थित करना कविवर वुधजन की वहुत वडी विशेषता थी।

कवि ने आत्मा के साथ वधने वाले कर्मों की स्थिति ४ प्रकार की वतलाई है। १ प्रकृतिवध, २ प्रदेशवध, ३ स्थितिवध और ४ अनुभागवध। वन्ध को प्राप्त

---

१ पूज्यपाद आचार्य · सर्वार्थसिद्धि, अध्याय १, सूत्र ४।

होने वाले कर्म परमाणुओ मे अनेक प्रकार का स्वभाव पडना प्रकृतिवध है। उनकी सख्या का नियत होना प्रदेशवध है। उनमे काल की मर्यादा का पडना कि अमुक समय तक जीव के साथ वधे रहेगे, स्थिति वध है और फल देने की शक्ति का उत्पन्न होना अनुभाग वन्ध है। कर्मों मे अनेक प्रकार के स्वभाव का पडना तथा उनकी सख्या का हीनाधिक होना योग पर निर्भर है। इस तरह "प्रकृतिवध और प्रदेश वन्ध तो योग से होते हैं तथा स्थिति वन्ध अनुभाग वन्ध कषाय से [1]।"

"प्रकृतिवध के आठ भेद हैं[2]।" ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ज्ञानावरण कर्म जीव के ज्ञानगुण को घातता है। इसके कारण कोई अल्पज्ञानी और कोई विशेष ज्ञानी होता है। ज्ञानावरण के ५ भेद है मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्यय ज्ञानावरण और केवल ज्ञानावरण। दर्शनावरण कर्म जीव के दर्शन गुण को आच्छादित करता है। दर्शनावरण के नौ भेद हैं। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि।

जीव को सुख दुख का वेदन—अनुभव वेदनीय कर्म के उदय से होता है। वेदनीय कर्म के दो भेद है—सातावेदनीय और असातावेदनीय, "निजआत्मा मे, पर आत्मा मे या उभय आत्माओ मे स्थित दु ख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिवेदन ये असातावेदनीय कर्म के आश्रव है। प्राणि-अनुकपा व्रति अनुकपा दान, सराग-सयम आदि का उचित ध्यान रखना तथा शान्ति और शौच ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव हैं[3]।" जीव को मोहित करने वाला कर्म मोहनीय कहलाता है। इसके दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय जीव को सच्चे मार्ग पर चलने नही देता है। इसके २८ भेद हैं। कविवर बुधजन ने इन्हे अपने साहित्य मे भली भाति विवेचित किया है जिन्हे "तत्वार्थवोध," "पचास्तिकाय" भाषा आदि ग्र थो से भली भाति जाना जा सकता है। "कषाय के उदय से होने वाला आत्म का तीव्र परिणाम-चारित्र मोहनीय कर्म का आश्रव है।[4]"

जो निश्चित समय तक जीव को नर नारकादि पर्यायो मे रोके रखता है वह आयु कर्म है। इसके चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु वह

---

१. जोगापयडिपदेशा ठिदि अणुभागा कषायदो होंति।
नेमिचन्द्र आचार्य द्रव्य सग्रह : गाथा सख्या ३३, पृ० सख्या २२ प्रकाशक दि० जैन त्रिलोक शोध सस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ)

२ कवि वीतनन्दि · चन्द्रप्रभ चरित्र : सर्ग १८, श्लोक ९८।

३. उमास्वामी तत्वार्थसूत्र ; अध्याय ६, सूत्र सं० १२

४ उमास्वामी तत्वार्थसूत्र ; अध्याय ६, सूत्र सं० १४

आरभ और परिग्रह का भाव नरकायु के आश्रय, माया तिर्यंचायु के आश्रव, अल्प आरभ और अल्प परिग्रह का भाव मनुष्यायु के आश्रव, एव सराग-सयम, सयमा-सयम, अकाम निर्जरा और वालतप देवायु के आश्रव के हेतु हैं। जिसके कारण शरीर और अ गोपाग आदि की रचना हो, वह नामकर्म है। नामकर्मके ४२ भेद है। जिसके निमित्त से जीव उच्च या नीच कुल मे जन्म लेता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—उच्च गोत्र और नीच गोत्र। "परनिन्दा, आत्म-प्रशसा, दूसरो के अच्छे गुणो का आच्छादन और उनके दुर्गुणो का उद्भावन नीच गोत्र के आश्रव के हेतु हैं एव पर प्रशसा, आत्म-निन्दा, नम्रवृत्ति, और अभिमान का अभाव या कमी ये उच्च गोत्र के आश्रव के कारण हैं[1]।"

इच्छित वस्तु की प्राप्ति मे वाधा उत्पन्न करने वाला कर्म अन्तराय है इसके पाच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय और उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय। दानादि मे विघ्न उत्पन्न करना अन्तराय कर्म के आस्रव का हेतु है।

उपरोक्त आठो कर्मों की उत्कृष्ट एव जघन्य स्थिति का वर्णन भी कवि ने किया है। कर्मों के सिद्धान्त के विश्लेषण मे कवि ने जैनाचार्य उमास्वामी के तत्वार्थसूत्र को अपना आधार वनाया है। जीव कर्मों को कब और कैसे बाधता है और उनका वटवारा कैसे होता है इत्यादि वातो पर भी कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्र थ "तत्यार्थवोध" मे प्रकाश डाला है। वन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, सत्ता, उदय, उदी-रणा, सक्रमण, उपशम, निधत्ति, और निकाचना कर्मों की इन मुख्य दस अवस्थाओ का वर्णन भी कवि ने किया है। इस प्रकार सक्षेप मे कर्म सिद्धात का निरूपण कविवर बुधजन ने अपने साहित्य मे किया है।

जैन दर्शन के अन्यान्य विषय ज्ञान मीमासा और स्याद्वाद के वर्णन भी अपनी रचनाओ मे कवि ने किये है। आत्मोत्थान की भूमिका के रूप मे चतुर्दश गुणस्थानो का भी उल्लेख कवि ने अपने साहित्य मे किया है।

(३) गीतिकाव्य के विकास मे बुधजन का योग

भारतीय गीतिकाव्य का प्रारभ वैदिक युग से माना जाता है। गीतिकाव्य मे सगीत की प्रधानता होती है। इसीलिये विद्वानो ने लयात्मक ध्वनि को गीत कहा है। सगीत हृदय में रहने वाले सत्य का व्यस्त रूप है। वह अखड होता है। वाहर से देखने में वह अनेक प्रकार का दिखाई देता है, परन्तु मूल मे वह एक ही है। वह अन्तर का अव्यक्त सत्य ही गीतिकाव्य का प्रेरणास्रोत है। समस्त गीतिकार सभवत उसी से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

गीतिकाव्यो मे जो भिन्नता मिलती है, वह स्थूल जगत् के प्रभाव का परि-णाम है। अन्तर मे व्याप्त उस तत्व मे अनेकता नही हो सकती। जैसे सस्कृति का

---

१ उमास्वामी तत्वार्थसूत्र ; अध्याय ६, सूत्र स० २५-२६
दि० जैन पुस्तकालय, सूरत।

वाह्य रूप देशकाल और वातावरण के प्रभाव मे विभिन्न प्रकार का दिखाई देता है उसी प्रकार भाषा तथा शैली आदि के कारण गीतिकाव्य के बाहरी रूप मे भिन्नता दिखाई देती है। परन्तु वस्तुत उसमे भिन्नता नही है। इसलिये यह आवश्यक है कि हम विभिन्न देश और काल तथा विभिन्न दार्शनिक विचारो से प्रभावित गीतिकारो के मौलिक तत्वो तथा उनकी कलात्मक विशेषताओ का तुलनात्मक विचार करें। गीतिकाव्य लोक काव्य है। उसे हम जनता का साहित्य भी कह सकते हैं। उसमे भावो की अभिव्यक्ति होती है तथा सगीत भी रहता है।

सस्कृति साहित्य की भाति हिन्दी साहित्य मे गीतिकाव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। जैन कवियो ने सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ मे भी अनेक सरसगीत लिखे है। जिनमे प्रेम, विरह, विवाह, युद्ध और अध्यात्म-भावना की सुन्दर अभिव्यजना हुई है। इनमे सगीत है, रागात्मकता है और लय है और इसी दृष्टि से ये गीत रचे गये हैं।

"कविवर बुधजन" ने हिन्दी साहित्य को लावनी भजन और पद आदि के रूप मे विपुल सामग्री प्रदान की है। विषय की दृष्टि से "बुधजन" के गीतो एव पदो को अध्यात्म, नीति, आचार, वैराग्य, भक्ति स्वकर्त्तव्य निरूपण, आत्म-तत्व की प्रेयता और शृ गार-भेदो मे विभक्त किया जा सकता है। प्राय सभी पदो मे आत्मालोचन के साथ मन, शरीर और इन्द्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति का निरूपण कर मानव को सावधान किया है।

गीतिकाव्य मे निम्न चारो तत्वो का रहना आवश्यक है। ये सभी गुण बुधजन की रचनाओ मे पाये जाते हैं।

(१) सगीतात्मकता (२) किसी एक भावना या अनुभूति की अभिव्यक्ति (३) आत्मदर्शन और आत्मविद्या (४) वैयक्तिक अनुभूति की गहराई के साथ गेयता।

कवि ने अपने अन्तर्मन से जो प्रेरणा प्राप्त की, उसी को अपने पदो मे अभिव्यक्त किया है। आत्म-चेतना की जागृति उनके पदो का प्राण है। आत्मानुभूति को लयपूर्ण भाषा मे व्यक्त करना ही उनका उद्देश्य है। कविवर बुधजन ने विलावल राग को धीमी ताल पर अत्यन्त सुन्दर ढग से गाया है। उनके इस पद मे केवल भाषा की तडक-भडक ही नही है, किन्तु छन्द और लय का सामजस्य भी है। उन्होने निम्नलिखित पद मे गहरी आत्मानुभूति का परिचय दिया है। कवि का मन और प्राण शान्ति-प्राप्ति के लिये कितना छटपटा रहा है? देखिये—

"हो मनाजी थारी वानि बुरी छै दुखदाई।
निज कारज मे नेकु न लागत, परसो प्रीति लगाई ॥१॥
या स्वभाव सो अतिदुख पायो, सो अब त्यागो भाई ॥२॥
"बुधजन" औसर भाग न पावे, सेवो श्री जिनराई ॥३॥

कवि ने आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करने के लिये कोमलकान्त पदावली मे अपनी कमनीय अनुभूतियो की मार्मिक अभिव्यजना की है। कविवर बनारसीदास ने 'चेतन तू तिहु काल अकेला' कहकर पदो मे अनुभूति की जैसी अभिव्यजना की है, वैसी ही "बुधजन" की गीतियो मे उपलब्ध है। उनके पदो मे अन्तर्दर्शन की प्रवृत्ति की प्रधानता है। शब्द-सौंदर्य और शब्द-सगीत भी सभी पदो मे सुनाई पडता है। भजन और पद रचने मे बुधजन का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके पदो मे अनुभूति की तीव्रता, लयात्मक सवेदन शीलता और समाहित भावना का पूरा अस्तित्व विद्यमान है। आत्म शोधन के प्रति जो जागरूकता उनमे है, वह कम कवियो मे उपलब्ध होगी। कवि के विचारो की कल्पना और आत्मानुभूति की प्रेरणा पाठको के समक्ष ऐसा चित्र उपस्थित करती है, जिससे पाठक अनुभूति मे लीन हुए-विना नही रह सकता।

तात्पर्य यह है कि उनकी अनुभूति मे गहराई है, प्रवलवेग नही। अत उनके पद पाठको को डूबने का अवसर देते है, वहने का नही। समार रूपी मरुभूमि की वासना रूपी बालुका से तप्त कवि, शान्ति चाहता है, वह अनुभव करता है कि मृत्यु का सम्बन्ध जीवन के साथ है। जीवन की प्रकृति मृत्यु है। मृत्यु हमारे सिर पर सदा विद्यमान है। अत प्रतिक्षण प्रत्येक व्यक्ति को सतर्क रहना चाहिये। इस विषय मे कवि गुनगुनाता हुआ कहता है—

काल अचानक ही ले जायगा, गाफिल होकर रहना क्या रे ॥१॥
छिनहू तोकू नाहि वचावे, तो सुमरन का रखना क्या रे ॥२॥
रचक स्वाद करन के काजे, नरकन मे दु ख भरना क्या रे ॥३॥
कुल जन, पथिक जनन के काजे, नरकन मे दुख भरना क्या रे[1] ॥४॥

आत्म-दर्शन हो जाने पर कवि ने आत्मा का विश्लेषण एक भावुक के नाते बडा ही सरस और रमणीय किया है—

"मैं देखा आतमरामा"

रूप-फरस-रस गध तें न्यारा, दरस ज्ञान-गुन धामा।
नित्य निरजन जाके नाही, क्रोध-लोभ-मद-कामा ॥१॥
भूख-प्यास, सुख-दु ख नहि जाके, नाही वनपुर ग्रामा।
नहि साहव नहि चाकर भाई, नहीं तात नहि भामा ॥२॥
भूल अनादि थकी जग भटकत, ले पुद्गल का जामा।

---

१ बुधजन हिन्दी पद सग्रह, पृ० १९४, सपा० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल, महावीर भवन, जयपुर, प्र० सस्करण, मई १९६५।

'बुधजन' सगति की गुरू की तें, मैं पाया मुझ ठामा ।।३।।[1]

"वुधजन" के गीत्यात्मक पदो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

(१) भक्ति-परक या प्रार्थना-परक ।

(२) तथ्य निरूपक या दार्शनिक ।

भगवद् भक्ति के विना जीवन विपय भोगो मे ही व्यतीत हो जाता है। विपयी प्राणी तप, घ्यान, भक्ति, पूजा आदि मे अपना चित्त नही लगाते । उन्हें पर-परणति ही श्रेयस्कर प्रतीत होती है । यदि वह भगवद् भक्ति मे लग जाय तो उसके सम्पूर्ण दु ख दूर हो सकते हैं तथा आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है । विषयासक्त प्राणी यह सोचता है कि भक्ति या धर्म आदि कार्य तो वृद्धावस्था मे करेंगे, परन्तु उसे यह घ्यान रखना चाहिये कि जव तक शरीर मे शक्ति है तभी तक भगवद् भक्ति की जा सकती है । अत शरीर के स्वस्थ रहते–हुए प्रभु–भजन अवश्य करना चाहिये । कवि इसी तथ्य को निम्न पद मे अभिव्यक्त कर रहा है—

'भजन विन यो ही जनम गमायो ।
पानी पेल्या पाल न वाधी, फिर पीछे पछतायो ।। १।।
रामा मोहभये दिन खोवत, आशा-पाश वधायो ।
जप-तप-सजम, दान न दीना, मानुष जनम हरायो ।।२।।
देह-सीस जब कापन लागी, दसन चलाचल थायो ।
लागी आगि वुझावन कारन, चाहत कूप खुदायो ।।३।।
काल अनादि भ्रमायो, भ्रमता कवहु न थिर चित जायो ।
'हरि' विपय सुख, भरम भुलानो, मृग तृष्णा वश धायो[2] ।।४।।

कवि के पदो मे सगीत और लय के साथ प्रवाह एव भाव भी विद्यमान है । कवि के समस्त पदो मे भक्ति की उत्कटता और आत्म-समर्पण की भावना होने से अभिव्यजना शक्ति विद्यमान है जो उनके समस्त पदो को गीति-काव्य की परिधि मे लाते हैं ।

कविवर वुधजन ने तथ्य-निरूपक या दार्शनिक पद भी लिखे हैं, पर उनमे दार्शनिक दुरूहता नही आने पाई है । नीति विषयक और दार्शनिक पदो मे कवि ने जैनागम के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है । वे दुरूहता से वचते रहे हैं । उनकी

---

१ बुधजन हिन्दी पद सग्रह पृ० स० १६१, सपा० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल, महावीर भवन, जयपुर, प्र० सस्करण मई १६६५ ।

२ बुधजन. बुधजन विलास, पद्य सख्या २१, पृष्ठ स० ११, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, १६१/१ हरीसन रोड, कलकत्ता ।

भाषा मे भावानुकूल माधुर्य है और सरलता व सक्षिप्तता आदि गुण भी पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान हैं।

कवि ने अपने पदो मे कनडी, आसावरी, सारग, भैरवी, रामकली, सोरठ, झझोटी, विहाग, विलावल, मालकोष, केदारो, माढ, स्यालतमाशा, जगला, भैरू, वरवा, टोडी, उझाज, जोगी रासा, काफी होरी, दीपचदी, चोचालो, लावनी, होरी, दीपकचदी, चर्चरी, वसत, कल्याण, मालकोष, ढाल होली, परज, वसत।

विद्यापति, सूर, मीरा, घनानन्द आदि प्राचीन कवियो के गीतो के अवलोकन से यह वात स्पष्ट होती है कि हिन्दी मे गीतो की परपरा बहुत पुरानी है। बुधजन के गीत उनकी आन्तरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओ का उद्‌घाटन करते हे। इनमे से विद्यापति हिन्दी गीतिकाव्य की परपरा के विकास मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनके काव्य मे गीतिकाव्य की सभी विशेषताए समाविष्ट हुई है। मानव-प्रणय की विभिन्न वैयक्तिक अनुभूतियो की सुन्दर व्यजना इनके काव्य मे हुई है। अत विद्यापति हिन्दी के प्रथम गीतकार ठहरते हैं।

(४) विद्यापति और बुधजन

विद्यापति वस्तुत सक्रमण के प्रतिनिधि कवि हैं। वे दरवारी कवि होते हुए भी जन-कवि हैं। शृगारिक होते हुए भी भक्त हैं। शैव, शाक्त या वैष्णव होते हुए भी श्रेष्ठ कवि हैं। जीवन के अन्त मे वे मुक्त हो गये थे। उन्होंने कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी रचनाए की हैं। उन्होने राधा-कृष्ण के प्रेम मे सामान्य जनता के सुख-दुःख, मिलन-विरह को अकित किया है। विद्यापति की दृष्टि मे प्रेयतत्व ही काम्य है। उनके लिये मनुष्य से वडा अन्य कोई पदार्थ नहीं है। उन्होने मानव-मन के उच्च धरातल को अभिव्यक्ति दी है। ऐसी रचनाओ मे ही मानव-धर्म अभिव्यक्ति पाता है। कवि इस स्थिति मे धर्मों के सकुचित घेरे को तोडकर, देश-काल-निरपेक्ष साहित्य की सृष्टि करता है। ऐसे साहित्य मे मानवीय-जीवन के अभ्युदय एव नि श्रेयस् की वातें दिखाई पडती हैं। विद्यापति की कतिपय रचनाओ मे मानव-धर्म की व्याख्या मिलती है। उनकी रचनाओ मे भक्ति का निखरा हुआ रूप दिखाई पडता है, जहा भक्त एक ओर तो अपने आराध्यदेव के महत्व की ओर दूसरी ओर अपने लघुत्व की पूर्ण अनुभूति करने लगता है। यही वह स्थिति है, जिसमे उसकी आत्म-शुद्धि होती है।

जब वह अपने उपास्य मे अनत शक्ति का सामर्थ्य देखता है, तब उसे अपनी दीनता और असमर्थता का ज्ञान होता है। उसके हृदय से अहभाव दूर हो जाता है। वह आत्म-समर्पण करता है—अपने दोषो को अपने उपास्य के सामने खोल-खोल कर गिनाता है। उसे जितना आनन्द अपने उपास्य के महत्व वर्णन मे आता है, उतना ही अपने दोषो के वर्णन मे भी। इस आशय के पद विद्यापति की पदावली मे अनेक पाये जाते हैं। निम्न पद दृष्टव्य हैं —

"हरि जनि विसरब मो ममिता ।
हम नर अधम परम पतिता ॥
तुअ सन अधम-उधार न दूसर ।
हम सन जग नहि पतिता ॥
जम के द्वार जवाब कौन देव ।
जखन बुझत, निजगुनकर वतिया[1] ॥

अर्थ- हे शकर, मैं अत्यन्त नीच और परम पापी मनुष्य हू । अत मेरे प्रति अपनी ममता भुला न देना । मुझ पर प्रेमभाव बनाये रखना । आपके समान पतित-उद्धारक अन्य नही है और जगत् मे मेरे समान अन्य कोई पापी नही है, जब मेरा मरण होगा, तव यमराज के द्वार पर जाकर क्या उत्तर दूगा ? उस समय आप ही मेरी रक्षा करने मे समर्थ हैं । आप अशरण को शरण देने वाले हैं । मैं आपके चरणो मे मस्तक झुकाता हू । कृपया मुझ पर दया कीजिये ।

उपरोक्त पद्य मे विद्यापति ने अपने हृदय की उत्कृष्ट भक्ति प्रकट की है । इसे भक्ति की परमावस्था कहते हैं । अपनी हीनता और अपने उपास्य की महानता का वर्णन करना ही श्रेष्ठ भक्ति है । सूर और तुलसी ने भी इसी प्रकार के विनय के पद लिखे हैं । इसी प्रकार का भक्ति का पद कविवर "बुधजन" का देखिये :—

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेटि जामन-मरण जी ॥
तुम ना पिछान्यो, अन्य मान्यो, देव विविध प्रकार जी ॥
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! आप पतितो को पवित्र करने वाले हैं, अत मैं आपके चरणो की शरण मे आया हू । प्रभु ! आप अपने वडप्पन का ध्यान रखते हुए मेरे जन्म-मरण के दु ख दूर कीजिये । मैंने आज तक आपकी पहिचान करने मे भूल की है, इस अज्ञानता वश अन्यान्य देवो की उपासना करता रहा इस मिथ्याबुद्धि के कारण स्व की पहिचान नहीं की और भ्रमवश स्वहित मे बाधक कारणो को अपना हित कारक माना ।

विद्यापति अपने आराध्य से यह याचना करते हैं कि "कृपया मुझ पर दया कीजिये" परन्तु बुधजन की निष्काम-भक्ति मे यह भी नही है । वे तो केवल इतना ही कहते हैं —

---

1. विद्यापति : पदावली : संपादक डॉ० आनदप्रसाद दीक्षित, द्वि० सं० १९७०, पृ सं. १३३-३४, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर ।

"याचू नही सुरवास पुनि नर राज परिजन साथ जी ।
"बुध" याचहू तुव, भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी ।।[1]"

अर्थ—हे प्रभु ! आपकी भक्ति करके मैं यह नही चाहता कि आप मुझे स्वर्गादि के सुख प्रदान करें अथवा मैं नरेश बनू या परिजनो का साथ मुझे प्राप्त हो । मैं तो केवल यही चाहता हू कि भव-भव मे अर्थात् जन्म-जन्मान्तरो मे आपकी भक्ति होती रहे ।

ससार की वास्तविकता के सम्बन्ध में विद्यापति का एक अन्य पद देखिये—

"तातल सेवत वारि विन्दुसम, सुतमित रमनि समाज ।
तोहे विसारि मन ताहे समर पिनु, अव मुझ हव कौन काज ।।
माधव हम परिनाम निरासा तुहु जग तारन दीन दयामय—

अर्थ हे माधव ! जिस प्रकार तप्त वालू पर पानी की बू द पडते ही विलीन हो जाती है, वैसे ही इस ससार में पुत्र, मित्र, पत्नी आदि की स्थिति है । तुझे भुलाकर मैंने अपना मन इन क्षण-भगुर-वस्तुओ को समर्पित कर दिया है, ऐसी स्थिति मे अब मेरा कौन कार्य सिद्ध होगा ? हे प्रभु ! मैं जीवन भर आपको भुलाकर माया-मोह मे फसा रहा हू । अतः अब इसके परिणाम से बहुत निराश हो गया हू । आप ही इस ससार से पार उतारने वाले हो, दीनो पर दया करने वाले हो । अतएव तुम्हारा ही विश्वास है कि तुम मेरा उद्धार करोगे । आधा जीवन तो मैंने सोकर ही विता दिया, वृद्धावस्था और वालपन के अनेक दिन बीत गये । युवावस्था युवतियों के साथ केलि-क्रीडाओ मे विता दी । इस प्रेम क्रीडा मे मस्त रहने के कारण मे तेरा स्मरण करता तो किस समय करता ? अर्थात् विलास वासना में फसे होने के कारण तेरे भजन-पूजन का समय ही नहीं निकाल पाया । हे माधव ! आप आदि अनादि के नाथ कहलाते हैं, ऐसी स्थिति मे इस भव सागर से पार उतारने का भार आप पर ही है[2] ।

इसी प्रकार का एक पद कविवर "वुधजन" का प्रस्तुत है —

'उत्तम नरभव पाय के मति भूले रे रामा ।।
कीट पशु का तन जब पाया, तब तू रखा निकामा ।
अब नर देही पाय सयाने, क्यों न भजे प्रभु नामा ।।
सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊ नर जामा ।
ऐसा रतन पाय के भाई क्यो खोवत बिन कामा ।।

---

१ कवि बुधजनः देवदर्शन, स्तुति, ज्ञानपीठ पूजाजलि, पृ० स-
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ।

२ आनन्द प्रसाद दीक्षित (संपादक) विद्यापति पदावली द्वितीय सस्करण १९७०, साहित्य प्रकाशन मदिर, ग्वालियर ।

धन जोवन तन सुन्दर पाया मगन भया लखि भामा ।
काल अचानक झटकि खायगा, परे रहेगे ठामा ।।
अपने स्वामी के पद-पकज, करो हिये विसरामा[1] ।।
मेटि कपट भ्रम अपना 'बुधजन' ज्यो पावो शिवधामा ।।

अर्थ-इस श्रेष्ठ नर-जन्म को प्राप्त करके अपनी आत्मा को विस्मृत मतकर । तू स्वय आत्मा है, अत अपने आपको मत भूल, अपने पूर्व जन्मो का या भवो का स्मरण कर जब तू छोटा मोटा कीडा था, या जब तू पशु था, उस समय तुझे कोई ज्ञान न था अत्यन्त अल्पज्ञानी था या अपने हिता-हित का विवेक तुझे सर्वथा नही था । अब पुण्योदय से तूने मनुष्य-जन्म पाया है अत तू प्रभु का भजन क्यो नही करता ? (क्योकि अब तू विवेकवान् प्राणी है अपने हिताहित को समझना है) इस नर-तन को प्राप्त करने की इच्छा देवता भी करते हैं (क्योकि इस अवस्था से प्रभु-स्मरण व सयमाचरण किया जा सकता है) हे भाई । यह मानव-जीवन एक प्रकार का रत्न है । अत मूर्खों की भाति इसे-कौडी के मोल मे मत बेच या इसे विषय-भोगो मे मत गवा । तुझे भाग्योदय से धन, यौवन, सुन्दर मानव-देह प्राप्त हुई है, सुन्दर स्त्री का सयोग मिला है । परन्तु तू इनमे लीन मत हो । यदि तू इन्हीं के चक्कर मे पडा रहा तो काल तुझे शीघ्र नष्ट कर देगा । तब तेरे ये धनादि यही पडे रह जायगे, तेरा साथ नही देंगे । अपने हृदय मे अपने स्वामी के चरण-कमलो को विराजमान करो । अपने मन का भ्रम-जाल मिटाकर मुक्ति-लाभ करो ।

विद्यापति का भी एक स्तुति-परक पद दृष्टव्य है :—

इसमे वे अपने आराध्य के सामने अपने हृदय के भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं :—

'श्री कृष्ण के चरणो का आधार पाकर विद्यापति अपने आराध्य के सामने अपनी साधन-हीनता और दीनता रख देते हैं और तब तो विद्यापति की भक्ति की पराकाष्ठा हो जाती है, जब वह कहता है कि अपने कर्मों के कारण भले ही मैं, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतग बनू पर तुम्हारे कीर्तन मे मति लगी रहे[2] ।'

---

१. बुधजन बुधजन विलास, पद सं० ६६, पृ० सख्या ३४, प्रका० जिनवाणी प्रचारक कार्यालय १६१/१, हरीसन रोड कलकत्ता ।

२. हे हरिवन्दो तुअ पद नाथ । तुअ पद परिहरि पाप पयोनिधि, पार तर कौन उपाय ?
कि ये मानुस पसुपखि भये जनमिए, अथवा कीट पतग ।
करम-विपाक गतागत पुनपुन, मति रह तुअ पर सग ।।

तुलनात्मक-अध्ययन

१ विद्यापति पहले कवि थे और बाद में भक्त ।

बुधजन भी पहले कवि थे और बाद मे भक्त तथा दार्शनिक ।

२ विद्यापति ने लोकभाषा मैथिली को काव्य का माध्यम बनाया ।

बुधजन ने भी लोकभाषा ढूढारी को काव्य का माध्यम बनाया ।

३ विद्यापति की रचनाओ मे उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है ।

बुधजन की रचनाओ मे भी उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है ।

४ विद्यापति मे भक्त कवियो की भाँति आत्म-निवेदन की भावना थी ।

बुधजन मे भी भक्त कवियो की भाति आत्म-निवेदन की भावना थी ।

५ विद्यापति ने अनेक रचनाओ के अतिरिक्त अनेक पदो की रचना की । ये पद ही कवि की अक्षय-कीर्ति के आधार हैं ।

बुधजन ने भी अनेक रचनाओ के अतिरिक्त अनेक पदो की रचना की । ये पद ही कवि की अक्षय-कीर्ति के आधार हैं ।

६ विद्यापति मे आत्मानुभूति का प्रकाशन, स्व-सवेदन-गम्य, भाव-भूमि पर लक्षित होता है ।

बुधजन मे भी आत्मानुभूति का प्रकाशन, स्व-सवेदन-गम्य, भाव-भूमि पर लक्षित होता है ।

७ विद्यापति की भाषा मे तरलता, सरलता और माधुर्य पूर्ण रूप से लक्षित होता है ।

बुधजन की भाषा मे भी तरलता, सरलता और माधुर्य पूर्ण रूप से लक्षित होता है ।

५ सूरदास और बुधजन

हिन्दी भाषा मे कुछ रचनाए सगीत प्रधान हैं । कवीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास आदि प्रमुख भक्त कवियो ने भक्ति-परक अनेक पद लिखे हैं । इन्हें वे स्वय विभिन्न राग-रागिनियो मे गा-गाकर सुनाया करते थे । इनके पदो का हिन्दी साहित्य मे अत्यधिक प्रचार हुआ ।

इस प्रकार के पद जैन कवियो ने भी पर्याप्त मात्रा मे रचे हैं । शास्त्र-प्रवचन के वाद इन पदो को जैन मदिरो मे प्रतिदिन गाने की प्रथा है । जैन कवि द्यानतराय, भूधरदास, दौलतराम, महाचद, भागचन्द, बुधजन आदि कवियो के पद

अनेक जैन व्यक्तियो को आज भी कठस्थ हैं। कवि बुधजन के पद राजस्थान में सर्वाधिक लोकप्रिय रहे।

पद रचयिता चाहे जैन धर्मानुयायी हो या इतर धर्मानुयायी, दोनो की पद-रचना मे मौलिक अन्तर नही है। जो थोडा बहुत अन्तर दिखाई देता है, वह बाह्य जगत् के प्रभाव का परिणाम है। हिन्दी साहित्य मे गीत और पद रचयिताओ मे निर्गुण-सत कबीर, रविदास, दादू, मलूकदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार सगुण सप्रदाय मे सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियो के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सत और भक्तो ने अनेक गीत और पद रचकर हिन्दी साहित्य को परिपुष्ट किया। निर्गुण सतो के तात्विक सिद्धान्त तथा जैनो के शुद्धात्म-वाद मे पर्याप्त साम्य है।

सन्त कबीर ने कहा है—सबके हृदय मे परमात्मा का निवास है। उसे बाहर न ढूढकर भीतर ही ढूढना चाहिये। आत्मा ही परमात्मा है। दोनो मे एकत्व भाव है। प्रत्येक जीव परमात्मा है। निर्गुण सतो ने अवतार-वाद का खडन किया। भौतिक शरीर की दृष्टि से कोई भी व्यक्ति ईश्वर नही हो सकता है। आत्मा की दृष्टि से सभी आत्माए ब्रह्म हैं। अतएव सतो के मत मे जन्म-मरण से रहित परब्रह्म ही परमात्मा है। उस पर ब्रह्म का नाम स्मरण, प्रेम और भक्ति करने से कल्याण होता है। प्राय सभी सन्त कवियो ने इसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पद रचना की। इनके पदो की जैन पदो के साथ तुलना की जा सकती है।

सगुण भक्ति धारा के कवियो के पदो के साथ भी जैन कवियो के पदो की तुलना की जा सकती है। प्रस्तुत लेख मे सगुण भक्ति धारा के प्रसिद्ध कवि सूरदास के पदो के साथ बुधजन के पदो की तुलना की जा रही है।

उपासना के लिये उपास्य के विशिष्ट व्यक्तित्व की आवश्यकता समझ सगुण भक्ति का आविर्भाव हुआ। सगुण उपासको मे कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा मे श्रेष्ठ कलाकार हुए, जिन्होने पद और गीतो की रचनाकर हिन्दी के साहित्य भडार की वृद्धि की। महाकवि सूरदास ने पद-साहित्य मे नवीन उद्भावनाए—कोमल कल्पनाए और विदग्धता पूर्ण व्यजनाए की। वस्तुत सूर भाव जगत् के सम्राट् माने गये हैं। हृदय की जितनी थाह सूरदास ने ली, उतनी शायद ही अन्य कवि ने ली हो। सूरदास के पदो मे पर्याप्त मौलिकता है। सूरदास की कृतियो मे भाव पक्ष और कला पक्ष दोनो ही पक्ष परिपुष्ट हुए हैं।

जिस प्रकार सूरदास ने गौरी, सारग, आसावरी, सोरठ, भैरवी, धनाश्री, ध्रुपद, विलावल, मलार, जैतिश्री, विराग, झझोरी, सोहनी, कानूरा, केदारा, ईमन आदि—राग-रागिनियो मे पदो की रचना की है, उसी प्रकार बुधजन ने भी प्रभाती, विलावल, कनडी, रामकली अलहिया, आसावरी, जगिया, झाझ, टोडी, सारग, पूरवी गौडी, काफी कनडी, ईमन, झझोरी, खभाच, अहिंग, गारो, कान्हरो, विला-

धल, वरवा, सिघडा, ध्रुपद आदि अनेक राग-रागिनियो मे पदो की रचना की। सगीत का माधुर्य सूर के पदो के समान ही आलोच्य कवि मे भी लक्षित होता है।

अन्तर्जगत् के चित्रण की दृष्टि से सूर के अनेक पद जैन पदो के समान भाव-पूर्ण हैं। वात्सल्य, शृगार और शान्त इन तीनो रसो का जैसा परिपाक सूर के पदो मे है, वैसा ही कविवर बुधजन के पदो मे भी विद्यमान है। विनय के पदो के आरम्भ मे अपने आराध्य कृष्ण की स्तुति करता हुआ कवि कहता है —

> प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो
> समदरसी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो
> अवकी वेर नाथ मोहि तारो नहि पन जात टरो ॥

यहा तुलना के लिये कविवर बुधजन का एक पद उद्धृत किया जाता है। दृष्टव्य है कि दोनो के पदो मे कितनी समानता है।

> तुम चरनन की सरन आय सुखपायो।
> अवलो चिर भव वन मे डोल्यो जनम जनम दुख पायो ॥१॥
> ऐसो सुख सुरपति के नाही सो सुख जात न गायो।
> अब सब सपति मो उर आई आज परम पद लायो ॥२॥
> मन वच तन मे दृढ करि राखो, कवहु न ज्या विसरायो।
> वारवार बीनवे 'बुधजन, कीजे मन को भायो ॥३॥

सूरदास ने विषयो की ओर जाते हुए मन को रोका है और उसे नाना प्रकार से फटकारते हुए आत्मा की ओर उन्मुख किया है। नाना प्रकार की आकाक्षाए ही इस मन को आकृष्ट कर विषयो मे सलग्न कर देती हैं जिससे भोला और असहाय मानव विषयेच्छाओ की अग्नि मे जलता रहता है। सूरदास मानव के अज्ञान भ्रम को दूर करते हुए कहते हैं —

> रे मन मूरख जन्म गमायो।
> कर अभिमान विषय सग राच्यो, स्याम सरन नहि आयो।
> यह ससार फूल सेमर को सुन्दर देखि भुलायो।
> चरनन लाग्यो रुई गई उडि, हाथ कछु नहि आयो ॥
> कहा भयो अवके मन सोचे, पहले नाहि कमायो।
> कहत सूर भगवन्त भजन विनु, सिर धुनि धुनि पछतायो।

तथा—

> जादिन मन पछी उडि जै है।

ता दिन तेरे तन तरुवर के, सर्वपात झरि जे हैं ।।१।।
घर के कहैं वेगि ही काढो, भूतभये कोई खे है ।।२।।
जा प्रीतम सौं प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरै है ।।३।।

तथा—

रे मन जन्म अकारथ जात ।।
बिछुरे मिलन बहुरि कब है, ज्यो तरुवर के पात ।।१।।
सन्निपात कफ कठ विरोधी, रसना टूरी बात ।।२।।
प्रान लिये जमजात मूढमति, देखत जननी तात ।।३।।

उपरोक्त सूर के पदो के साथ 'बुधजन' के कतिपय पद तुलना योग्य है।

जैसे कि—

रेमन मूरख बावरे, मति ढील न लावे ।।
जप रे श्री अरहत कौं, यो औसर जावे ।।
नर भव पाना कठिन है, यो सुरपरि चाहे ।।
को जाने गति काल की, यो अचानक आवे ।।
छूट गये अब छूटते, जो छूटा चावे ।।
सब छूटें या जाल तैं, यो आगम गावैं ।।
भोग रोग को करत है, इनको मत लावैं ।।
ममता तजि समता गहो, 'बुधजन' सुख पावै ।।

एव

क्यो रे मन तिरपत नहि होय ।।
अनादि काल का विषयन राच्या, अपना सरवस खोय ।।
नेकु चाखि कैं फिर न बाहुडे, अधिका लपटे जोय ।।
ज्यो ज्यो भोग मिले त्यो तृष्णा, अधिकी अधिकी होय ।।

तथा—

मन रे तेने जन्म अकारथ खोयो ।।
तू डोलत नित जगत वध मे ले विषयन रस लूट्यो ।।

इस प्रकार कविवर बुधजन ने कविवर सूरदास के समान आशा-तृष्णा की खूब निंदा की है। वस्तुत आशा इतनी प्रचड अग्नि है कि इसमे जीवन का सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। आशा नाम की साकल से वधा हुआ जीव निरतर भागता फिरता है और इस शृ खला से छूटा हुआ जीव शान्त होकर बैठ जाता है। इस आश्चर्य को "बुधजन" ने अपने पदो मे व्यक्त किया है उन्होने मन की विविध दशाओ का भी सूरदास की भाति सूक्ष्म विवेचन किया है।

"समूचे हिन्दी साहित्य मे सूरदास का बाल वर्णन प्रसिद्ध है। उन्होने बालक कृष्ण की अनेक मनोदशाओ का चित्रण किया है। सच यह है कि वे इस क्षेत्र मे अकेले नही थे। मध्यकालीन जैन हिन्दी कवियो ने तीर्थंकरो के गर्भ और जन्म से सम्बन्धित अनेक मनोरम चित्रो का अ कन किया है। इन अवसरो पर होने वाले विविध उत्सवो की छटा का सूरदास छू भी न सके हैं। यह जैन कवियो की अपनी शैली थी, जो उन्हे पूर्व परम्परा से ही उपलब्ध हुई थी[1]। "आदीश्वरफागु" मे आदीश्वर प्रभु का जन्मोत्सव सम्बन्धी एक दृष्टान्त देखिये —

"आहे रतन जडित अति मोटाउ मोटाउ लीधउ कु भ।
क्षीर समुद्र शकू पूरीय पूरीय आणीय् अभ ॥
आहे द्रुमि द्रुमि तब लीय वज्जइ घ्रमि घ्रमि मछलनाद।
टणण टणण टकारव, झिणि झिणि झल्लर साद[2] ॥"

"आदीश्वरफागु" का एक और सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत है। इसमे कवि ने बालक के निरन्तर बढ़ने का वर्णन किया है। "आदीश्वर दिन-दिन इस भाति बढ रहे हैं, जैसे द्वितीया का चन्द्र प्रतिदिन विकसित होता जाता है। उसमे शनै शनै ऋद्धि, बुद्धि और पवित्रता प्रस्फुटित होती जा रही है, जैसे समाधिलता पर कुन्द के फूल खिल रहे हो[3]।"

'सूरदास हिन्दी भक्ति युग के सशक्त कवि हैं। उन्होने भाव-विभोर होकर सगुण ब्रह्म के गीत गाये।' 'सूरसागर' इसका प्रतीक है। उसमे सूर के निर्मित सहस्रो पदो का सकलन है। ये पद गेय हैं। राग रागिनियो से समन्वित हैं। उनका बाह्य सुन्दर है, तो अन्त सहज और पावन। सब कुछ भक्तिमय है[4]।"

इसी युग मे जैन कवियो ने भक्ति रस पूर्ण अधिकाधिक पदकाव्य का निर्माण किया। वह सब भक्त्यात्मक है। उसमे भी प्रसाद और लालित्य है। विविध राग-रागिनियो का नर्तन वहा भी है। दोनो में बहुत कुछ साम्य है। कही-कही तो तद्वत्

---

१ डॉ० प्रेमसागर जैन हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ० सख्या ७५ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

२ भट्टारक ज्ञानभूषण आदीश्वरफागु पद स० २६२, आमेर शास्त्र भडार की हस्तलिखित प्रति।

३ आहे दिन दिन बालक वाधइ, वीजतणु जिन चन्द।
ऋद्धि विबुद्धि विशुद्धि समाधिलता कुल कु द ॥६२॥
भट्टारक ज्ञानभूषण आदीश्वरफागुः, आमेर शास्त्र भडार की हस्तलिखित प्रति।

४ अनेकान्त मासिक पत्रिका, वर्ष १९६६, अ क ६, पृष्ठ ३५

है। बनारसीदास, द्यानतराय, भूधरदास, बुधजन, भैया भगवतीदास, जगतराम और ब्रह्म आदि समर्थ जैन कवि थे, जिन्होने सूर, तुलसी, मीरा आदि के समान आध्यात्मिक एव भक्ति पूर्ण पदो की रचना की। इन कवियो की रचनाए कला और भाव दोनो दृष्टियो से सूर की रचनाओ के समकक्ष रखी जा सकती हैं। जैन कवियो की भक्ति रस पूर्ण रचनाओ के अवलोकन से एक विशेष बात भी दृष्टव्य है जो सूर की रचनाओ मे नही मिलती।

सूर ने बालक कृष्ण का जितना मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है, उतना राधा का नही। परन्तु जैन कवियो की रचनाओ मे हम बालिकाओ का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण पाते हैं। सीता, अजना और राजुल के मनोभावो का बडा ही मनोरम वर्णन जैन कवियो ने किया है जो अद्वितीय है।

जैन भक्त कवियो की एक और अद्वितीय विशेषता है। उन्होंने लौकिक शृगार को कभी भी महत्व नही दिया। उन्होने सुमति को ही राधा कहा और परमात्मा के विरह मे उनकी बेचेनी हिन्दी काव्य की नई देन है।

सूर की भक्ति केवल ब्रह्म के सगुण रूप की भक्ति है। निर्गुण ब्रह्म पर उन्होंने कुछ भी नही लिखा, जबकि जैन कवियो ने ब्रह्म के सगुण-निगुण दोनो रूपो पर लिखा है। जैन परम्परा के अनुसार अरहत अवस्था को सगुण और सिद्ध अवस्था को निर्गुण माना गया है और यह भी प्रतिपादन किया गया है कि सगुण-निर्गुण हो सकता है। जो चार घातिया कर्मों के विनाशक हैं वे अरहत कहलाते हैं, जब वे ही अरहत, योग निरोध पूर्वक शेष बचे चार अघातिया कर्मों का नाश कर देते है, तब वे ही सिद्ध या निर्गुण बन जाते हैं।

कविवर "बुधजन" ने सूरदास की भाति भगवान से याचनाए की हैं, पर वे याचनाए सासारिक सुख प्राप्ति के लिये नही हैं। वे तो यही याचना करते हैं कि "हे भगवन्! मुझे भव-भव मे आपके चरणो की शरण प्राप्त होती रहे। इसके सिवाय कवि न स्वर्ग चाहता है न राजा बनना चाहता है न वह बहुत बडे कुटुम्ब की ही याचना करता है[1]।"

भक्त कवि होने के कारण दोनो ही कवियो के पदो मे अलकारो की खीचतान नही है। उनकी गति सहज है। एक पद्य और प्रस्तुत है, जिसे देखने से "बुधजन" के पदो की "सूरदास" के पदो से भाव-भाषा, एव विषय वस्तु की दृष्टि से समानता का बोध हो जाता है।

---

१. याचू नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथ जी।
बुध याचहू तुव भक्ति भव-भव दीजिये शिवनाथ जी॥
बुधजनः देवदर्शन स्तुति, ज्ञानपीठ पूजाजलि, पृ० स० ५३४, ५३५ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

मेरे अवगुन जिन गिनो, मैं औगुन को धाम ।
पतित उद्धारक आप हो, करो पतित को काम ।।
(बुधजन)

प्रभु मेरे अवगुन चित न गिनो ।
समदर्शी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो ।।
(सूरदास)

अत यह स्पष्ट है कि कविवर बुधजन सूरदास की ही भाति सहृदय थे, भक्त थे और उनके पद गेय थे । उन्होने भी भाव-विभोर होकर सगुण निर्गुण के गीत गाये हैं । यद्यपि सूरदास व बुधजन दोनो ही कवियो ने दास्य-भाव की भक्ति की है तथापि दोनो के दास्य भाव मे अन्तर है । सूरदास के आराध्य देव अपनी कृपा से भक्त को अपने समान बनाने वाले हैं । वे जब चाहेंगे तभी भक्त का उद्धार हो सकेगा । दूसरे शब्दो मे सूर के प्रभु ही कर्ता हैं । वे ही भक्त को पार-लगाने वाले हैं, परन्तु कविवर बुधजन के प्रभु कर्ता-धर्ता नहीं हैं । उन्होने भगवान की भक्ति करने की प्रेरणा तो केवल इसलिये दी है कि वीतराग के गुणो की स्वीकृति के साथ वीतराग बनने का लक्ष्य प्रशस्त हो । क्योकि भक्त स्वय सोऽहं की अनुभूति करना चाहता है । अतएव व्यवहार से भक्ति के माध्यम से वह साध्य की प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित करता है । इस लक्ष्य निर्धारण मे अपने अवगुण-दोषो का चिंतन करना और वीतरागता स्वरूप वीतराग प्रभु का महात्म्य प्रकट करना स्वाभाविक है । अतएव लौकिक व्यवहार से यह कहा जाता है कि हे प्रभो ! आप पतितो के उद्धारक हैं । आप ही ससार रूपी समुद्र से मेरी जीवन-नौका को पार लगाने वाले हैं । यथार्थ में प्राणी ही अपने पुरुषार्थ से अपने ही भीतर विराजमान परमात्म शक्ति को व्यक्त कर परमात्मा बनता है, किन्तु भक्ति के आवेश मे अपने आराध्य के महत्व को बढा-चढा कर कहता हुआ, उसे ही सर्वश्रेष्ठ बताता हुआ उपचार से इस प्रकार का वर्णन करता है ।

६ सत काव्य परम्परा मे बुधजन

"सत शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों मे अनेक विद्वानो ने किया है । कुछ लोग "सत" का अर्थ करते हैं--बुद्धिमान, पवित्रात्मा, सज्जन, परोपकारी, सदाचारी व्यक्ति । कुछ लोग सत शब्द को शान्त का रूपान्तर मानते हैं और उनकी निरुक्ति निम्न प्रकार करते हैं —

"श-सुख, ब्रह्मानन्दात्मक विद्यते यस्य" अर्थात् जिसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई है वह सत है । यह शब्द-मूलत सन् शब्द का बहुवचन है । सन् शब्द अस् (भुवि) अस् (होना) धातु से बने हुए "सत्" का पुल्लिग रूप है जो शतृ प्रत्यय लगाकर प्रस्तुत किया गया है अत इसका अर्थ हुआ होने वाला या रहने वाला ।

भाव यह है सत शब्द अपने मौलिक अर्थ में शुद्ध-अस्तित्व मात्र का बोधक है। शास्त्रो मे इसका अर्थ उस परम-तत्व के लिये प्रयुक्त हुआ है जिसका कभी भी नाश नही होता। जो सदा एक रस तथा अविकारी है। उसी को सत्य के नाम से भी अभिहित किया गया है।

वैदिक साहित्य मे भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। वहां इस शब्द का प्रयोग ब्रह्म यानी परमात्मा के अर्थ मे हुआ है। कुछ महात्माओ ने सत एव परमात्मा को एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किया है।

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर अन्य सतो की भाति मैं "कविवर बुधजन" को आध्यात्मिक परम्परा का सत मानता हू क्योकि वे मुख्यतः अध्यात्म रस के रसिक थे। आत्मा की चरमोन्नति के उद्घोषक थे हिन्दी साहित्य मे निर्गुण धारा एव सगुण धारा के सतो ने जिस प्रकार ब्रह्म के निर्गुण-सगुण रूप की भक्ति की है उसी प्रकार "बुधजन" ने निर्गुण (सिद्ध) सगुण (अर्हन्त) इन दोनो रूपो की भक्ति की है। उनका भगवत् प्रेम सरसता का सचार करता है। इस विषय मे डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं —

जैन सतो का भगवत् प्रेम शुष्क सिद्धान्त नही "अपितु स्थायी प्रवृत्ति है। यह आत्मा की अशुभ प्रवृत्ति का निरोध कर शुभ प्रवृत्ति का उदय करता है, जिससे दया, क्षमा, शान्ति आदि श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न होते हैं। जैन सतो का वर्ण्य-विषय भक्ति और प्रार्थना के अतिरिक्त मन, शरीर, इन्द्रिय आदि की प्रवृत्तियो का अत्यन्त सूक्ष्मता और मार्मिकता के साथ विवेचन करना एव आध्यात्मिक भूमियो को स्पर्श करते हुए सहज समाधि को प्राप्त करना है[1]।"

व्यक्ति से समाज बनता है और समाज की भूमिका पर व्यक्ति का विकास होता है। हजारो वर्षों से सत और ज्ञानी तथा विचारक विचार करते आये हैं कि समाज की व्यवस्था ठीक रहने, लोगो मे योग्य गुणो का विकास होने और सुख पूर्वक जीवन विताने के लिये किन-किन नियमो या गुणो की आवश्यकता है। सत और ज्ञानी प्राय सार्वकालिक और सार्वजनिक होता है। वह जो कुछ सोचता है सबके लिये सोचता है और हम उनके उपदेशो को सुनकर हित के मार्ग पर चलते हैं। अतः सन्त हमारे महान् उपकारी हैं।

कविवर "बुधजन" ने अपने साहित्य मे प्रतिपादित किया—सुख प्राप्ति की पहली शर्त यह है कि आदमी अपने लिये कम से कम लेकर दूसरो को अधिक से अधिक सेवा दे। ऐसा आदमी जहा जाता है, आदर पाता है और सुख की वृद्धि होती है। उससे किसी को कष्ट नहीं होता। कुटुम्ब मे रहकर वह अपने से बड़ों की सेवा करता है। छोटो पर प्रेम और वात्सल्य रखता है। समाज मे भी वह

---

१. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री . हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग १, पृ० स० १०६-१०७, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन प्रथम सस्करण १९५६।

अप्रमत्त भाव से अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। कुटुम्ब और समाज के लिये की गई उसकी सेवा देश के लिये पूरक ही होती है क्योंकि ऐसा आदमी अपनी मर्यादा को जानता है और किस क्षेत्र मे कितनी सेवा करनी चाहिये यह विवेक उसे होता है। उसका ध्येय सब की भलाई होने से किसी एक की भलाई के लिये वह दूसरो को कष्ट नही देता। एक की सेवा के लिये दूसरो की कुसेवा नहीं करता इत्यादि।

कवि बुधजन के अनुसार सत मे निम्न गुणो का होना आवश्यक है—(१) अहिंसा (२) सत्य (३) सयम (४) समन्वयदृष्टि (५) विवेक (६) पुरुषार्थ और अनासक्तभाव। कवि ने अपना साधना मय जीवन इसी विचारधारा को मूर्त रूप देने मे लगाया। परमार्थ चिंनन और लोक कल्याण मे जो अपना समूचा जीवन विताये वही सन्त है। वे सबका समान रूप से उदय चाहते थे। शास्त्रो की पुरानी लकीर पीटने मे उनका विश्वास नही था वे शास्त्रो के आधार पर अपने जीवन मे प्रयोग करते रहे। शास्त्रो मे से उन्होने ऐसे तत्वो को चुना जो व्यक्ति और समाज के लिये लाभदायक थे।

साधारणतया ऐसा समझा जाता है कि जो घर छोड दें वह सन्त है, परन्तु सत को वनवासी या साधु होना ही चाहिये यह कोई नियम नही है। गृहस्थी मे रहकर भी वह अनासक्त भाव से रह सकता है। अपनी वुद्धि से निर्णीत कर्म मे फल की आकाक्षा न रखते हुए लगे रहने वाला व्यक्ति ही सत है फिर चाहे वह गृहस्थ हो या वनवासी। गृहस्थ के अनासक्त भाव का वर्णन कविवर बनारसीदास ने इस प्रकार किया है।

"कमल रातदिन पक मे ही रहता है और पकज कहलाता है परन्तु वह पक से सदा ही अलग रहता है। मत्रवादी सर्प को अपना शरीर पकडाता है परन्तु मत्र की शक्ति से विष के रहते हुए भी सर्प का डंक निर्विष रहता है। जीभ चिकनाई को ग्रहण करती है, परन्तु वह सदा ही रूखी रहती है। पानी मे पडा हुआ सोना काई से अलग रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी जन (सतजन) ससार मे अनेक क्रियाओ को करते हुए भी अपने को सभी क्रियाओ से भिन्न मानता है। उन क्रियाओ मे मग्न नही होता। इसलिये सदैव ही निष्कलक रहता है[1]।"

---

१ जैसे निशिवासर कमल रहे पक ही में, पंकज कहावे पैन वाके ढिग पक है।
जैसे मत्रवादी, विषधर सो गहावेगात, मत्र की शक्ति वाके विनाविष डक है।
जैसे जीभ गहे चिकनाई रहे रूखे अग, पानी मे कनक जैसे काई से अटक है।
तैसे ज्ञानवान नाना भाति करतूत ठाने, किरिया तें भिन्न माने यातें निष्कलक है।
कविवर बनारसीदास प्राचीन हिन्दी जैन कवि, पृ० ६० भारत वर्षीय जैन साहित्य सम्मेलन, दमोह।

"ससार की जड मोह है। इसके अभाव मे अनायाम ससार चला जाता है। आत्मा की विकार परणति का नाम ही तो ससार है। यद्यपि उस विकार परणति के उपादान कारण हम ही तो हैं। ज्ञेय पदार्थ विकारी नही। वह तो विभिन्न मात्र है। आत्मा का ज्ञान जो है वह ज्ञेय के निमित्त से कोई विकार को नही प्राप्त होता है[1]।"

सत तुलसी ने सतसग को राम भक्ति का अनिवार्य अग माना है और यह भी लिखा है कि सतो का सग हरिकृपा से ही मिलता है उन्होने सत (साधु) सगति का ही दूसरा पक्ष असत (असाधु) से असहयोग करना बताया है। इसीलिये सत तुलसीदास अपने एक प्रसिद्ध पद में कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति से सर्वथा असहयोग ही करना होगा जिसे सीताराम जैसे सत प्रिय नही है[2]।

तुलसी स्वय स्वीकार करते हैं कि मुझे राम कथा सत ससर्ग से ही प्राप्त हुई है। इससे स्पष्ट है कि राम भक्ति का सबसे आवश्यक अग सतसग ही है।

"रामचरित मानस का प्रारभ करते हुए गोस्वामी जी ने मगलाचरण और गुरू वदना के अनतर सबसे प्रथम सत वदना की है। सत और भक्त का सबसे बडा लक्षण है परोपकार। वे मित्र हो या शत्रु। सभी का निष्प्रयोजन निरतर कल्याण करने मे निरत रहते हैं[3]।"

सत तुलसी की भाति जैन कवि दौलतराम कहते हैं —

"अरि मित्र महल मसान कचन, काच निदन थुतिकरन।
अर्घवतारन असिप्रहारन मे सदा समता धरन॥"

"शत्रु और मित्र, महल और मसान, कचन और काच, निंदा और स्तुति पूजा और असिप्रहार इन सभी अवस्थाओ मे सत जन सदा समता भाव धारण करते हैं[4]।"

सतकबीर के रहस्यवाद सम्बन्धी अनेक पद जैन कवियो के पदो से साम्य रखते हैं। कबीर ने माया को महाठगनी कहा है। जैन कवि भूधरदास भी "सुनिठगिनीमाया तें सब जग ठगखाया" द्वारा माया को ठगिनी कह रहे हैं। अन्यान्य सत कवियो की भाति बुधजन ने भी अनेक सरस पदो की रचना की है। उन्होने चित्त की शुद्धि व सम्यग्ज्ञान को तप और दान से अधिक महत्व दिया है। वे दूसरो की शुद्धि करने मे विश्वास नही करते स्वय शुद्ध होने मे विश्वास करते हैं।

---

१ गणेशवर्णी अनेकान्त वर्ष ११, किरण ६, पृ० स० २४१।
२ जाके प्रिय न राम वैदेही, सो छाडिये कोटि वैरीसम, जद्यपि परमसनेही।
३ डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसी, पृ० स० १२०–१२१, सन् १९५२, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय।
४ दौलतराम छहढाला, छठोढाल, पद्य स० ६, सरल जैन ग्रंथ भडार, जबलपुर।

सन्त-जन आध्यात्मिकता के सूर्य हैं। जिनसे ज्ञान की किरणें समस्त जगत के ऊपर पडती हैं। जिन्होने अश्रद्धा का आतपत्र नहीं धारण किया है। वे उनसे सजीवनी शक्ति खीच सकते हैं।

"सामान्य लोगो को चाहिये कि वे सत्सग किये जाय। रस्सी की रगड से पत्थर भी घिस जाता है अत वहु कालीन सगति का असर हमारे ऊपर अवश्य पडता है। सत्सग के सम्वन्ध मे दो वातें ध्यान देने योग्य हैं (१) मन लगाकर किया जाय (२) वहुत काल तक किया जाय। यदि मन लगाकर वहुत काल तक सत्सग किया जाय तो उसका असर होना और हमे लाभ पहुचना अवश्यभावी है[1]।"

रामचरित मानस मे तुलसीदास जी ने इस वात की समीक्षा की है कि कवि लोग सत के हृदय को नवनीत के समान वताते हैं परन्तु सन्त हृदय के लिये नवनीत की उपमा योग्य नही है क्योकि मक्खन तो स्वत के ताप से पिघलता है जवकि सत का हृदय पर पीडा के कारण ही द्रवित हो जाता है।

"सतो और रामभक्तों के जो लक्षण गोस्वामी जी ने वताये हैं उनसे राम भक्ति का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। उनकी राम भक्ति कोई लोक–वाह्य साधन नही है। वह परोपकार, लोककल्याण और सचराचर विश्व सेवा के रूप मे प्रस्फुटित होती है। रामचरित मानस की भूमिका मे जो सवसे वलशाली वदना है वह राम नाम की है[2]।

कवीरदास आदि निर्गुनिये सतो की भाति 'वुधजन' ने गुरु की महत्ता समान रूप से स्वीकार की है। उन्होने गुरु के प्रसाद को पाने की आकाक्षा की है। कवीर दास ने गुरु को ईश्वर से वडा वताया जवकि वुधजन ने ईश्वर को ही सवसे वडा गुरु माना है। वुधजन ने पच परमेष्ठी को परम गुरु माना है। अर्हंत परमेष्ठी से प्रार्थना करते हुए कहते हैं —

"हे प्रभु! श्रेष्ठ पदार्थ समझकर मैं आपके चरणो की पूजा करता हू। भक्ति पूर्वक पूजा करने वाला सेवक भी आपके समान वन जाता है अर्थात् वह भी परमात्मा वन जाता है[3]।"

"सत् संगति मे रहने से जीवन सफल हो जाता है परन्तु जो खराव मार्ग से गुजरता है उसके जीवन मे कलक (दोष) अवश्य लगता है[4]।" यह कहकर "वुधजन"

---

१. डॉ० नरेन्द्र भानावत, जिनवाणी पत्रिका, वर्ष ३३, अक ४-७

२ डॉ० माताप्रसाद गुप्त तुलसी, पृ० स० १२०-१२२, सन् १६५२, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय।

३. पूजू तेरे पाय कू, परम पदारथ जान। तुम पूजेते होत है सेवक आप समान॥ वुधजन वुधजन सतसई, पद्य स० ८ पृ० सं० २, सनावद।

४ सतसगति मे वैठता, जनमत सफल ह जाय। वुधजनः सतसई पृ० ६० पृ० स० ४४५।

मतसग की महिमा बता रहे हैं। उनका लक्ष्य है कि ससार मे मनुष्यो को जो आदर प्राप्त होता है वह सत् सगति के कारण ही प्राप्त होता है।

शिल्पी के कर स्पर्श से बजता हुआ मुरज क्या कुछ अपेक्षा करता है? अर्थात् नही। उसी प्रकार तीर्थंकर प्राणिमात्र के हित का उपदेश देते हैं। तीर्थंकर की दिव्यध्वनि का खिरना लोक मगल हेतु है। उसी परम्परा को जैनाचार्यों एवम् जैन कवियो ने निभाया। बुधजन ने भी उसी परम्परा का निर्वाह किया है। पूर्व परम्परानुसार अपने ग्रन्थो के प्रारम्भ में अरहन्तो और सिद्धो की भक्ति की है। आज भी वही परपरा प्रचलित है। आज भी जैन पाठ शालाओ मे 'ऊ नम सिद्धेभ्य' का पाठ प्रारम्भ से पढाया जाता है। यह सत् सगति ही है क्योकि सत् का अर्थ होता है परमात्मा, इसलिये सत्सग का अर्थ हुआ ब्रह्म साक्षात्कार। सत् का दूसरा अर्थ है सज्जन, इसलिये सत्सग का अर्थ हुआ सज्जनो का सग। सत् का तीसरा अर्थ होता है सतोगुण वर्द्धक पदार्थ। इसलिये सत्सग का अर्थ हुआ ग्रन्थावलोकन, तीर्थ सेवा आदि सद्विषयो की ओर प्रवृत्ति। "बुधजन" का विचार है कि सज्जनो का प्रभाव हमारे हृदय मे अवश्य ही श्रद्धा की वृद्धि करता है। इसके लिये दो बातो की बडी आवश्यकता है। एक तो विवेक की (वैराग्य के प्रधान आधार) दूसरे पुण्य पुंज की (धर्माचरण की)।

तुलसीदास जी भी कहते हैं कि पुण्यपुज के बिना तो सतो का मिलना ही सभव नही और विवेक के बिना उनकी परख होना कठिन है।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानो, सतो एव दार्शनिको ने सत् रूपी परमतत्व के अनुभव करने वाले (सम्यग्दृष्टि) जीवो को सत माना है और इसी कारण गृहस्थ होते हुए भी मैं कविवर बुधजन को सतो की श्रेणी मे गिनता हू। अपनी इस मान्यता की पुष्टि मे मैं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन प्रस्तुत करता हू —

"अतएव" सत शब्द, इस विचार से उस व्यक्ति की ओर सकेत करता है जिसने सत् रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो, इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो। जो सत्य स्वरूप नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखड सत्य मे प्रतिष्ठित हो गया है, वही सत है[1]।"

७ बुधजन का भक्तियोग

"आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार हिन्दी का भक्तिकाल वि० स० १४००

---

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की सत परपरा, पृ० सख्या ५, द्वितीय सस्करण, सवत् २०२१, भारती भडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

से १७०० तक माना गया है[1] ।" परन्तु यदि हम जैन हिन्दी साहित्य का भली ... न करें तो हम पायेंगे कि हिन्दी की जैन भक्तिपरक प्रवृत्तिया वि० स० ६६० से १६०० तक चलती रही । हा ! इतना अवश्य है कि इसका विकास १४ वी शताब्दी तो जैन भक्ति के पूर्ण यौवन का काल था । १५ वी शताब्दी से १६ वी शताब्दी तक के ४०० वर्षों के काल मे जैन भक्त कवियो ने भक्ति सम्बन्धी रचनाए की जो पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं[2] ।" आचार्य शुक्ल ने इन जैन भक्ति की रचनाओ का अवलोकन करने की कृपा नही की होगी इसीलिये उन्होने १४०० से १७०० तक के काल को भक्ति काल स्वीकार किया ।

इस काल मे भक्ति की धारा अत्यधिक पुष्ट हुई । जैन कवियो ने भक्ति विषयक रचनाए कर हिन्दी साहित्य की धारा को समृद्ध बनाया है । जैन कवियो ने अरहत एव सिद्ध दशा मे स्थित आत्माओ को अपना आराध्य माना है । अरहत दशा को हम सगुण एव मुक्त या सिद्ध दशा को निर्गुण कह सकते हैं । अत जैन साहित्य मे सगुण व निर्गुण इन दोनो ही की भक्ति की गई है । इन्ही को जैन कवियो ने अपना आराध्य माना है । इनकी आराधना करने से हमारी परिणति शुद्ध होती है । अत इन्हीं को आलबन मानकर जैन कवियो ने भक्तिपरक अनेक रचनाए की क्योकि उनका विश्वास था कि इन्ही के गुणो से प्रेरणा पाकर यह जीव मिथ्यात्व भाव को दूर करने का प्रयत्न करता है । आत्मा की शुद्ध दशा का नाम ही परमात्मा है । प्रत्येक जीवात्मा कर्मबन्धन से विलग होने पर परमात्मा, बन जाता है । अत अपने उत्थान और पतन का दायित्व स्वय अपना है अपने विचारो एव कार्यों से जीव बधता है और अपने ही विचारो एव कार्यों से बन्धनमुक्त होता है । ईश्वर की उपासना करने से साधक की परिणति स्वत शुद्ध हो जाती है ।

जैन भक्त कवियो ने अपनी भक्ति-परक रचनाओ मे अपने आराध्य को वीतराग माना है । उन्होने अपने आराध्य से सासारिक पदार्थों की याचना कभी नहीं की । उनकी स्पष्ट मान्यता रही है कि निर्विकार होने से ईश्वर किसी को कुछ देता-लेता नही है । अपने किये कर्मों का फल प्रत्येक जीव को स्वय भोगना पडता है क्योकि कर्मों का कर्त्ता या भोक्ता जीव स्वय है । इस प्रकार की भक्ति भावना से प्रेरित होकर ही जैन कवियो ने भावात्मक पदो की रचना की है । अवतारवाद जैन भक्त कवियो को स्वीकार नही ।

---

१. रामचन्द्र शुक्ल . हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सवत् २००३ वि०
२. प्रेमसागर जैन हिन्दी जैन भक्तिकाल और कवि भूमि का पृ० १३ भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन ।

कविवर बुधजन ने अपने आराध्य को अनत गुणो का भडार माना है। जिससे कोई भी साधक अपनी गुप्त आत्मिक शक्तियो को प्रगट करने की प्रेरणा प्राप्त करता है। वस्तुत. आराध्य के गुणो की प्रशसा करना ही भक्ति है। भक्ति करने से चित्त निर्मल होता है। चित्त की निर्मलता से पुण्य का वध होता है, वही पुण्य उदय काल मे सुख की सामग्री जुटाता है।

तथ्य यह है कि जैन भक्त कवियो ने जैन दर्शन के सिद्धान्तो के अनुरूप निष्काम भक्ति की प्रेरणा दी है। इस विषय मे आचार्य काका कालेलकर के निम्न उद्गार दृष्टव्य हैं—

"सचमुच भक्ति ही जीवन है। नदी का सागर की तरफ बहना, जीव का शिव की ओर अखण्ड चलने वाला आकर्षण "सीमा" का परिपुष्ट होकर "भूमा" मे समाजाना, यही तो भक्ति है और भक्ति तो अखण्ड बढने वाली रसमय प्रवृत्ति है। बहने वाली नदिया जिस समुद्र मे जाकर मिलती हैं, उस समुद्र को न बढना है, न घटना है, तो भी उसमे ज्वार भाटा की लोला चलती है और किसी भी नदी के प्रवाह की अपेक्षा स्वय समुद्र के अन्त प्रवाह अधिक वेगवान और समर्थ होते हैं[1]। भक्ति का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है उसमे जाति-पाति का भेद नही होता। मुनि वादिराज का शरीर कोढ युक्त था प्रभु स्मरण से वह स्वर्ण जैसा चमक उठा। साप और मेढक जैसे जीवो को स्वर्ग की प्राप्ति हुई। धनजय का पुत्र प्रभु की भक्ति से जीवित हो गया। भक्ति के प्रताप से ससार के सुख मिलते हैं पर जैन भक्त ससार के सुखो की कामना से कभी भी भक्ति नही करता। वह तो आध्यात्मिक सुख को ही अपना लक्ष्य बनाता है। प्रभु स्मरण से मानतु ग के बन्धन टूट गये पर मानतु ग ने बन्धन मुक्त होने की कामना से प्रभु-स्मरण नही किया।

कविवर "बुधजन" की जिनेन्द्र भक्ति प्रसिद्ध है। थे जयपुर राज्य का दीवान अमरचन्द के यहा प्रधान मुनीम थे। दीवान ने उन्हे एक जिन मदिर बनवाने की आज्ञा दी परन्तु कवि ने दो जिन मदिर बनवाये। इसके पीछे उनकी भावना यही थी कि ये मदिर आराधना के घर हैं। यहा आकर अधिक से अधिक लोग भक्ति करें। आपके भक्ति पूर्ण पद इस बात को द्योतित करते हैं कि आपकी भक्ति निष्काम थी। वे कभी-कभी भक्ति रस की सरस धारा मे निमग्न हो इस बात का विचार किया करते थे कि हे बुधजन! तूने जिनेन्द्र के भजन अथवा आत्मदेव के आराधना बिना ही अपने मानव जीवन को यो ही गवा दिया और जो कुछ रहा है वह भी बीता जा रहा है। तूने पानी आने से पहले पाल न बाधी फिर पीछे पछताने से क्या

१　काका कालेलकर : हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि का प्राक्कथन पृ० सं० ३, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

लाभ ? जप-तप-सयम का कभी तूने आचरण नही किया। न किसी को दान ही दिया किन्तु धन और रामा की सार सभाल करते हुए उन्ही के आशा जाल मे बधकर तू ने इस मानव जीवन को हराया है। अब तू वृद्ध हो गया। शरीर और सिर कापने लगे। दात भी चलाचल हो रहे हैं। वे एक एक करके विदा लेते जा रहे हैं। चलना फिरना भी अब किसी लाठी के अवलबन बिना नही हो सकता। आशा रूपी गड्ढा इतना विस्तृत हो गया कि अब उसका भरना असभव सा हो गया है। शारीरिक और मानसिक अनन्त वेदनाए तुझे चैन नही लेने देती फिर भी तू अपने को सुखी समझने का यत्न करता है। यही तेरी अज्ञानता है। दूसरो को उपदेश देता फिरता है—हित की बातें सुझाता है, पर स्वय अहित के मार्ग मे चल रहा है। इस तरह तेरा कल्याण कैसे हो सकता है ? इसका स्वय विचार कर और अपने हित के मार्ग मे लग। इसी मे तेरी भलाई है। जिनेन्द्र ही तारण-तरण हैं। इसी से मैंने अब उन्ही की शरण ग्रहण की है। इस तरह मन मे कुछ गुन गुनाते हुए कविवर एक दिन बोल उठे—

> सरनगही मैं तेरी, जग जीवनि जिनराज
> जगतपति तारन-तरन, करन पावन जग हरन करन भव फेरी ॥
> ढूढत फिरयो भरयो नाना दुख, कहू न मिली सुख सेवी
> यातें तजी आन की सेवा, सेवा रावरी हेरी ॥
> परमे मगन बिसार्या आनम, धर्यो भरम जग केरी।
> ए मति तजू भजू परमातम, सो बुधि कीजे मेरी ॥

एक दूसरे दिन जिनेन्द्र—श्रद्धा को और भी निर्मल बनाने हेतु अपनी आत्म कहानी कहते हुए तथा मोह रूपी फासी को काटकर अविचल सुख प्राप्त करने तथा केवल ज्ञानी बनने की अपनी भावना को व्यक्त करते हुए कविवर कहते हैं—

> मेरी अरज कहानी सुनिये केवलज्ञानी।
> चेतन के सग जड पुद्गल मिल, मेरी बुधि बौरानी ॥१॥
> भववन माही फेरत मोकू, लखि चौरासी थानी।
> को तू बरनू तुम सन जानो, जन्म-मरण दुख खानी ॥२॥
> भाग भले तें मिले "बुधजन" कू, तुम जिनवर सुखदानी।
> मोह फासि को काट प्रभू जी, कीजे केवलज्ञानी ॥३॥
> हू तो "बुधजन" ज्ञाता दृष्टा, ज्ञाता तन जड सरधानी।
> वे ही अविचल सुखी रहेगे, होय मुक्तिवर प्रानी ॥४॥

यद्यपि मैं ज्ञाता दृष्टा हू फिर भी मोह की यह वासना अनन्त ससार का

कारण है। उस अनन्त ससार का छेदन करना ही आत्म-कर्त्तव्य है। इस प्रकार कवि आत्म-रस मे विभोर हो शरीर को पुद्गल का जामा समझकर सुगुरु की सगति अथवा कृपा से अपनी निधि पा गये।

'बुधजन' जहां एक ओर कवि हैं वहां दूसरी ओर भक्त भी हैं। भक्ति का प्रतिपादन यदि बुधजन का साध्य है तो काव्य साधन है।

बुधजन की भक्ति पद्धति की निम्नलिखित विशेषताए है :—

(१) अनन्य भावना

(२) आत्म-निवेदन परक भक्ति

बुधजन की अनन्य भावना—बुधजन मे अनन्य भावना पूर्ण रूप मे उपलब्ध होती है। वे अपने आराध्य के गुणो से पूर्णतया परिचित हैं और इसीलिये वे उन गुणो का आश्रय लेकर अपने उद्धार की बात करते हैं। वे अपने आराध्य के उद्धारक रूप का गुणगान करते हुए "बुधजन सतसई" मे कहते हैं —

वारक वानर वाघ अहि, अ जन भील चडार।
जाविधि प्रभु सुखिया किया, सोही मेरी बार ॥३६॥
तुम तो दीनानाथ हो, मैं हू दीन अनाथ।
अब तो ढील न कीजिये, भलो मिल गयो साथ ॥४३॥
और नाहि जाचू प्रभू, ये वर दीजे मोहि।
जौलो शिव पहुचू नही, तौलो सेऊ तोहि ॥४४॥

यहा "बुधजन" अपने दुर्गुणो का सकेत करके अपने उद्धार की बात करते है। उन्होंने वानर, व्याघ्र, सर्प, अ जन चोर, भील और चाडाल जैसे पातकियों का उद्धार कर दिया। इतना ही नही कविवर की श्रद्धा व स्नेह अपने आराध्य देव के प्रति इतना अविच्छिन्न बन जाता है कि उसके विना वे एक क्षण भी नही रह सकते। अपितु यह कहना चाहिए कि वे उसे एक क्षण के लिये भी छोड नही सकते। उन्हे प्रभु के चरणो की शरण इतनी प्रिय है कि वे जब तक मुक्ति लाभ न हो तब तक चरणो की शरण के सिवाय अन्य कुछ चाहते ही नहीं। वे कहते हैं —

याचू नही सुरवास पुनिनर राज परिजन साथ जी।
"बुध" याचहू तुम भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी ॥२॥

यही कारण है कि वे जिनेन्द्र देव को छोडकर अन्य देव की उपासना करना हास्यास्पद मानते हैं।

इससे अधिक दृढ अनन्य भाव की उद्घोषणा और क्या हो सकती है —

"निन्दौ भावौ जसकरो, नाही कुछ परवाह।
लगन लगी जात न तजी, कीजो तुम निरवाह ॥

तुमे त्यागि और न भजू, सुनिये दीनदयाल ।
महाराज की सेवे तजि, सेवे कौन कगाल ॥१॥

परमात्म पद की प्राप्ति के लिये वीतराग और सर्वज्ञ की प्रतिमा का दर्शन, पूजन और स्मरण अत्यन्त आवश्यक है, यह हमारी भावना को शुद्ध करने का साधन है, इससे अशुभ कर्म छूटकर शुभ कर्मों का बल बढता है। आत्मा के परिणाम निर्मल करने का यह सहज मार्ग है।

वीतराग प्रतिमा के द्वारा हम वीतराग प्रभु की आराधना करते हैं। उनसे शान्ति एवम् सतोष आदि गुणो की अभिलाषा की जा सकती है। परधन आदि सासारिक कामनाओ की इच्छा करना मूल है। किसान का लक्ष्य अन्न-प्राप्ति के लिये खेती करना है। उसे गेहू चावल आदि के साथ भूसा प्राप्त हो ही जाता है। उसी प्रकार भक्त को परमात्म-दशा की प्राप्ति के लक्ष्य रखते हुए धर्मानुराग से अभ्युद पद स्वयमेव मिल जाता है। अत प्रतिमा पूजा का लक्ष्य आत्म गुणो के विकास का ही रहना चाहिये।

गृहस्थ के देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दान इन षट् आवश्यक कर्मों मे भी पूजा और दान प्रमुख हैं[1]।

रयणसार मे आचार्य कुन्दकुन्द ने गृहस्थ और मुनि धर्म के कर्त्तव्यो को बताते हुए लिखा है —

गृहस्थ धर्म मे दान व पूजा ही मुख्य है। उसके बिना कोई श्रावक नही कहला सकता। मुनिमार्ग मे ध्यान और अध्ययन (स्वाध्याय) मुख्य है। उनके बिना कोई मुनि नही कहला सकता।[2]

पूजा-भक्ति, गुणानुराग को कहते हैं। जिन प्रतिमा मे आत्मा के निर्विकार शुद्ध स्वरूप को देखता हुआ सम्यग्दष्टि अपने स्वरूप को वैसा ही बनाने की ओर प्रयत्नशील रहता है। उसके आचरण मे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो अ श दिखलाई पडते हैं, उसकी पूजा-भक्ति विलक्षणता को लिये हुए होती है। जिसमे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो धाराए अभ्युदय और नि श्रेयस् दोनो के फल को प्राप्त कराने मे कारण होती हैं। वास्तव मे भगवान की भक्ति से भगवान बन जाता है।

आत्म निवेदन परक भक्ति :—

आत्म-निवेदन की भक्ति पद्धति मे भक्त अपने अवगुणो का बखान करके अपने आराध्य से उन्हे निवारण करने के लिये प्रार्थना करता है —

---

१ प्राक्कथन प नाथूलाल जी शास्त्री इन्दौर, नित्य पूजन पाठ सग्रह प्रकाशक श्री गेंदालाल रतनलाल सेठी, खातेगाव (म० प्र०)

२. आचार्य कुन्दकुन्द रयणसार पद्य क्रमाक ११
दाण पूजा मुक्ख सावयधम्मे, न सावया तेण विना ।
झाणाज्झयणं मुक्ख, जइधम्मे ण तं विणा सोवि ॥

तुम तो दीनानाथ हो, मैं हू दीन अनाथ ।
अब तो ढील न कीजिये, भलो मिल गयो साथ ।।४२।।
अरज गरज की करत हो, तारन-तरन सु नाथ ।
भव-सागर मे दुख सहू, तारो गह करि हाथ ।।३७।।
वीती जिती न कहि सकू, सव भासत है तोय ।
याही तें विनती करू, फेरि न वीते मोय ।।३८।।[1]

भक्त अपने आराध्य को दीनानाथ और अपने आपको दीन मानता है और प्रार्थना करता है कि आप जैसे दीनानाथ को पाकर निश्चय ही मेरा भला होगा। वह अपने दुखो को दूर करने के लिये अत्यधिक उत्सुक है। और प्रार्थना करता है कि हे प्रभु ! आप तरण-तारण हैं और मैं ससार समुद्र मे पडा पडा दुख भोग रहा हू अत कृपया मेरा हाथ पकडकर मुझे उवार लीजिये मैंने आज तक जितने कष्ट सहन किये हैं उनका वर्णन नही कर सकता। आप सर्वज्ञ हैं। सव कुछ जानते हैं। अत मेरी यही विनम्र प्रार्थना है कि मेरा उद्धार कर दीजिये ताकि अब मुझे ससार मे भटकना न पडे ।

---

१ वुधजन : बुधजन सतसई—एक अध्ययन: प० स० ४२-३७-३८, समीवद।

छह ढाला

पहली ढाल

मगलाचरण (सोरठा छन्द)

पद्य—सर्व द्रव्य मे सार, आतम को हितकार है।

नमहु ताहि चितधार; नित्य निरजन जानके ॥ १-१-१

अर्थ—(त्रैकालिक) शुद्धात्मा समस्त द्रव्यो मे सार रूप और आत्मा के लिये परम हितकारी है, ऐसा जानकर मैं उसे मनोयोग पूर्वक नमस्कार करता हू ॥१॥

अनित्य-भावना (चौपाई छन्द)

पद्य–आयु घटत तेरी दिनरात, होय निचीन रह्यो क्यो भ्रात।

जीवन धन-तन-किंकर-नारि, हैं सब जल बुदबुद उनहारि ॥ १-१-२

अर्थ–हे भाई! तेरी आयु प्रतिक्षण घट रही है। तेरा यह यौवन, धन, सुन्दर शरीर, सेवक, स्त्री आदि सभी पदार्थ पानी के बबूले की भाति क्षणिक है, ऐसी दशा मे तेरा निश्चिन्त रहना (प्रमाद भाव), आश्चर्यजनक हैं ॥२॥

अशरण भावना

पद्य–पूरन आयु बचै रिवन नाहिं, दये कोटि धन तीरथ माहि।

इन्द्र चक्रपति हू कहा करें, आयु अन्त तै वे हू मरे ॥ १-१-३

अर्थ–करोडो की सम्पदा तीर्थ स्थानो पर, खर्च करने पर भी आयु की पूर्णता होने पर तू एक क्षण भी जीवित नही रह सकता इन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी तेरी सहायता करने मे सर्वथा असमर्थ है क्योकि आयु के पूर्ण होने पर वे स्वय भी मरण को प्राप्त करते हैं ॥३॥

ससार-भावना

पद्य–यो ससार असार महान, सार आप मे "आपा" जान।

सुख तैं दु ख, दु ख तै सुख होय, समता चारो गति नहिं होय ॥ १-१-४

अर्थ–यह ससार सर्वथा असार ही है। इसमे किंचित् भी सार नही है, निजात्मा ही उपादेय है ऐसा दृढ निश्चय करो। सुख के बाद दु ख और दु ख

वाद सुख का क्रम निरन्तर चलता रहता है। चारो गतियो मे से किसी भी गति मे शान्ति नही है ।।४।।

एकत्व-भावना

पद्य–अनतकाल गति-गति दु ख लह्यो, बाकीकाल अनतो कह्यो ।
सदा अकेलो "चेतन" एक, ते माही गुन बसत अनेक ।। १-१-५

अर्थ–इस जीव ने चारो गतियो मे रहकर, अनन्तकाल तक दु ख भोगा। इसके अतिरिक्त निगोद-राशि मे अनतकाल ससार परिभ्रमण के लिये शेष है अत यही विचार करना चाहिये कि मैं सदा ही चैतन्य स्वरूप आत्मा हू, अकेला हूं और जिनेन्द्रदेव ने चारो गतियो के अतिरिक्त निगोद पर्याय के काल को अनत ही बताया है परन्तु वास्तविकता यह है कि यह जीव अनत गुणयुक्त सदा से अकेला ही है ।।५।।

अन्यत्व-भावना

पद्य–"तू" न किसी का, कोई नही तोय, तेरो सुख दु ख तो को होय ।
यातें "तोको" तू ऊरधार, पर द्रव्यनि तें मोह निवार ।। १-१-६

अर्थ–तू किसी का नही और कोई तेरा नही। तू ही अपने शुभाशुभ कर्म के उदय से प्राप्त सुख दु ख का भोक्ता है। अत यह निश्चय कर कि तेरा हितकारक तू ही है। अत तू पर-द्रव्यो के प्रति ममत्व भाव का परित्याग कर ।।६।।

अशुचि-भावना

पद्य–हाड मास तन लिपटीचाम, रुधिर मूत मल पूरित धाम ।
सो हू थिर न रहे खय होय, याको तजैं मिले शिवलोय ।। १-१-७

अर्थ–यह तेरी मानव देह, हड्डी, मास, रक्त, मूत्र, मल, मेदा, वीर्य जैसी घृणास्पद सप्तधातुओ का घर है। इसके ऊपर चमडी लिपटी हुई है। ऐसी अपवित्र वस्तुओ का घर यह मानवदेह स्थिर भी नही है, नष्ट हो जाती है। जो पुरुष अपने आत्म पुरुषार्थ के द्वारा इसकी ममता को छोड देता है, वही मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है ।।७।।

आस्रव-भावना

पद्य–हित-अनहित-तनकुल-जनमाहि, खोटि वानि हरो क्यो नाहि ।
यातें पुद्गल-करमन जोग, प्रनवै दायक सुख दु ख रोग ।। १-१-८

अर्थ–शरीर, कुटुम्बीजन, तेरा हिताहित कर सकते हैं। ऐसी खोटी मान्यता को तू छोडता क्यो नही है। इसी मिथ्याबुद्धि का निमित्त पाकर पौद्गलिक कार्माण वर्गणाए कर्म रूप परिणमित हो जाती हैं जो कि सुख-दु ख रूप (रोग) का कारण बन जाती है ।।८।।

सवर भावना

पद्य—पाचो इन्द्रिन के तज फैल, चित्त निरोधि लागि शिव गैल ।
"तो" मे तेरी तू कर सेल, कहा रह्यो, है कोल्हू बैल ॥ १-१-६

अर्थ—हे भाई ! तू पाचो इन्द्रियो के समस्त विषयो को त्याग कर, अपने मन को वश मे करके, मोक्ष मार्ग मे लग । तू अपने आत्म-स्वरूप मे विहार कर । तू कोल्हू के बैल की तरह अज्ञानी क्यो बन रहा है ॥६॥

निर्जरा भावना

पद्य—तजि कषाय मन की चलचाल, ध्याओ अपनो रूप रसाल ।
झरैं करमबन्धन दुःख-दान, बहुरि प्रकाशैं केवल ज्ञान १-१-१०

अर्थ—हे भाई ! तू विषय कषायो और अपने मन की चचलता भरी आदत को त्यागकर अपने आनन्दमयी निज स्वरूप का ध्यान कर, जिससे तेरे दुःख दायक कर्मबन्ध की निर्जरा हो जाय और केवल ज्ञान का प्रकाश हो ॥१०॥

लोक-भावना

पद्य—तेरो जनम हुवोनहिं जहा, ऐसो खेतर नाही कहा ।
या ही जनम भूमिका रचो, चलो निकसि तौ विधि तै बचो ॥ १-१-११

अर्थ—ससार मे ऐसा कोई स्थान नही, जहा तू ने जन्म न लिया हो । अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पच परावर्तन रूप ससार में तू सदा से भटक रहा है अत अब बुद्धिमानी इस बात मे है कि इस मनुष्य जन्म मे ऐसी भूमिका तैयार करो कि जिससे पुन पुन शरीर धारण न करना पडे और कर्मों के चक्कर से बच सको ॥११॥

बोधि दुर्लभ-भावना

पद्य—सब व्योहार क्रिया का ज्ञान, भयो अनती बार प्रधान ।
निपट कठिन अपनी पहिचान, ताको पावत होत कल्याण ॥ १-१-१२

अर्थ—हे भाई ! तू ने व्यवहार चारित्र के ज्ञान को ही अनतबार प्रधानता दी परन्तु अपने शुद्धात्म स्वरूप के ज्ञान एव पहिचान को प्रधानता नही दी जबकि कल्याण इसी की प्रधानता से होगा ॥१२॥

धर्म-भावना

पद्य—धर्म स्वभाव आप सरधान, धर्म न शील, नन्हान न दान ।
"बुधजन" गुरु की सीख विचार, गहो धाम आतम हितकार ॥ १-१-१३

अर्थ—आत्मा की यथार्थ श्रद्धा ही तेरा स्वाभाविक धर्म है । सयम, स्नान,

दानादि तेरे स्वाभाविक धर्म नही है। "बुधजन" कवि कहते है कि पूर्वाचार्यों की इस शिक्षा को हृदयगम करो और आत्म-हितकारी मोक्षमार्ग मे लगो ।।१३।।

दूसरी ढाल (जोगीरासा या नरेन्द्र छन्द)

पद्य—सुनरे जीव कहत हू तोको, तेरे हित के काजे।
ह्वे निश्चल मन जब तू धारे, तब कछु इक तो लाजै।
जो दु ख तें थावर तन पायो, वरन् सकू सो नाही।
ठारे बार मुवो अरु जीयो, एक सास के माही ।। २-१-१४

अर्थ—हे प्राणी! तू (मन लगाकर) सुन। मैं तेरी ही भलाई की बात कहता हू। जब तू एकाग्रचित्त हो इस बात को समझेगा तब तुझे अपने पूर्वकृत मिथ्यात्व रूप भावो के कारण स्वय पर लज्जा आने लगेगी। तू ने एक श्वास मे १८ बार जन्म-मरण का जो दु ख उठाया है उसका वर्णन नही हो सकता। ऐसे दु खो से निकलकर काललब्धि वश भूमि, जल, पावक, वायु और वनस्पति रूप स्थावर का प्रत्येक शरीर प्राप्त किया ।।१४।।

पद्य—काल अनतानत रह्यो यो, पुनि विकलत्रय हूवो।
बहुरि असैनी निपट अज्ञानी, छिन-छिन जीयो मूवो ।।
ऐसे जनम गयो करमन-वश, तेरो वश नहि चाल्यो।
पुण्य-उदय सैनी पशु हूवो, तब हू ज्ञान न माल्यो ।। २-२-१५

अर्थ—हे प्राणी! तू ने अनतकाल तो स्थावर पर्याय का शरीर धारण कर बिता दिया। फिर मद-कषाय-वश दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय (विकलत्रय) की पर्यायें प्राप्त की। फिर असैनी पचेन्द्रिय हुआ परन्तु वहा मन के न होने से निपट अज्ञानी रहा और कर्मोदय के अधीन रहने से तेरा कुछ भी वश नही चल सका अर्थात् तू पुरुषार्थ न कर सका अत तेरा जीवन व्यर्थ ही गया। यदि कभी पुण्योदय से सैनी पचेन्द्रिय पशु बन गया तो वहा भी तुझे (सम्यक्) ज्ञान की प्राप्ति न हो सकी ।।१५।।

पद्य—जबर मिल्यो तिन तोहि सतायो, निबल मिल्यो तैं खायो।
मात-तिया समभोगी पापी, तातें नरक सिधायो ।।
कोटिक बीछू काटत जैसे, ऐसी भूमि तहा है।
रुधिर राध परवाह बहत है, दुर्गन्ध निपट जहा है ।। २-३-१६

अर्थ—पशु पर्याय मे तू अपने से अधिक बलवान के द्वारा सताया गया और कभी तू ने अपने से निर्बल प्राणी को सताया या मारकर खा गया। तू ने माता

को स्त्री समान सेवन कर पाप उपार्जन किया (उस पाप के उदय से) तू ने नरक पर्याय प्राप्त की। उन नरकों में भूमि का स्पर्श करने से इतना दुःख हुआ जितना करोडो बिच्छुओ के काटने पर होता है। उन नरको मे खून और पीव का प्रवाह वहता रहता है जहा दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध है ॥१६॥

पद्य—घाव करत असि-पत्र अग मे, शीत-उष्ण तन गाले।
कोई काटे करवत कर गहि, कोई पावक जाले ॥
जथाजोग सागर-थिति भुगतै, दुःख को अन्त न आवै।
कर्म-विपाक असा ही ह्वै तो, मानुष गति तब पावै ॥ २-४-१७

अर्थ—उन नरको मे (सेमर) के वृक्ष हैं जिनके पत्ते गिरकर तलवार की तरह शरीर पर घाव कर देते हैं। उन नरको मे कोई नारकी किसी दूसरे नारकी को अपने हाथ मे करवत लेकर काट डालता है। कोई किसी को अग्नि मे जला देता है परन्तु उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती। अत अपने कर्मोदय से प्राप्त सागरो की आयु पर्यन्त उन दुःखों को भोगता है। यदि कोई (पुण्य-सयोग) हुआ तो मनुष्य गति को प्राप्त करता है ॥१७॥

पद्य—मात उदर मे रहे गीद ह्वे, निकसत ही विललावे।
डम्मा-दात-गला-विस्फोटक, डाकिनि तैं वच जावै ॥
तो जोवन मे भामिनि के सग, निशि-दिन भोग रचावै।
अन्धा ह्वै धधे दिन खोवे, वूढा नार हलावै ॥ २-५-१८

अर्थ—(मनुष्य पर्याय मे आने पर) प्रथम तो माता के उदर मे गिडोले की भाति (सिमटकर) रहता है। वहा से निकलते ही रोने लग जाता है। वचपन मे डाढ, दात, फोडा और डाकिनि से वच गया तो युवावस्था मे पत्नी के साथ भोगो मे रात-दिन लिप्त रहता है तथा अधे की भाति व्यापार आदि मे अपने जीवन के दिन व्यतीत करता है फिर वृद्धावस्था के आ जाने पर गर्दन हिलने लग जाती है अर्थात् प्रत्येक अवस्था मे सदुपदेश से इकार करता है ॥१८॥

पद्य—जम पकरै तव जोर न चाले, सैना सैन वतावे।
मन्दकषाय होय तो भाई, भवनत्रिक पद पावै ॥
पर की सम्पत्ति लखि अति झूरै, कै रतिकाल गमावै।
आयु अन्त माला मुरझावै, तव लखि-लखि पछतावै ॥ २-६-१९

अर्थ—जव यमराज धर दवोचता है अर्थात् जव आयु के निषेक पूरे हो जाते हैं तव इस जीव का कोई वश नही चलता, वाणी के द्वारा कुछ कह नही पाता, सकेत द्वारा ही कुछ वताता है। यदि कभी मरण-काल मे कषाय की मन्दता हुई

तो भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवो मे पैदा होता है, वहां पर भी दूसरे देवो की विभूति को देखकर झूरता रहता है या देवागनाओ के साथ काम क्रीडाओ मे अपना समय व्यर्थ ही गवा देता है फिर मरणकाल आने पर माला के मुरझाने से पश्चाताप की अग्नि मे जलता रहता है ।।१६।।

पद्य—चवै तहा तें थावर होवें, रूलि है काल अनन्ता ।

या विधि पच परा वृत पूरत, दुख को नाही अन्ता ।।

काललब्धि जिन-गुरु-किरपा तें, आप "आप" को जानै ।

तब ही "बुधजन" भवदधि तरिकै, पहु च जाय शिव थानै ।। २-७-२०

अर्थ—इस मिथ्याभाव के कारण देव पर्याय से च्युत होकर स्थावर अर्थात् एकेन्द्रिय के शरीर को धारण करता है और अनन्तकाल तक रुलता रहता है । इस प्रकार यह जीव पचपरावर्तन रूप ससार मे भ्रमण करता हुआ अनन्त दुख भोगता है । यदि किसी पुण्य-सयोग से काललब्धि के पक जाने तथा जिनेन्द्र देव एव निर्ग्रन्थ गुरुओ की कृपा हुई तो आत्म-स्वरूप का भान होने से ससार समुद्र से पार होकर मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है ।।२०।।

तीसरी—ढाल (पद्धरिछन्द)

पद्य—या विधि भव-वन माहि जीव, वस-मोह महल सूते सदीव ।

उपदेश तथा सहजै प्रवोध, तव ही जागै ज्यो उठत जोध ।। ३-१-२१

अर्थ—(मिथ्यादर्शन, ज्ञान और चारित्र के वशीभूत हो, स्व को भूल यह जीव सदैव ससार रूप वन मे गाढ निद्रा मे सोता रहता है । जव कभी पुण्योदय से इसे सद्गुरुओ (निर्ग्रन्थ गुरुओ) का उपदेश मिलता है तथा जब इसे अपनी आत्मा का सहज भान हो जाता है तभी यह जागृत होकर, सावधान हो जाता है । जैसे कोई योद्धा जागकर खडा हो जाता है ।।२१।।

पद्य—जब चितवत अपने माहि आप, हू चिदानन्द नहि पुण्य-पाप ।

मेरो नाहीं है रागभाव, ये तो विधिवश उपजे विभाव ।। ३-२-२२

अर्थ—जव यह प्राणी अपने मे, अपना ही अवलोकन करता है और जव यह निर्णय करता है कि मैं तो चिदानन्द स्वभावी आत्मा हू , पुण्य-पाप रूप भाव मेरे नही हैं, राग-द्वेषादि भाव भी मेरे नही हैं क्योकि ये तो कर्म-जनित वैभाविक-भाव हैं ।।२२।।

पद्य—हू नित्य-निरजन, सिद्धसमान, ज्ञानावरणी आच्छाद ज्ञान ।

निश्चय शुद्ध इक, व्योहार भेव, गुन-गुनी, अग-अगी अछेव ।। ३-३-२३

अर्थ—मैं नित्य हू , निरजन हू और सिद्ध समान हू । ज्ञानावरणादि कर्मों

ने, मेरी ज्ञान-शक्ति को आच्छादित कर लिया है पर (नष्ट नही किया है)। शुद्ध निश्चय-नय से मैं (मात्र ज्ञाता-दृष्टा ही हू, समय सार हूं) और व्यवहार नय की अपेक्षा मे अनेक भेद वाला हूं। उन भेदो का कभी अन्त नहीं हो सकता ॥२३॥

पद्य—मानुष-सुर-नारक-पशु पर्याय, शिशु-युवा-वृद्ध-बहुरूप काय।
धनवान-दरिद्री-दास-राव, ये तो विडवना मुझ न भाव ॥ ३-४-२४

अर्थ—मनुष्य, देव, नरक, तिर्यंच पर्यायों कर प्राप्त, वाल्यकाल, युवाकाल और वृद्धकाल आदि शरीर सम्बन्धी अनेक पर्यायो की प्राप्ति तथा धनाढ्यता, दरिद्रता, सेवकपना, स्वामीपना ये समस्त पर्यायें एक प्रकार की विडबना है, पुद्गल कर्म जनित हैं और इनमे मेरी रुचि किंचित् भी नही है ॥२४॥

पद्य—रस फरस गध वरनादि नाम, मेरे नाही मैं ज्ञान-धाम।
हू एक रूप नहिं होत और, मुझ मे प्रतिविम्वित सकलठौर ॥ ३-५-२५

अर्थ—रस, स्पर्श, गन्ध, वर्ण आदि पुद्गल के हैं, मेरे नही हैं। मे तो मात्र ज्ञान-शरीरी हू (ज्ञान का पुज) हू। मैं अखड, एकरूप हू, अन्य रूप मैं नही हू। ससार के समस्त पदार्थ मेरे ज्ञान-स्वभाव मे झलकते हैं ॥२५॥

पद्य—तन पुलकित, उर हर्षित सदीव,ज्यो भई रक घर रिधि अतीव।
जव प्रवल अप्रत्याख्यानथाय, तव चित परणति ऐसी उपाय ॥ ३-६-२६

अर्थ—(उपर्युक्त चितवन के फलस्वरूप) शरीर पुलकित हो जाता है और हृदय निरतर हर्षमय हो उठता है जैसे कि जन्मत दरिद्र के घर मे महाऋद्धि प्रगट हो गई हो। इस प्रकार सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाने पर भी जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय का तीव्र उदय रहता है तव चित्त की परिणति नीचे लिखे अनुसार वनती है। ।२६॥

पद्य—सो सुनो भविक चित्तधारिकान, वरनत हू ताको विधि-विधान।
सव करैं काज घर माहिं वास, ज्यो भिन्न कमल जल मे निवास ॥३-७-२७

अर्थ—उस सम्यग्दृष्टि जीव की मनोदशा के विधि विधान का वर्णन कर रहा हू। हे भव्यजन! (तुम उसे मन और कान लगाकर सुनो यद्यपि) (अविरत सम्यग्दृष्टि जीव) गृहस्थी मे रहता है, घर के सम्पूर्ण कार्य भी करता है तथापि उसकी परिणति जल से भिन्न कमल की भाति (अलिप्त) ही रहती है ॥२७॥

पद्य—ज्यो सती अग माही सिंगार, अति करत प्यार ज्यों नगर नारि।
ज्यो धाय लडावत आन वाल, त्यो भोग करत नाही खुशाल ॥३-८-२८

अर्थ—जिस प्रकार (पति की चिता पर आरूढ होने वाली) सती स्त्री अपने शरीर का शृगार करती है परन्तु उस शृगार मे उसकी रूचि नही है, अथवा

जिस प्रकार वेश्या अत्यधिक प्यार तो जताती है परन्तु उसकी रुचि पुरुष विशेष मे नही है अथवा जिस प्रकार धाय अन्य के बालक से लाड-प्यार तो करती है परन्तु उसे पराया ही समझती है उसी प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कर्मोदय वशात् भोग भोगते हुए भी उसमे आनन्दित नही होता ॥२८॥

पद्य—जह उदय मोह चेष्टित प्रभाव, नहि होय रचहू त्यागभाव ।
तह करै मद खोटी कषाय, घर मे उदास व्है, अथिर ध्याय ॥ ३-९-२९

अर्थ—जब तक चारित्र मोह के उदय का प्रभाव जीव पर बना रहता है तब तक उस जीव के त्याग किंचित् भी नही होता । वह केवल अनन्तानुबन्धी कषाय तथा मिथ्यात्व भाव को मन्द करता है, घर मे भी उदास भाव से रहता है और ससार के (समस्त) पदार्थों को अस्थिर समझता है ॥२९॥

पद्य—सब की रक्षा युत न्यायनीति, जिन शासन गुरु की दृढ प्रतीति ।
बहुरले अर्द्ध-पुद्गल प्रमाण, अन्तर्मुहूर्त ले परम-धाम ॥ ३-१०-३०

अर्थ—उस अविरत सम्यग्दृष्टि जीव की परिणति, समस्त प्राणियो की रक्षा करने, न्याय नीति पर चलने, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की दृढ प्रतीति धारण करने रूप हो जाती है और तब उसे अधिक से अधिक अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल तक ही ससार मे परिभ्रमण करना पडता है । पुन वह (अपने ज्ञान और वैराग्य के बल से मुनिपद धारण करते ही) अन्तर्मुहूर्त मे मोक्ष स्थान को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥

पद्य—वे धन्य जीव, धनिभाग सोय, ताके ऐसी परतीति जोय ।
ताकी महिमा व्है स्वर्गलोय "बुधजन" भाषै मोतैं न होय ॥ ३-११-३१

अर्थ—वे जीव धन्य हैं, उनका भाग्य भी धन्य है जिनकी, अपनी आत्मा की अखण्ड शक्ति पर ऐसी दृढ प्रतीति हो जाती है । ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव की इस दृढ श्रद्धा की प्रशसा (इन्द्र) स्वर्गो मे करता है । कविवर "बुधजन" कहते है कि उस अविरत सम्यग्दृष्टि की महिमा का वर्णन मुझसे नही हो सकता ॥३१॥

चौथी ढाल (सोरठा छद)

पद्य—ऊग्यो आतम सूर, दूर भयो मिथ्यात-तम ।
अब प्रगटे गुनभूर, तिनमे कछु इक कहत हू ॥ ४-१-३२

अर्थ—(सम्यग्दृष्टि के आत्मा रूपी) सूर्य का उदय होने पर मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का नाश हो गया है और अनेक गुण प्रगट हो गये हैं । उन गुणो मे से कुछ गुणो का वर्णन करता हू ॥३२॥

निः शकित व निःकाक्षित अंग

पद्य—शकामन मे नाहि, तत्वारथ सरधान मे ।
निरवाछा चितमाहि, परमारथ मे रत रहे ॥ ४-२-३३

अर्थ—सम्यग्दृष्टि के मन मे तत्वार्थ के श्रद्धान मे किसी भी प्रकार की शका नही रहती है। वह ससार के विषय भोगो मे किसी भी प्रकार की वाछा नही रखता तथा उसका मन धर्म मे लीन रहता है ॥३३॥

निर्विचिकित्सा व अमूढ़दृष्टि अंग

पद्य—नेक न करत गिलान, बाह्य मलिन मुनि-तन लखे।
नाहीं होत अजान, तत्व-कुतत्व विचार मे ॥ ४-३-३४

अर्थ—सम्यग्दृष्टि के मन मे बाहर से अपवित्र तथा रत्नत्रय से पवित्र मुनिजनो के शरीर को देखकर (किंचित् भी) घृणा का भाव पैदा नहीं होता। वह तत्व-कुतत्व अथवा हेय-उपादेय के निर्णय करने मे किसी भी प्रकार की भूल नहीं करता ॥३४॥

उपगूहन एव स्थितिकरण अ ग

पद्य—उर मे दया विशेष, गुन प्रगटे, औगुन ढके।
शिथिल धर्म मे देख, जैसे-तैसे दृढ करे ॥ ४-४-३५

अर्थ—उसके हृदय मे विशेष रूप से करुणा का भाव जागृत हो जाता है अत उसमें दया का सागर लहराता है। वह दूसरो के गुणो को प्रगट करता और अवगुणो को ढाकता है। यदि कोई साधर्मीबन्धु दरिद्रता आदि कारणो से धर्म से विचलित होता है तो जैसे बने तैसे (यथा समव सहायता देकर) धर्म मे दृढ करता है ॥३५॥

पद्य—साधर्मी पहिचान, धरै हेत गौ वत्स लो।
महिमा होत महान, धर्म काज ऐसे करै ॥ ४-५-३६

अर्थ—जिस प्रकार गाय अपने बछडे पर निष्काम प्रेम करती है, उसी प्रकार वह साधर्मी बन्धुओ के प्रति "यह हमारा साधर्मी बन्धु है" इतना ज्ञान होते ही नि स्वार्थ प्रेम करता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव रत्नत्रय के तेज से अपनी आत्मा की प्रभावना करता है और दान, तप, जिनेन्द्रअर्चा, ज्ञान की अधिकता आदि के द्वारा पवित्र जैन धर्म की प्रभावना करता है ॥३६॥

आठ मद जो सम्यग्दृष्टि जीव मे नहीं होते

पद्य—मद नहिं जो नृप तात, मद नहिं भूपति माम को।
मद नहिं विभौ लहात, मद नहिं सुन्दर रूप को ॥
मद नहिं जो विद्वान, मद नहिं तन मे जो मदन।
मद नहिं जो परधान, मद नहिं संपति कोष को ॥ ४-६-३७

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीव निम्नलिखित आठ प्रकार के मद नही करता—

(1) यदि पिता राजा हो तो कुल का मद नही करता।

(2) यदि मामा राजा हो तो जाति का मद नही करता।

(3) यदि ऐश्वर्यवान हो तो अधिकार का मद नही करता।

(4) यदि सुन्दर रूप वाला हो तो रूप का मद नहीं करता।

(५) यदि स्वय विद्वान् हो तो ज्ञान का मद नही करता ।
(६) यदि शरीर मे बल हो तो बल का मद नही करता ।
(७) यदि प्रभुता प्राप्त हुई हो तो प्रभुता का मद नही करता ।
(८) यदि अत्यधिक सम्पन्नता हो तो धन का मद नही करता ।३७।

पद्य—हूवो आतम-ज्ञान, तजि रागादि विभाव पर ।
ताके व्है क्यो मान, जात्यादिक वसु अथिर को ।। ४-७-३८

अर्थ—(जिसे अपनी आत्मा के भानपूर्वक) सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हुई है और जिसने राग-द्वेषादि को विभाव भाव जानकर छोड दिया है ऐसे जीव को आठ मद (कुलजाति आदि) कैसे हो सकते हैं ? ।।३८।।

३ मूढता

पद्य—वन्दत है अरहत, जिन-मुनि, जिन-सिद्धान्त को ।
न मैं न देख महत, कुगुरुद्वकुदेव, कुग्र थ को ।। ४-८-३९

अर्थ—उस सम्यग्दृष्टि जीव की श्रद्धा इतनी दृढ होती है कि वह (अरहतदेव) (सच्चेदेव) निर्ग्रन्थमुनि (सच्चेगुरु) जिनवाणी (सच्चे शास्त्र) को ही नमस्कार करता है । वह इनके विपरीत कुगुरू, कुदेव, कुशास्त्रो को (भय से, आशा से, स्नेह से, लोभ से) भी कभी नमस्कार नही करता चाहे वे कितने ही महिमा शास्त्री क्यो न हो ? अत वह ३ मूढता से रहित होता है ।।३९।।

छह अनायत

पद्य—कुत्सित आगम देव, कुत्सित गुरु पुनि सेवका ।
परशसा षट्भेव, करे न समकित वान व्है ।। ४-९-४०

अर्थ—वह सम्यग्दृष्टि जीव खोटे शास्त्र, खोटे देव और खोटे गुरुओ की तथा उनके सेवको (प्रशसकों) की प्रशसा कदापि नहीं करता अत वह छह अनायतन का भी त्यागी होता है ।।४०।।

पद्य—प्रगटा इसा सुभाव, करा अभाव मिथ्यात का ।
वन्दे ताके पाव, "बुधजन" मन-वच-काय तैं । ४-१०-४१

अर्थ—"बुधजन" कवि कहते हैं कि मिथ्यात्व के अभाव होने से जिसका ऐसा स्वभाव प्रगट हुआ है । मैं ऐसे वीतराग-स्वभावी सम्यग्दृष्टि जीव की मन, वचन, काय से वदना करता हू ।।४१।।

पांचवीं ढाल (छन्द चाल)

पद्य—तिरजत मनुष्य दोऊ गति मे, व्रत-धारक, सरधाचित में ।
सो अगलित नीर न पीवैं, निशि-भोजन तजत सदीवैं ।। ५-१-४२

अर्थ—तिर्यंच और मनुष्य इन दोनो गतियो मे, श्रद्धावान, व्रतधारक (जैन गृहस्थ) बिना छना जल नही पीता है और सदा के लिये रात्रि-भोजन का त्यागी होता है ।।४२।।

पद्य—मुख अभक्ष्य वस्तु नहिं लावै, जिन भक्ति त्रिकाल रचावै ।

मन-वच-तन कपट निवारै कृत-कारित-मोद सवारै ॥ ५–२–४३

अर्थ—(व्रती गृहस्थ कभी भी अजानफल आदि २२ प्रकार के अभक्ष पदार्थों का) भक्षण नही करता । प्रात मध्यान्ह और सायकाल (त्रिकाल) जिनेन्द्रदेव की भक्ति करता है । अपने मन, वचन काय से तथा कृत-कारित-अनुमोदना से (किसी के साथ किसी भी प्रकार का) कपट का व्यवहार नही करता ॥४३॥

पद्य—जैसी उपशमित कषाया, तैसा तिन त्याग बनाया ।

कोऊ सात-व्यसन को त्यागैं, कोऊ अणुव्रत मे मन पागैं ॥ ५–३–४४

अर्थ—(इसके आगे) जैसा-जैसा कषाय का उपशम होता जाता है अर्थात् कषाय घटती जाती है, वैसी ही वैसी वह त्यागवृत्ति को धारण करता जाता है । कोई तो सप्त-व्यसनो का त्यागकरता है और कोई पाच अणुव्रतो के पालन मे अपना मन लगाता है । इस प्रकार वह अणुव्रत का पालन करता है ॥४४॥

अहिंसा व सत्याणुव्रत

पद्य—त्रसजीव कभू नहिं मारै, विरथा थावर न सहारै ।

पर-हित-बिन झूठ न बोलै, मुख साच बिना नहिं खोलै ॥ ५–४–४५

अर्थ—(वह सम्यग्दृष्टि गृहस्थ अहिंसा अणुव्रत के पालनार्थ) त्रस जीवो की हिंसा का सर्वथा त्यागी होता है और यद्यपि स्थावर जीवो की हिंसा का त्यागी नहीं है तथापि उनकी (निष्प्रयोजन) विराधना नही करता । यह उसका अहिंसा-अणुव्रत है ॥

सत्याणुव्रत की रक्षार्थ दूसरों की प्राण—रक्षा-हेतु ही असत्य बोलता है अन्यथा नही । वह अपने प्राणो की रक्षार्थ कभी भी असत्य नही बोलता । वह जब बोलेगा तब सत्य ही बोलेगा ।४५॥

अचौर्य व ब्रह्मचर्य अणुव्रत

पद्य—जल मृतिका विन, धन सबहू, विनदियो लेय नहिं कबहूं ।

ब्याही वनिता विननारी, लघु बहिन, बडी महतारी ॥ ५–५–४६

अर्थ—जल और मिट्टी के सिवाय अन्य किसी भी प्रकार की वस्तु विना दिये कभी भी ग्रहण नहीं करता अत वह अचौर्य-अणुव्रत पालता है । विवाहिता पत्नी के सिवाय, अपने से छोटी उम्र की स्त्रियो को बहिन के समान और अपने से बडी स्त्रियो को माता के समान समझता है अत. वह ब्रह्मचर्य अणुव्रत पालता है ॥४६॥

परिग्रह परिमाण-अणुव्रत और दिग्व्रत का स्वरूप

पद्य—तिसना का जोर सकोचै, ज्यादा परिग्रह को मोचै ।

दिस की मरजादा लावै, बाहर नहिं पाव हिलावै । ५–६–४७

अर्थ—(वह जैन गृहस्थ) तृष्णा भाव को कम करके परिग्रह का परिमाण करता है। इस प्रकार पाच अणुव्रतो का पालन करता है। दसो दिशाओ मे जाने-आने का जीवन-पर्यन्त के लिये त्याग कर, एक कदम भी उस सीमा से बाहर नहीं बढाता अत वह दिग्व्रत का पालन करता है ॥४७॥

देशव्रत और अनर्थ दडव्रत का स्वरूप

पद्य—ताहू मे पुर, सुर, सरिता, नित राखत, अघ तै डरता।
सब अनरथ दड न करिहै, छिन-छिन निजधर्म सुमरि है ॥ ५-७-४८

अर्थ—दिग्व्रत मे जीवन पर्यन्त के लिये की गई मर्यादा को सकुचित करने के लिये नगर, तालाब, नदी आदि तक जाने-आने की मर्यादा करके देशव्रत का पालन करता है और नित्य ही पापो से डरता है। यह उसका देशव्रत है। वह पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दु श्रुति और प्रमादचर्या इन पाच प्रकार के अनर्थ दडो का त्यागकर अनर्थ दड व्रत का पालन करता है और प्रतिक्षण अपने आत्म धर्म का स्मरण करता रहता है। इस प्रकार ३ गुणव्रतो का पालन करता है ॥४८॥

सामयिक शिक्षाव्रत

पद्य—दर्व, थान, काल सुध भावै, समता मामायिक ध्यावै।
यो वह एकाकी ही है, निष्किचन मुनि ज्यो सोहै ॥ ५-८-४९

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा पूर्वक, मन मे समताभाव धारण कर सामायिक करता है। सामायिक के समय अपने आप को एकाकी अनुभव करता है तथा अकिंचन-भाव, धारण कर उपचार से मुनिवत् शोभित होता है ॥४९॥

भोगोपभोग परिमाण और अतिथि सविभाग शिक्षाव्रत

पद्य—परिग्रह परिमाण विचारै, नितनेम भोग का धारै।
मुनि आवन विरिया जोवै, तब जोग असन मुख लावै। ५-९-५०

अर्थ—(वह सम्यग्दृष्टि गृहस्थ) परिग्रह परिमाण व्रत का ध्यान रखते हुए प्रतिदिन भोगोपभोग की सामग्री का नियम करता है अत वह भोगोपभोग परिमाण व्रत का पालन करता है।

घर, पर, मुनि, आर्यिका आदि उत्तम पात्रो के आने की प्रतीक्षा करता है। द्वारापेक्षण क्रिया के बाद ही योग्य भोजन लेता है अत वह अतिथि सविभाग व्रत का पालन करता है ॥५०॥

सल्लेखना

पद्य—ये उत्तम किरिया करता, नित रहै पाप तै डरता।
जब निकट मृत्यु निज जानै, तब ही सब ममता भानै ॥ ५-१०-५१।

अर्थ—इस प्रकार की उत्तम क्रिया (५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, सामायिक, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि-सविभाग) को पालता हुआ (वह गृहस्थ) सदैव पापो से भयभीत

रहता है और जब मरण-काल समीप आता जानता है तब सब प्रकार से ममत्व भाव को दूर करता है और सावधान चित हो समाधिमरण धारण करता है ।।५१।।

पद्य–ऐसे पुरुषोत्तम केरा, "बुधजन" चरनन का चेरा ।
वे निश्चय सुरपद पावें, थोरे दिन मे शिव जावें ।। ५–११–५२

अर्थ–कविवर "बुधजन" कहते हैं कि जो इस प्रकार के पुरुषार्थ को प्रगट करता है अर्थात् गृहस्थोचित,व्रतो का निरतिचार पालन करता है और अत समय मे सल्लेखना धारण करता है। उस सम्यग्दष्टि व्रती श्रावक के चरणो का दास हू । ऐसा जीवनिश्चय ही कल्पवासी देव होता है तथा वहा से चलकर मनुष्य भव धारण करके, मुनिपद धारण करके (३भव में ही) मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।।५२।।

सूचना—कवि ने १२ व्रतो के उल्लेख मे "प्रोषधोपवास" नामक शिक्षाव्रत का उल्लेख न करते हुए "सल्लेखना" की परिगणना करके १२ व्रतो की सख्या गिनाई है। ऐसा ... ...

उमास्वामी आदि आचार्यों एव प० दौलतरामजी आदि विद्वानो ने सल्लेखना को १२ व्रतो के अतिरिक्त लिया है और यह ठीक भी है क्योकि सल्लेखना केवल मरणकाल मे ही धारण की जाती है, जबकि १२ व्रतों का पालन सपूर्ण व्रत-काल मे किया जाता है।

छठी-ढाल (रोलाछन्द)

पद्य—अथिर ध्याय परजाय, भोगतैं होय उदासी ।
नित्य-निरजन-ज्योति, आतमा घट मे भासी ।। ६-१-५३

अर्थ—जो यह निर्णय कर लेता है कि (प्रत्येक द्रव्य की) समस्त पर्यायें अस्थिर हैं, वह भोगो के प्रति उदासीन भाव धारण कर लेता है तथा नित्य-निरजन-ज्योति स्वरूप आत्मा मेरे ही घट मे हैं उसे ऐसा विश्वास उत्पन्न हो जाता है ।।५३।।

पद्य—सुत-दारादि बुलाय, सबनितैं मोह निवारा ।
त्यागि शहर-धन-धाम, वास वन-बीच विचारा ।। ६-२-५४

अर्थ—जिसे ससार की अस्थिरता का आभास हो गया है वह अपने पुत्र, स्त्री आदि को बुलाकर (उनसे क्षमा का आदान-प्रदान करके) मोह-रहित हो जाता है तथा शहर, धन-सम्पत्ति, गृहवास आदि के मोह को छोड़, वन मे रहने का दृढ सकल्प कर लेता है ।।५४।।

पद्य—भूषण-वसन-उतारि, नगन व्है आतम चीन्हा ।
गुरु ढिग दीक्षा धारि, सीस कचलोच जु कीना ।। ६-३-५५

अर्थ—(जिसे अपनी आत्मा की पहिचान हो गई है वह) समस्त प्रकार के वस्त्राभूषणो का परित्याग कर, गुरु के समीप जा, दीक्षा धारण कर लेता है (निर्ग्रन्थ हो जाता है) तथा (अपने हाथ से) केश लु चन क्रिया सम्पन्न करता है ।।५५।।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य महाव्रत

पद्य—त्रस थावर का घात त्याग, मन-वच-तन लीना।
भूठ वचन परिहार, गहैनहिं जल विन दीना ।। ६-४-५६

अर्थ—वह (भव्यजीव) मन-वचन-काय से छह काय के जीवो की हिंसा का परित्याग कर अहिंसा महाव्रत का पालन करता है। निर्दोष वचन बोलने से सत्य महाव्रत का पालन करता है। जल, मिट्टी आदि भी विना दिये नही लेने से अचौर्यमहाव्रत का पालन करता है ।।५६।।

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रत

पद्य—चेतन-जड-तिय भोग, तज्या गति-गति दु खकारा।
अहि-कचुकि ज्योजान, चित्त तै परिग्रह डारा ।। ६-५-५७

अर्थ—वह (मुनि) चेतन और अचेतन समस्त प्रकार की स्त्रियो के सेवन को चारो गतियो के दुःख का कारण जान, छोड देता है अत ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करता है।

जिस प्रकार साप केंचुली त्यागकर सुन्दरता को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार मुनि का मन अन्तरग एव वहिरग परिग्रह का त्याग होने से अत्यन्त निर्मल हो जाता है। यह मुनि का परिग्रह (मूर्च्छा) त्याग महाव्रत है ।।५७।।

५ समिति ३ गुप्ति एव परीषहजय

पद्य—गुप्ति पालने काज, कपट मन-वच-तन नाहीं।
पांचो समिति सवारि, परीषह सहि हैं आही ।। ६-६-५८

अर्थ—अपने स्वरूप मे गुप्त रहने हेतु वह जटिलता को रहने ही नही देवे अत ३ गुप्तियो (मनगुप्ति, वचनगुप्ति कायगुप्ति) को पालते हैं। ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और प्रतिष्ठापन इन पाच समितियो का पालन (सावधानी-पूर्वक) करते हैं।

(अकस्मात, आये हुए परीषहो (कष्टो) को समता-भाव पूर्वक सहन करते हैं। यह उनका परीषह-जय है ।।५८।।

पद्य—छाडि सकल जजाल, आपकरि आप "आप" मे।
अपने हित को आप, करो व्है शुद्ध जाप मे ।। ६-७-५९

अर्थ—वह सासारिक समस्त प्रकार के विकल्प जालो को जजाल समझकर छोड़ देता है तथा आत्म-हित के लिये स्वय आत्मा मे लीन हो जाता है और ध्यानाग्नि मे तपकर शुद्ध हो जाता है ।।५९।।

पद्य—ऐसी निश्चल काय, ध्यान मे मुनि-जन केरी।

मानो पाथर रची, किधो चित्राम उकेरी ॥ ६-८-६०

अर्थ—ध्यान मे स्थित मुनिजनो की निश्चल काया को देखकर ऐसा लगता है मानो यह पाषाण-प्रतिमा हो अथवा किसी (चित्रकार) ने किसी पत्थर पर चित्र ही उकेर दिया हो ॥६०॥

पद्य—चार घातिय नाशि, ज्ञान मे लोक निहारा।

देजिन-मत आदेश, भविक को दु खते टारा ॥ ६-९-६१

अर्थ—जिन्होने शुद्धात्म-ध्यान के बल से चारो घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, जिनकी केवल ज्ञान-ज्योति मे जगत के अनत पदार्थ तथा उनकी अनत पर्यायें प्रतिभासित हो रही हैं, जिन्होने भव्य जीवो के लिये कल्याण-कारक जैन-मत का उपदेश दिया है तथा उनको ससार के दु ख से छुडाया है ॥६१॥

पद्य—बहुरि अघाती तोरि, समय मे शिवपद पाया।

अलख अखडित ज्योति, शुद्ध चेतन ठहराया ॥ ६-१०-६२

अर्थ—पुन शेष चार अघातिया कर्मों का नाश कर एक समय मे मोक्षपद प्राप्त कर लिया तथा अपनी शुद्धात्मा को अखड ज्योति-स्वरूप बना लिया है और शुद्ध चेतना स्वरूप हो गये हैं ॥६२॥

पद्य—काल अनतानत, जैसे के तैसे रहि हैं।

अविनाशी अविकार, अचल अनुपमसुख लहि हैं ॥ ६-११-६३

अर्थ—वे मुक्तात्मा अब अनतानत काल पर्यन्त, यथावत् रहेंगे और विनाश-रहित, विकार रहित, चचलता रहित, उपमा रहित (आत्मिक) सुख को प्राप्त करेंगे ॥६३॥

पद्य—ऐसी भावन भाय, ऐसे जे कारज करि हैं।

ते ऐसे ही होय, दुष्ट करमन को हरि हैं ॥ ६-१२-६४

अर्थ—जो नित्य-प्रति ऐसी भावना करते रहेंगे तथा उसी के अनुसार आचरण करेंगे वे वैसे ही बन जायगे अर्थात् सिद्धपद प्राप्त करेंगे ॥६४॥

पद्य—जिनके उर विश्वास, वचन-जिन शासन नाही।

ते भोगातुर होय, सहैं दु ख नरकन माही ॥ ६-१३-६५

अर्थ—जिनके हृदय मे जिनेन्द्र-कथित बातो पर विश्वास नही है वे विषय भोगो से व्याकुल होकर नरकादि के दु खो को सहन करेंगे ॥६५॥

पद्य—सुख-दु ख पूर्व विपाक, अरे मत कलपै जीया।

कठिन-कठिन तैं मीत, जन्म मानुष तै लीया ॥ ६,१४-६६

अर्थ—हे जीव ! इस ससार के सुख-दु ख तो पूर्वोपार्जित कर्मों का फल हैं

अत तू इनके चितवन मे अपना अनमोल समय मत बिता-क्योकि हे मित्र । तूने बडी ही कठिनाई से यह मनुष्य-जन्म पाया है ॥६६॥

पद्य—सो विरथा मन सोय, जोय आपा पर भाई ।
गई न लामै फेरि, उदधि मे डूबी राई ॥ ६-१५-६७

अर्थ—हे भाई ! इस दुर्लभ नर-तन को विषयासक्त होकर व्यर्थ मत गवा और स्व-पर भेद-विज्ञान को प्रगट कर । जिस प्रकार राई का दाना समुद्र मे डूब जाय तो उसका प्राप्त करना भी अत्यन्त कठिन है ॥६७॥

पद्य—भला नरक का वास, सहित समकित जे पाता ।
बुरे बने जे देव, नृपति विथ्यामत माता ॥ ६-१६-६८

अर्थ—सम्यकत्व सहित, नरकवास कही अधिक अच्छा है अपेक्षाकृत मिथ्यात्व सहित देव या राजा की पर्याय को धारण करने से ॥६८॥

बुधजन सतसई

देवानुरागशतक—

सनमतिपद सनमतिकरन, बन्दी मगलकार ।
बरनै बुधजन सतसई, निजपर हितकरतार ॥१॥
परमधरमकरतार है, भविजन सुखकरतार ।
नित वदन करता रहू, मेरा गहि करतार ॥२॥
परू पगतरै आपके, पाप पगतरै दैन ।
हरी कर्मको सबतरै, करो सब तरै चैन ॥३॥
सबलायक, ज्ञायक प्रभू, घायक कर्मकलेस ।
लायक जानिर नमत हैं, पायक भये सुरेस ॥४॥
नमू तोहि कर जोरिके, सिव वनरी कर जोरी ।
वरजोरी विधिकौ हरौ, तीन लोक के तात ॥५॥
तीन कालकी खबरि तुम, तीन लोक के तात ।
त्रिविधसुद्ध वदन करू, त्रिविध ताप मिटि जात ॥६॥
तीन लोक के पति प्रभु, परमातम परमेस ।
मन-वच-तन ते नमत हू, मेटो कठिन कलेस ॥७॥
पूजू तेरे पायकू, परम पदारथ जान ।
तुम पूजेते होत हैं सेवक आप समान ॥८॥
तुम समान कोउ आन नहीं, तमू जाय कर नाय ।
सुरपति, नरपति, नागपति, आय परे तुम पाय ॥६॥

तुम अनतगुन मुखथकी, कैसे गाये जात।
इंद मुनिंद फनिंदहू, गान करत थकि जात ॥१०॥

तुम अनत महिमा अतुल, क्यो मुख करिहूं गान।
सागर जल पीत न बने, पीजै तृषा समान ॥११॥

श्रद्धा बिना कैसे रहु, औसर मिल्यो अबार।
ऐसी विरिया टरि गया, कैसे बनत सुधार ॥१२॥

जो हू कहाऊ औरतें, तो न मिटे उरभार।
मेरी तो तोसे बनी तातें करू पुकार ॥१३॥

आनदघन तुम निरखिकै हरषत है मन मोर।
दूर भयो आताप सब, सुनिकै मुख की घोर ॥१४॥

आन थान अब ना रुचै, मन राच्यौ तुम नाथ।
रतन चिंतामनि पायके, गहै काच को हाथ ॥१५॥

चचल रहत सदैव चित्त, थक्यौ न काहू ठौर।
अचल भयौ इकटक अबै, लग्यो रावरी ओर ॥१६॥

मन मोह्यो मेरो प्रभु, सुन्दर रूप अपार।
इन्द्र सारिखे थकी रहै, करि करि नैन हजार ॥१७॥

जैसे भानुप्रतापतें, तम नासे सब ओर।
जैसे तुम निरखत नस्यो, सशय विभ्रम भोर ॥१८॥

धन्य नैन तुम दरस लखि, धनि मस्तक लखि पाय।
श्रवन धन्य वानी सुनै, रसना धनि गुन गाय ॥१९॥

धन्य दिवस धनि या घरि, धन्य भाग मुझ आज।
जनम सफल अब ही भयो, वदत श्री महाराज ॥२०॥

लखि तुम छवि चितचोर को, चकित थकित चितचोर।
आनन्द पूरन भरि गयो, नाहिं चाहि रहि और ॥२१॥

चित चातक आतुर लखे, आनदघन तुम ओर।
वचनामृत पी तृप्त हैं, तृषा रही नही और ॥२२॥

जैसो धीरज आपमे तैसो न कहू और।
एक ठोर राजत अचल, व्याप रहै सब ठौर ॥२३॥

यो अद्‌भुत ज्ञातापनो, लख्यो आपकी जाग।
भली बुरी निरखत रहो, करो नाहिं कछु राग ॥२४॥

धरि विसुद्धता भाव निज, दई असाता खोय।
क्षुधा तृषा तुम परिहरी, जैसें करिये मोय ॥२५॥

त्यागि बुद्धि परजायकू, लखैसवं सम भाय
राग दोष ततखिन टरयो, राचे सहज सुभाय ॥२६॥
मो ममता वमना मया, समता आतमराम ।
अमर अजन्मा होय सिव, जाय लह्यो विसराम ॥२७॥
हेत प्रीति सवसो तज्या, मगन निजातप माहि ।
रोग सोग अब क्यों वने, खाना पीना नाहि ॥२८॥
जागि रहे निज ध्यान मे, धरि धीरज वलवान ।
आवै किमि निद्रा जरा, निरखेदक भगवान ॥२९॥
जातजीवतै अधिक वल, सुधिर सुखी निज माहि ।
वस्तु चराचर लखि लई, भय विसमै यो नाहि ॥३०॥
तत्वारथसरधान करि, दीना मोह विनास ।
मान हान कीना प्रगट, केवलज्ञान प्रकास ॥३१॥
अतुल सक्ति परगट भई, राजत है स्वयमेव ।
स्वेद खेद विर्न थिर भये, सव देवन के देव ॥३२॥
परिपूरम हो सब तरह, करना रह्या न काज ।
आरत चिन्ता तें रहित, राजत हो महाराज ॥३३॥
वीर्य अनता धरि रहे, सुख अनत परमान ।
दरस अनत प्रमान जुत, भया अनताज्ञान ॥३४॥
अजर अमर अक्षय अनत, अपरस अवरन वान ।
कहत थके सुरगुर गुनी, मोमन मे किम जाय ॥३५॥
कहत थके सुरगुर गुनी, मोमन मे किम माय ।
ये उर मे जितने भरे, तितने कहे न जाय ॥३६॥
अरज गरज की करत हू, तारन तरन सु नाथ ।
भव सागर मे दुख सहू, तारो गह करि हाथ ॥३७॥
वीती जिती न कहि सकू, सब भासत है तोय ।
याही तें विनती करू, फेरि बीते मोय ॥३८॥
वारण वानर बाघ अहि, अजन भील चडार ।
जाविधि प्रभु सुखिया किया, सो ही मेरी बार ॥३९॥
हू अजान जाने विना, फिर्‌यो चतुर गति थान ।
अव चरना सरना लिया, करो कृपा भगवान ॥४०॥
जग जन की विनती सुनो, अहो जगतगुरुदेव ।
जालो हू जग मे रहू, तोलों पाऊ सेव ॥४१॥

तुम तो दीनानाथ हो, मैं हू दीन अनाथ।
अब तो ढील न कीजिये, भलौ मिल गयो साथ ॥४२॥

वार वार विनती करू, मन वच तन तैं तोहि।
परयो रहू तुम चरन तट, सो बुधि दीजे मोहि ॥४३॥

और नाहि जाचू प्रभु ये वर दीजे मोहि।
जोलौं सिव पहुचू नही, तोलौं सेऊ तोहि ॥४४॥

या ससार असार मे, तुम ही देखे सार।
और सकल राखें पकरि, आप निकासन हार ॥४५॥

या भववन अति सघन मे, मारग दीखे नाहि।
तुम किरपा ऐसी करी, भास गयो मन माहि ॥४६॥

जे तुम मारग में लगे, सुखी भये ते जीव।
जिन मारग लीया नही, तीन दुख लीन सदीव ॥४७॥

और सकल स्वारथ-सगे, विना स्वारथ ही आप।
पाप मिटावत आप हो, और वढ़ावत पाप ॥४८॥

या अद्‌भुत समता प्रगट, आप माहि भगवान।
निदक सहजै दुख लहै, बदक लहै कल्यान ॥४९॥

तुम वानी जानी जिका, प्रानी ज्ञानी होय।
सुर अरचै सचै सुभग, कलमप काटे घोय ॥५०॥

तुम ध्यानी प्रानी भये, सबमे मानी होय।
फुलि ज्ञानी ऐसा बने, निरख लेत सब लोय ॥५१॥

तुम दरसक देखे सकल, पूजक पूजें लोग।
सेवै तिहि सेवें अमर, मिले सुरग के भोग ॥५२॥

ज्यो पारसतें मिलत ही, करि ले आप समान।
त्यो तुम अपने भक्त कों, करि हो आप प्रमान ॥५३॥

जैसा भाव करे तिसा, तुम तैं फल मिलि जाय।
तैसा बनि निरखै जिसा, सीसा मे दरसाय ॥५४॥

जब अग्यान जाने नही, तब दुख लखो अतीव।
अब जाने माने हिये, सुखी भयो लखि जीव ॥५५॥

ऐसे तो कहत न बने, मो उर निवसो आय।
तातें मोकू चरन तट, लीजे आप बसाय ॥५६॥

तो सो और न ना मिल्यो, धाय थक्यो चहु ओर ।
ये मेरे गाढी गढी, तुम ही हो चितचोर ॥५७॥

बहुत वकत डरवत रहू, थोरी कही सुने न ।
तरफत दुखिया दीन लखि, ढीले रहें बने न ॥५८॥

रटूं रावरो सुजस सुनि, तारन तरन जिहाज ।
भव औरत राखे रहे, तोरी मोरी लाज ॥५९॥

डूबत जलधि जिहाज गिरि, तार्यो नृप श्रीपाल ।
वाही किरपा कीजिये, वाही मेरो हाल ॥६०॥

विन मतलव वहुते अधम, तारि दये स्वयमेव ।
त्यो मेरो कारज सुगम, कर देवन के देव ॥६१॥

विन मतलव वहुते अधम तारि दये स्वयमेव ।
त्यो मेरो कारज सुगम कर देवन के देव ॥६२॥

निंदो भावो जस करो नाही कछु परवाह ।
लगन लगी जात न तजी, की जो तुम निरवाह ॥६३॥

तुमे त्याग और न भजू, सुनिये दीनदयाल ।
महाराज की सेव तजि, सेवे कौन कगाल ॥६४॥

जाछिन तुम मन आ बसे, आनन्दघन भगवान ।
दुख दावानल मिट गयो, कीनो अमृतपान ॥६५॥

तो लखि उर हरषत रहू, नाहि आन की चाह ।
दीखत सर्व समान से, नीच पुरुष नर नाह ॥६६॥

तुम मे मुझ मे भेद यो, और भेद कछु नाहिं ।
तुम तन तजि परब्रह्म भये, हम दुखिया तन माहिं ॥६७॥

जो तुम लखि निज को लखे, लच्छन एक समान ।
सुधिर बने त्यागे कुबुधि, सो व्है हे भगवान ॥६८॥

जो तुमतें नाहीं मिले, चले सुछद मदवान ।
सो जग मे अविचल भ्रमे, लहै दुखाकी खान ॥६९॥

पारउतारे भविक बहु, देय धर्म उपदेस ।
लोकालोक निहारिके, कीनो सिव परवेस ॥७०॥

जो जाचे सोई लहै, दाता अतुल अछेव ।
इ द नरिंद फनिंद मिलि, करें तिहारी सेव ॥७१॥

मोह महाजोधा प्रबल, अंधा राखत मोय।
या को हरि सुधा करो, सीस नमाऊ तोय ॥७२॥

मोह जोर को हरत है, तुम दरसत तुम बैन।
जैसे सर सोषन करे, उदय होय के ऐन ॥७३॥

भ्रमत भवार्णव मे मिले, आप अपूरव मीत।
ससा नास्या दुख गया, सहजे भया नचीत ॥७४॥

तुम माता तुम ही पिता, तुम सज्जन सुखदान।
तुम समान व लोक मैं, और नाहि भगवान ॥७५॥

जोग अजोग लखौ मती, मो व्याकुल के बैन।
करुना करि के कीजियो, जैसे तैसे चैन ॥७६॥

मेरी अरजी तनिक सी, वहुत गिनोगे नाथ।
अपनी विरद विचारिकै वूडत गाहियो हाथ ॥७७॥

मेरे औगुन जिन गिनौ, मे औगुन को धाम।
पतित उधारक आप हो, करो पतित को काम ॥७८॥

सुनी नही औजू कहु, विपति रही है घेर।
औरनिके कारज सरे, ढील कहा मो बैर ॥७९॥

सार्थवाही विन ज्यो पथिक, किमि पहुचे परदेस।
त्यो तुमते करि हैं भविक, सिवपुरि मे परवेस ॥८०॥

केवल निर्मलज्ञानमे, प्रतिविंवित जग आन।
जनम मरन सकट हरन, भये आप रतध्यान ॥८१॥

आपतमतलबी ताहिते, कैसे मतलब होय।
तुम विनमतलब हो प्रभु, कर हो मतलव मोय ॥८२॥

कुमति अनादि सग लगि, मोसो भोग रचाय।
याको कीलो दुःख सहू, दीजे सुमति जगाय ॥८३॥

भववनमाहि भरमियो, मोह नीदमे सोय।
कर्म ठिगौरे ठिगत है, क्यो न जगावो मोय ॥८४॥

दुःख दावानल मे जलत, घने कालको जीव।
निरखत हो समता मिली भली सुखाकी सीव ॥८५॥

मो ममता दुखदा तिनैं, मानत हू हितवान।
मो मनमाहि उलटि या, सुलटावो, भगवान ॥८६॥

लाभ सर्व साम्राज्य का, वेदयता तुम भक्त।
हित अनहित समझें नहीं, तातै भये असक्त ॥८७॥

विनयवान सर्वस लहे, दहे गई जो गर्व ।
आप आपमे ही तदपि, व्याप रहे हो सर्व ॥८८॥

मैं मोही तुम मोह बिन, मैं दोषी तुम सुद्ध ।
धन्य आप मो घट बसे, निरख्यो नाहिं विरुद्ध ॥८९॥

मैं तो कृतकृत अब भया, चरण सरन तुम पाय ।
सर्व कामना सिद्ध भई, हर्ष हिये न समाय ॥९०॥

मोहि सतावत मोह जुर, विसय अनादि असाधि ।
वेद अतार हकीम तुम, दूर करो या व्याधि ॥९१॥

परिपूरन प्रभु विसर तुम, नमू न आन कुठोर ।
ज्यो त्यो करि मो तारिये, विनती करु निहोर ॥९२॥

दीन अधम निरबल रटै, सुनिये अधम उद्धार ।
मेरे औगुन जिन लखो, तारो विरद चितार ॥९३॥

करुनाकर परगट विरद, भूले बनि है नाहिं ।
सुधि लीजे सुध कीजिये, दृष्टि धार मो माहिं ॥९४॥

एहि वर मोहि दीजिये, जाचू नहिं कछु और ।
अनिमिप दृग निरखत रहू सान्त छवी चितचोर ॥९५॥

याहि हियामे नाम सुख, करो निरन्तर वास ।
जौलो बसवो जगतमें, भरवो तनमे सास ॥९६॥

मैं अज्ञान तुम गुन अनत, नाहिं आवै अन्त ।
बदत अग नमाय वसु, जावजीव परजत ॥९७॥

हारि गये हो नाथ तुम, अधम अनेक उधारि ।
धीरे धीरे सहजमे, लीजे मोहि उबारि ॥९८॥

आप पिछान विसुद्ध है, आपा कह्यो प्रकास ।
आप आपमे थिर भये, बदत "बुधजन" दास ॥९९॥

मन मूरति मगल बसी, मुख मगल तुम नाम ।
एही मगल कीजिये, परयो रहू तुम धाम ॥१००॥

सुभाषितनीति

अलपथकी फल दे घना, उत्तम पुरुष सुभाय ।
दूध झरै तृनको चरै, ज्यो गोकुल की गाय ॥१०१॥

जैता का तैता करै, मध्यम नर सनमान ।
घटै बढ़ै नहि रचहू, धरयो कोठरै धान ॥१०२॥

दीजै जेता ना मिलै, जघन पुरुष की बात।
जैसे फूटै घट धरयौ, मिलै अलप पय थान ॥१०३॥

भला कियैं करि है बुरा, दुर्जन सहज सुभाय।
पय पायैं विष देत है, फणी महा दुखदाय ॥१०४॥

सहैं निरादर दुरवचन, देह मार अपमान।
चौर चुगल परदाररत, लोभी लबार अजान ॥१०५॥

अमर हारि सेवा करें मानसकी कहा बात।
जो जन सील सन्तोषजुल, करै न परकी घात ॥१०६॥

अगनि चोर भूपति विपति, डरत रहै धनवान।
निर्धन नीद निसक लै, माने काफी हान ॥१०७॥

एक चरन हू नित पढै, तो काटै अज्ञान।
पनिहारी की लेंजसैं, सहज कटै पाषान ॥१०८॥

पतिव्रता सतपुरुष की, गाढा वीर सुभाव।
भूख सहै दारिद सहै, करै न हीन उपाव ॥१०९॥

वैर करौ वा हित करौ, होत सबलतैं हारि।
मीत भयैं गौरव घटैं, शत्रु भयैं दे मारि ॥११०॥

जाकी प्रकृति करूर अति, मुलकता होय लखै न।
भजै सदा आधीन परि, तजै जुद्धमे सैन ॥१११॥

सिथिल बैन ढाढस बिना ताकी पैठ बनै न।
ज्यो प्रसिद्ध रितु सरदको, अम्बर नैकु झरै न ॥११२॥

जतन थ की नरको मिले, बिना जतन लै आन।
वासन भरि नर पीत है, पशु पीवे सब थान ॥११३॥

झूठी मीठी तनकसी, अधिकी मानैं कौन।
अवसरतैं वोलौ इसी, ज्यो आटेमै नौन ॥११४॥

ज्वारी विभिचारीनितैं, डरैं निकसतैं गैल।
मालनि ढाकै टोकरा, छूटे लखिकै छैल ॥११५॥

औसर लखिकै वोलिये, जथा जोगता बैन।
सावन भादौं बरसतैं, सब ही पावैं चैन ॥११६॥

वौलि उठे औसर बिना, ताका रहै न मान।
जैसे कातिक वरसतै, निंदै सकल जहान ॥११७॥

लाज काज खरचे दरब लाज काज सग्राम।
लाज गयैं सरवस गयो, लाज पुरुष की माम ॥११८॥

आरम्भ्यो पूरन करै, कह्या वचन निरवाह ।
धीर सलज सुन्दर रमैं, येते गुन नरमांह ॥११९॥
उद्यम साहस धीरता, पराक्रमी मतिमान ।
एते गुन जा पुरुषमैं, सौ निरभै बलवान ॥१२०॥
रोगी भोगी आलसी, वहमी हठी अज्ञान ।
ये गुन दारिदवानकें, सदा रहत भयवान ॥१२१॥
अछती आस विचारकैं, छती देय छिटकाय ।
अछती मिलवो हाथ नाहिं, तब कोरे रह जाय ॥१२२॥
विनय भक्ति कर सबलकी, निवल गौर सम भाय ।
हितू होय जीना भला, वैर सदा दुखदाय ॥१२३॥
नदीतीर को रूखरा, करि विनु अंकुश नार ।
राजामन्त्रीतैं रहित, विगरत लगै न वार ॥१२४॥
महाराज महावृक्षकी, सुखदा शीतल छाय ।
सेवत फल लाभै न तो, छाया तो रह जाय ॥१२५॥
अति खानैतैं रोग ह्वै, अति बोलै ज्या मान ।
अति सोयै धनहानि ह्वै अतिमति करो सयान ॥१२६॥
झूठ कपट कायर अधिक, साहस चचल अंग ।
गान सलज आरभनिपुन, तिय न तृपति रतिरंग ॥१२७॥
दुगुण क्षुधा लज चौगुनी, अष्ट गुनो विवसाय ।
काम वसु गुनो नारिकै, वरन्यो सहजे सुभाय ॥१२८॥
पतिचितहित अनुगामिनी, सलज सील कुलपाल ।
या लक्ष्मी जा घर बसै सो है सदा निहाल ॥१२९॥
कूर कुरुपा कलहिनी, करकस वैन कठोर ।
ऐसी भूतनि भोगिवो वसिवो नरकनि घोर ॥१३०॥
वरज्ये कुलकी वालिका, रूप कुरूप न जोय ।
रूपी अकुली परणती, हीन कहै सर्व कोय ॥१३१॥
विपति धीर रन विक्रमी, सम्पति क्षमा दयाल ।
कलाकुशल कोविद कवी, न्याय नीति भूपाल ॥१३२॥
साच झूठ भाषै सुहित, हिंसा दयाभिलाख ।
अति आमद अति व्यय करैं ये राजनिकी साख ॥१३३॥
सुजन सुखी दुरजन डरैं, करैं, न्याय धन संच ।
प्रजा पलै पख ना करैं, श्रेष्ठ नृपति गुन पंच ॥१३४॥

काना ठूठा पागुला, वृद्ध कूबरा अन्ध।
बेवारिस पालन करैं, भूपति रचि परवध ॥१३५॥

कृपनवुद्धि अत्युग्रचित, झूठ कपट अदयाल।
ऐसा स्वामी सेवतैं कदे न होय निहाल ॥१३६॥

हकारी, व्यसनी, हठी, आरसवान अज्ञान।
भृत्य न ऐसा राखिये, करै मनोरथहान ॥१३७॥

नृप चालै ताही चलन, प्रजा चलै वा चाल।
जा पथ जा गजराज तह, जात जूथ गजवाल ॥१३८॥

सूर सुधीर पराक्रमी, सव वाहनअसवार।
जुद्धचतुर साहसि मधुर, सेनाधीस उदार ॥१३९॥

निरलोभी साचौ सुधर, निरालसी मति धीर।
हुकमी उदमी चौकसी, भंडारी गभीर ॥१४०॥

निरलोभी साचौ निडर, सुध हिसावकरतार।
स्वामिकामनिर आलसी, नौसदौ हितकार ॥१४१॥

दरस परस पूछे करै, निरनै रोग रु आय।
पथ्यापथमैं निपुन चिर, वैद चतुर सुखदाय ॥१४२॥

जुक्त सौच पाचक मधुर, देश काल वय जोग।
सूपकार भोजनचतुर, वोलै सत्य मनोग ॥१४३॥

मूढ़ दरिद्री आयु लघु, व्यसनी लुब्ध करूर।
नाधिपती नहि दीजिये, जाका मन मगरूर ॥१४४॥

सीख सरलकौ दीजिये, विकट मिलै दुख होय।
वये सीख कपिको दई, दियो घोसलो खोय ॥१४५॥

अपनी पख नही तोरिये, रचि रहिये करि चाहि।
कगैं तदुल तुम सहित, तुस विन कगैं नाहि ॥१४६॥

अति लोलुप आसक्तकै विपदा नाही दूर।
मीन मरै कटक फसै, दौरि मास लखि कूर ॥१४७॥

आवत उठी आदर करै, वोलै मीठै वैन।
जातैं हिलमिल बैठना, जिय पावै अति चैन ॥१४८॥

भला बुरा नखिये नहीं, आये अपने द्वार।
मधुर वोल जस लीजिये, नातर अजस तयार ॥१४९॥

सेय सती कै नृपति यति वन के पुरवीज।
या विन और परकारतैं जीवतैं वर मीच ॥१५०॥

घनो सुलप आरंभ रचि, भिगै नाहि चित धीर।
सिंह उठके ना मुरै, करै पराक्रम वीर ॥१५१॥

इन्द्री पच सकोचिकै, देश काल वय पेखि।
वकवत हित उद्यम करै, जे हैं चतुर विसेखि ॥१५२॥

प्रात उठि रिपुतैलरै वाटै वधुविभाग।
रमनि रमनमैं प्रीति अति, कुरकट ज्यौ अनुराग ॥१५३॥

गूढ मईथुन चख चपल, सग्रह सजै निधान।
अविसासी परमादच्युत वायस ज्यौं मतिवान ॥१५४॥

वहुभ्यासी सतोपजुत, निद्रा स्वलप सचेत।
रन प्रवीन मन स्वान ज्यौं, चितवत स्वामी हेत ॥१५५॥

वहै भार ज्यौं भादर्यो, सीत उष्ण क्षत देह।
सदा सन्तोषी चतुर नर, ये रासव गुन लेंह ॥१५६॥

टोटा लाभ सन्तात मन, घरमैं हीन चरित्र।
भयो कदा अपमान निज, भापै नाहि विचित्र ॥१५७॥

कोविद रहैं सन्तोषचिह, भोजन धन निज दार।
पठन दान तप करनमैं, नाही तृपति लगार ॥१५८॥

विद्या सग्रह धान धन, करत हार व्योहार।
अपन प्रयोजन साधतैं, त्यागै लाज सुधार ॥१५९॥

दोय विप्रमहि होम पुनि सुन्दर जुग भरतार।
मत्रि नृप मसलत करत जातैं होत विगार ॥१६०॥

वारि अगनि तिय मूढ जन, सर्प नपृति रुज देव।
अत प्रान नासै तुरन्त, अजतन करते सेव ॥१६१॥

गज अकुश हय चावुका, दुष्ट खडग गहि पान।
लकरीतैं अङ्गीनकू, वसि राखै वुद्धिवान ॥१६२॥

वसि करि लोभी देय धन, मानीको करि जोरि।
मूरख जन विकथा वचन, पडित साच निहोरि ॥१६३॥

भूपति वसि व्है अनुग वन, जोवत तन धन नार।
ब्राह्मण वसि ह्वै वेदतैं, मिष्ठवचन ससार ॥१६४॥

अधिक सरलता सुखद नही, देखो विपिन निहार।
सीधै विरवा कटि गये, वाकै खरे हजार ॥१६५॥

जो सपूत धनवान जो, धनजुत हो विद्वान।
सव वाधव धनवानके, सरव मीत धनवान ॥१६६॥

नही मान कुलपुरुषको, जगत मान धनवान।
लखि चडालके विपुल धन, लोक करें सनमान ॥१६७॥

सम्पति के सब ही हितू विपतामे सब दूर।
सूखौ सर पखी तजे, सेवें जलतें पूर ॥१६८॥

तजै नारि सुत बधु जन, दारिद आयें साथि।
फिरि आमद लखि आयकें, मिलि हैं बाथाबाथि ॥१६९॥

सपति साथ घटे बढे, सूरत बुधिवल धीर।
ग्रीषम सर सोभा हरे सोहेवरसत नीर ॥१७०॥

पटभूषन मोहे सभा, धन दे मोहे नारि।
खेती होय दरिद्रते, सज्जन मो मनुहार ॥१७१॥

धर्महानि सक्लेश अति, शत्रु विनयकरि होय-।
ऐसा धन नही लीजिये, भूखे रहिये सोम ॥१७२॥

धीर सिथिल उदमी चपल, मूरख सहित गुमान।
दौष धनदके गुन कहै, निलज सरल चितवान ॥१७३॥

काम छोरि सो जीमजे, न्हाजे छोरि हजार।
लाख छोरिके दान करि, जपिजे वारवार ॥१७४॥

गुरु राजा नट भट वनिक, कुटनी गनिका थान।
इनतें माया मति करो, ये मायाकी खान ॥१७५॥

खोटी सगति मति करो, पकरो गुरु का हाथ।
करो निरन्तर दान पुनि, लखो अथिर सब साथ ॥१७६॥

नृप सेवातें नष्ट दुज, नारि नष्ट बिन सील।
गनिका नष्ट सन्तोषतें, भूप नष्ट चित्त ढील ॥१७७॥

नाही तपसि मूढ मन, नही सूर कृतघाव।
नही सती तिय मद्यपा, फुनिजौ गान सुभाव ॥१७८॥

सुत को जन्म विवाहफल, अतिथिदान फल गेह।
जन्म सुफल गुरु तें पठन, तजियो राग सनेह ॥१७९॥

जहा तहा तिय व्याहिये, जहा तहा सुत होय।
एकमातसुत भ्रात बहु, मिलै न दुरलभ सोय ॥१८०॥

निज भाई निरगुन भलो, परगुनजुत किहि काम।
आगन तरु निरफल जदपि, छाया राखै धाम ॥१८१॥

निसि मे दीपक चन्द्रमा, दिन मे दीपक सूर।
सर्व लोक दीपक धरम, कुल दीपक सुत सूर ॥१८२॥

सीख दई सरधै नही, करे रैन दिन सोर।
पूत नही वह भूत है, महा पाप फल घोर ।।१८३।।
सुसक एक तरु सघनवन, जुरतहि देत जराय।
त्यो ही पुत्र पवित्र कुल, कुबुद्धि कलक लगाय ।।१८४।।
तिसना तुहि प्रनपति करू, गौरव देत निवार।
प्रभू आय वावन भये, जाचक वलि के द्वार ।।१८५।।
मिष्ट वचन धन दानतै, खुसी होत है लोक।
सम्यग्ज्ञान प्रमान सुनि, रीझत पडित थोक ।।१८६।।
अगनि काठ सरिता उदधि, जीवनतै जमराज।
मृग नैननि कामी पुरुष तृपति न होत मिजाज ।।१८७।।
दारिदजुत हु महत जन, करवे लायक काज।
दतभग हस्ती जदपि, फोरि करत गिरिराज ।।१८८।।
दई होत प्रतिकुल जव, उद्यम होत अकाज।
मूस पिटारो काटियो, गयो सरप करि खाज ।।१८९।।
वाह्य कठिन भीतर नरम, सच्जन जन की वात।
वाह्य नरम भीतर कठिन, वहुत जगतजन जात ।।१९०।।
चाहे कछु हो जा कछू, हारे विवुध विचारि।
होत वर्तै हो जाय है, वुद्धि करम अनुसारि ।।१९१।।
जाके सुख मे सुख लहैं, विप्र मित्र कुल भ्रात।
ताहीको जीवो सुफल, पिट भर की का वात ।।१९२।।
हुए होहिंगे, सुभट सब, करि करि थके उपाय।
तिसना खानि अगाधि है, क्यो हू भरि न जाय ।।१९३।।
भोजन गुरु अवसेस जो, ज्ञान वहै विन पाप।
हित परोख कारज कियैं, धरमी रहित कलाप ।।१९४।।
काल जिवावै जीव को, काल करे सहार।
काल सुवाय जगाय है, काल चाल विकराल ।।१९५।।
काल करा दे मित्रता, काल करादे रार।
काल खेप पडित करैं, उलझै निपट गवार ।।१९६।।
साप दर्श दे छिप गया, वैद थके लखि पीर।
वैरी करतै छुटि गया, कौन धरि सकै धीर ।।१९७।।
वलधन मे सिंह न लसैं, ना कागन मे हस।
पडित लसै न मूढमैं, हयखरमे न प्रसस ।।१९८।।

हय गय लोहा काठि पुनि, नारी पुरुष पखान।
बसन रतन मोतनीमैं, अन्तर अधिक बिनान ॥१९९॥

सत्य दीप बाती क्षमा, सील तेल सजोय।
निपट जतनकरि धारिये, प्रतिबिंबित सब होय ॥२००॥

परधन परतिय ना चितै, संतोषामृत राचि।
तै सुखिया ससार मे, तिनकौ भय न कदाचि ॥२०१॥

रक भूपपदवी लहै, मूरत सुत विद्वान।
अघा पावै विपुल धन, गिनै तृना ज्यौं आन ॥२०२॥

विद्या विषम कुशिष्यको, विष कुपथीकौं व्याधि।
तरुनि विष सम वृद्धको, दारिद प्रीति असाधि ॥२०३॥

सुचि असुचि नाहि गिनै, गिनै न न्याय अन्याय।
पाप पुन्य कौ ना गिनै, भूसा मिलै सु खाय ॥२०४॥

एक मात के सुत भये, एक मते नहि कोय।
जैसे काटे बैर के, वाके, सीधे होय ॥२०५॥

देखि उठै आदर करै, पूछै हित तै बात।
जाना आना ताहिका, नित नवहित सरसात ॥२०६॥

आदि अलप मधिमें धनी, पद पद वधती जाय।
सरिता ज्यों सतपुरुष हित, क्यो हू नाहि अघाय ॥२०७॥

गुडि कहना गुडि पूछना, देना लेना रीति।
खाना आप खवावना षटविधि बधि है प्रीति ॥२०८॥

विद्या मित्र विदेश मे धर्म मीत है अन्त।
नारि मित्र घर के विषै व्याधि औषधि मित ॥२०९॥

नृपहित जो पिरजा अहित, पिरजा हित नृपरोष।
दोउ, सम साधन करें, सो अमात्य निरदोष ॥२१०॥

पाय चपल अधिकार कौं, शत्रु मित्र परिवार।
सौम तौप पोपै विना, ताकौ है धिक्कार ॥२११॥

निकट रहे सेवा करे, लपटत होय खुस्याल।
दीन हीन लखतं नही, प्रमदा लता भुआल ॥२१२॥

ऐसा भूपति सेवता, होत आपकी हान।
पराक्रमी कोविद शिलपि, सेवाविद विद्वान ॥२१३॥

पराक्रमी कोविद शिलपि, सेवाविद विद्वान।
ऐसे सोहैं भूप घर, नहिं प्रतिपालैं आन ॥२१४॥

भूप तुष्ट सैं करत है, इच्छा पूरन मान।
ताके काज कुलीन हू, करत प्रान कुरबान ॥२१५॥

बुद्धि पराक्रम वपु वलि, उद्यम साहस धीर।
सका माने देव हू, ऐसा लखिके वीर ॥२१६॥

रसना राखि मरजादि तू, भोजन वचन प्रमान।
अति भोगति अति बोलतें, निहचैं होहै हान ॥२१७॥

वन वसि फल भखिबो भलो, मौनत भलो अजान।
भलो नहीं वसिवो तहां, जहां मानकी हान ॥२१८॥

जहां कछूप्रापति नहीं, है आदर वा धाम।
थोरे दिन रहिये तहां सुखी रहै परिनाम ॥२१९॥

उद्यम करिवो तज दियो, इन्द्री रोकि नाहिं।
पथ चलैं भूखा रहै, ते दुख पावैं आहिं ॥२२०॥

समय देखिकैं बोलना, नातरि आछी मौन।
मैना सुक पकरैं जगत, बुगला पकरै कौन ॥२२१॥

जाका दुरजन क्या करैं, छमा हाथ तरवार।
विना तिनाकी भूमिपर, आगि बुझै लगि वार ॥२२२॥

पर उपदेस करन निपुन, ते तो लखे अनेक।
करैं समिक बौलैं समिक, जे हजार मे एक ॥२२३॥

बोधत शास्त्र सुबुधि सहित, कुबुधि बोध लहै न।
दीप प्रकास कहा करै, जाके अन्धे नैंन ॥२२४॥

विगडै करे प्रमादतैं, विगडै निपट अज्ञान।
विगडै वास कुवास मे, सुधरै सग सुजान ॥२२५॥

वृद्ध भये नारी मरे, पुत्र हाथ धन होत।
वधू हाथ भोजन मिलैं, जीनैं ते वर मौत ॥२२६॥

दारु धात पखान मे, नाहिं विराजै देव।
दैवभाव भाये भला, फलै लाभ स्वयमेव ॥२२७॥

तिसना दुखकी खानि है, नदनवन सतोष।
हिंसा वधकी दायिनी, क्रोध कू जमराज ॥२२८॥

लोभ पापकौ बाप है, क्रोध कूर जमराज।
माया विषकी बेलरी, मान विषम गिरिराज ॥२२९॥

विवसाईतैं दूर क्या, को विदेश विद्वान ।
कहा भार समरत्थ को, मिष्ट कहैं को आन ।।२३०।।
कुलकी सोभा सीनतैं, तन सोहै गुनगान ।
पढ़िवौ सोहै सिधि भयैं, धन सोहै दैं दान ।।२३१।।
असतोषि दुज भ्रष्ट है, सतोषी नृप हान ।
निरलज्जा कुलतिय अधम, गनिका सलज अजान ।।२३२।।
कहा करैं मूरख चतुर, जो प्रभु ह्वैं प्रतिकूल ।
हरि हल हारे जतनकरि, जरे जदू निरमूल ।।२३३।।
खेती लखिये प्रात उठि, मध्यानैं लखि गेह ।
अपरान्हैं धन निरखिये, नित सुत लखि करि नेह ।।२३४।।
विद्या दियैं कुशिष्यकौं, करैं सुगुरु अपकार ।
लाख लडावौ भानजा, खोसि लेय अधिकार ।।२३५।।
ना जानैं कुलशीलकाके, ना कीजैं विश्वास ।
तात मात जातैं दुखी, ताहि न रखिये पास ।।२३६।।
गनिका जोगी भूमिपति, वानर अहि मजार ।
इनतैं राखैं मित्रता, परैं प्रान उरभार ।।२३७।।
पट पनही बहु खीर गो औषधि बीज अहार ।
ज्यौं लाभैं त्यौं लीजिये, कीजैं दुख परिहार ।।२३८।।
नृपति निपुन अन्याय मैं, लोभनिपुन परिधान ।
चाकर चोरी मैं निपुन, क्यौं न प्रजा की हान ।।२३९।।
धन कमाय अन्याय का, वृष दश थिरता पाय ।
रहै कदा षोडस वरस, तौ समूल नस जाय ।।२४०।।
गाडी तरु गो उदधि वन, कद कूप गिरिराज ।
दुरविषमैं नो जीवका, जीवो करैं इलाज ।।२४१।।
जात कुल शोभा लहै, सो सपूत वर एक ।
भार भरैं रोडी चरैं, गर्दभ भये अनेक ।।२४२।।
दूधरहित घटासहित, गाय मोल क्या पाय ।
त्यौं मूरख आटोपकरि, नाहिं सुघर ह्वैं जाय ।।२४३।।
कोकिल प्यारी वैनतैं, पति अनुगामि नार ।
नर वरविद्याजुत सुघर, तप उर क्षमा विचार ।।२४४।।
दूरि वसत नर दूत गुन, भूपति देत मिलाय ।
ढाकि दूरि रखि केतकी, बास प्रगट ह्वैं जाय ।।२४५।।

सुसक सागका असन वर, निरजनवन वर वास ।
दीन वचन कहिवो न वर, जो लौं तनमैं सास ॥२४६॥

एकाक्षरदातार गुरु, जो न गिनै विनज्ञान ।
सो चडाल भवको लहै, तथा होयगा स्वान ॥२४७॥

सुख दुःख करता आन हैं, यो कुवुद्धिश्रद्धान ।
करता तेरे कृतकरम, मैंटे क्यो न अज्ञान ॥२४८॥

सुख दुःख विद्या आयु धन, कुल बल वित्त अधिकार ।
साथ गर्भमे अवतरै, देह धरी जिहि वार ॥२४९॥

वन रिपु जल अगनि गिरि, रुज निद्रा मद मान ।
इनमैं पुन रक्षा करै, नाही रक्षक आन ॥२५०॥

दुराचारि तिय कलहिनी, किकर क्रूर कठोर ।
सरप साथ वसिवो सदन, मृतु समान दुःख घोर ॥२५१॥

सपति नरभव ना रहै, रहै दोपगुनवात ।
रहै जु वनमैं वासना, फूल फूल झरि जात ॥२५२॥

एक त्यागि कुल राखिये, ग्राम राखि कुल तोरि ।
ग्राम त्यागिये राजहित, धर्म राख सब छोरि ॥२५३॥

नहिं विद्या नहिं मित्रता, नाही धन सनमान ।
नही न्याय नहिं लाज भय, तजो वास ता थान ॥२५४॥

किकर जो कारज करै, बाधव जो दु.ख साथ ।
नारी जो दारिद सहै, प्रतिपालै सो नाथ ॥२५५॥

नदी नखी श्रृगीनिमैं, शस्त्रपानि नर नारि ।
बालक अर राजान ढिग, वसिये जतन विचार ॥२५६॥

कामीकौं कामिनि मिलन, विभवमाहि रुचिदान ।
भोजशक्ति भोजन विविध, तप अत्यन्त फल जान ॥२५७॥

किकर हुकमी सुत विबुध, तिय अनुगामिनि जास ।
विभव सदन नहिं रोग तन ये ही सुरगनिवास ॥२५८॥

पुत्र वहै पितुभक्त जो, पिता वहै प्रतिपाल ।
नारि वहै जो पतिव्रता, मित्र वहै दिल माल ॥२५९॥

जो हसता पानी पिये, चलता खावै खान ।
द्वै बतरावत जात जो, सो सठ ढीट अजान ॥२६०॥

तेता आरभ ठानिये, जेता तन मै जोर ।
तेता पाव पसारिये, जेती लावी सोर ॥२६१॥

बहुते परप्रानन हरैं, बहुते दुखी पुकार।
बहुते परधन तिय हरैं, विरले चलैं विचार ॥२६२॥

कर्म धर्म विरले निपुन, विरले धन दातार।
विरले सत बोलैं खरे, विरले परदुखटार ॥२६३॥

गिरि गिरि प्रति मानिक नही, वन वन चदन नांहि।
उदधि स'घुरिसे साजन, ठौर ठौर ना पांहि ॥२६४॥

परघरवास विदेसपथ, मूरख मीत मिलाप।
जीवनमांहि दरिद्रता, क्यो न होय सताप ॥२६५॥

धाम पराया वस्त्र पर, परसय्या परनारि।
परघरि वसिवौ अधम ये त्यागैं विवुध विचारि ॥२६६॥

हुन्नर हाथ अनालसी, पढिवो करिवौ मीत।
सील, पच निधि ये अखय, राखे रहौ नचीत ॥२६७॥

कष्ट समय रनके समय, दुरभिख अर भय घोर।
दुरजनकृत उतसर्गमैं, बचै विबुध कर जोर ॥२६८॥

धरम लहै नंहि दुष्ट चित्त लोभी जस किम पाय।
भागहीन को लाभ नंहि नंहि औषधि गत आय ॥२६९॥

दुष्ट मिलत ही साधु जन, नही दुष्ट है जाय।
चन्दन तरु को सर्प लगि, विष नही देन बनाया ॥२७०॥

सोक हरत है बुद्धि को, सोक हरत है धीर।
सोक हरत है धर्म को सोक न कीजे वीर ॥२७१॥

अस्व सुपत गज मस्त ढिग, नृप भीतर रनवास।
प्रथम व्यायली गाय ढीग, गये प्रान का नास ॥२७२॥

भूपति विसनी पाहुना, जाचक जड जमराज।
ये पर दुख जोवैं नहीं, कीयौ चाहैं काज ॥२७३॥

मिनख जनम लेना किया, धर्म न अर्थ न काम।
सो कुच अजके कठ मे, उपजे गये निकाम ॥२७४॥

सरता नंहि करता रहौ, अर्थ धर्म अर काम।
तिन तडका द्वै घटि रह्या, चितवौ आतमराम २७५॥

को स्वामी मम मित्र को, कहा देश मे रीत।
खरच किता आमद किती, सदा चितवौ मीत ॥२७६॥

वमन करतैं कफ मिटैं, मरदन मेटै वात।
स्नान किये तैं पित मिटैं, लघन तैं जुर जात ॥२७७॥

कोढ मास घृत जुरविषै, सूल द्विदल यो टार।
द्रग रोगी मैथुन तजो, नवो धान अतिसार ॥२७८॥

अनदाता त्राता विपत, हितदाता गुरुज्ञान।
आप पिता फुनि धायपति, पच पिता पहिचान ॥२७९॥

गुररानी नृपकी तिया, बहुरि मित्रकी जोय।
पतिनी-मा निजमातजुत, मात पाच विधि होय ॥२८०॥

घसन छेद ताडन तपन, सुवरनकी पहिचान।
दयासील श्रुत तप गुननि, जान्या जात सुजान ॥२८१॥

जाप होम पूजन क्रिया, वेदत्तत्वश्रद्धान।
करन करानवमे निपुन, दुज पुरोत गुणवान ॥२८२॥

भली बुरी चितमे वसत, निरखत ले उर धार।
सोमवदन वक्ता चतुर दूत स्वामिहितकार ॥२८३॥

याहीतैं सुकुलीनता, भूप करै अधिकार।
आदि मध्य अवसानमें, करते नाहि विकार ॥२८४॥

दुष्ट तियाका पोषणा, मूरसको समझाय।
वैरीतैं कारज परै, कौन नाहि दुख पाय ॥२८५॥

दारिदमैं दुरविसनमैं, दुरभिख फूनि रिपुघात।
राजद्वार समसानमैं, साथ रहै सो नात ॥२८६॥

दारिदमैं दुरविसनमे, दुरभिख फुनि रिपुघात।
राजद्वार समसानमैं, साथ रहै सो भ्रात ॥२८७॥

सर्प दुष्ट जन दो बुरै, तामैं दुष्ट विसेख।
दुष्ट जतनका लैख नहि, सर्प जतनका लैख ॥२८८॥

नाही धन भूषन वसन, पडित जदपि कुरूप।
सुघर सभामैं यो लसैं, जैसे राजत भूप ॥२८९॥

स्नान दान तीरथ किये, केवल पुन्य उपाय।
एक पिताकी को भक्तितैं, तीन वर्ग मिलि जाय ॥२९०॥

जो कुदेव को पुजिकैं, चाहे शुभ का मेल।
सो बालूको पैलिकैं, काढया चाहै तेल ॥२९१॥

धिक विधवा भूषन सजै वृद्ध रसिक धिक होय।
धिक् जोगी भोगी रहै, सुत धिक् पडे न कोय ॥२९२॥

नारी धनि जो सीलजुत, पति धनि रति निजनार।
नीति निपुन नृपति धनि, सपत्ति धनि दातार ॥२९३॥

रसना रखि मरजाद तू भोगते बोलत बोल ।
बहु भोजन बहु बोलतै परिहै, सिरपै घोल ॥२९४॥

जो चाहो अपना भला, तो न सतावो कोय ।
नृपहूकै दुरसीसते, रोग सोग भय होय ॥२९५॥

हिंसक जै छुपि बन बसैं, हरि अहि जीव भयान ।
(फिरैं) बैल हय गरधवा, गऊ भैंस सुखदान ॥२९६॥

वैर प्रीति अबकी करि, परभवमैं मिलि जाय ।
निबल सबल हैं एकसे, दई करत है न्याय ॥२९७॥

सस्कार जिनका भला, ऊचे कुल के पूत ।
तैं सुनिकै सुलटैं जलद, जैसे ऊन्या सूत ॥२९८॥

पहले चौकस ना करी, बूढत विसनमझार ।
रग मजीठ छूटै नही, कीये जतन हजार ॥२९९॥

जो दुरबलकौ पोषि हैं, दुखतै देत बचाय ।
तातैं नृप घर जनम ले, सीधौ सपत्ति पाय ॥३००॥

इति सुभाषितनीति अधिकार

× × × × × × × × ×

अन्तिम भाग

विराग भावना

गुरु बिन ज्ञान मिलै नहीं, करो जतन किन कोय ।
विना सिखाये मिनख तौ, नाहिं तिर सके तोय ॥६४४॥

जो पुस्तक पढि सीख है, गुरुकौं पूछै नाहिं ।
सो सोभा नाहिं लहै, ज्यौं बक हंसामाहिं ॥६४५॥

गुरनुकूल चालै नहिं, चालै सुतै सुभाय ।
सो नहि पावै थानकौं, भववनमैं भरमाय ॥६४६॥

क्लेश मिटै आनद बढै, लाभै सुगम उपाय ।
गुरुको पूछिर चालता, सहज थान मिल जाय ॥६४७॥

तन मन धन सुख सपदा, गुरुपै डारु बार ।
भव समुद्रतै डूबता, गुरु ही काढनहार ॥६४८॥

स्वारथ के सब जन हितू, बिन स्वारथ तज देत ।
नीच ऊच निरखै न गुरु, जीवजातते हैत ।।६४६।।

ब्यौंत परै हित करत हैं, तात मात सुत भ्रात ।
सदा सर्वदा हित करै गुरुके मुखकी बात ।।६५०।।

गुरु समान ससारमैं, मात पिता सुत नाहि ।
गुरु तो तारै सर्वथा, ए बोरै भवमाहि ।।६५१।।

गुरु उपदेश लहै बिना, आप कुशल ह्वै जात ।
तैं अजान क्यौं टारि है, करी चतुर की घात ।।६५२।।

जहा तहा मिलि जात है, सपत्ति तिय, सुत भ्रात ।
बडे भागतै अति कठिन, सुगुरु कही मिल जात ।।६५३।।

पुस्तक बाची इकगुनी, गुरुमुख गुनि हजार ।
तातैं बडे तलाशतैं, सुनिजे वचन उचार ।।६५४।।

गुरु वानी अमृत झरत, पी लीनी छिनमाहि ।
अमर भया ततखिन सुतौ, फिर दु ख पावै नाहि ।।६५५।।

भली भई नरगति, मिली सुनै सुगुरुकै बैन ।
दाह मिट्या उरका अबैं, पाय लई चित चैन ।।६५६।।

क्रोध वचन गुरुका जदपि, तदपि सुखाकरि धाम ।
जैसे भानु दौपहर का, सीतलता परिनाम ।।६५७।।

परमारथका गुरु हितू, स्वारथका ससार ।
सब मिलि मोह बढात हैं, सुत तिय किंकर यार ।।६५८।।

तीरथ तीरथ क्यो फिरै, तीरथ तो घटमाहि ।
जै थिरह्वए सो तिर गये, अथिर तीरथ है नाहि ।।६५६।।

कौन देत है मनुष भव, कौन देत है राज ।
याकौं पहचाने विना, झुठा करता इलाज ।।६६०।।

प्रात धर्म फुनि अर्थरुचि, काम करै निसि सेव ।
रुचै निरंतर मोक्ष मन, सौ पुरुष मानुष नहिं देव ।।६६१।।

संतोषामृत पान करि, जे हैं समतावान ।
तिनके सुख सम ल्घुको, अनत भाग, नहिं जान ।।६६२।।

लोभ मूल है पापका, भोग मूलि है व्याधि ।
हेत जु मूल कलेशको, तिहू त्यागि सुख साधि ।।६६३।।

हिंसातैं ह्वै पातकी, पातकतै नरकाय ।
नरक निकसिकै पातकी सतति कठिन मिटाय ।।६६४।।

हिंसकको वैरी जगत, कोई न करै सहाय।
मरता निवल गरीब लखि, हर कोई लेत बचाय ॥६६५॥

अपनै भाव बिगाड़तै, निहचै लागत पाप।
पर अकाज तौ ह्वो न हो, होत कलंकी आप ॥६६६॥

जितो पाप चितचाहसौं, जीव सताए होय।
आरंभ उद्यमको करत, तातै थोरो जोय ॥६६७॥

ये हिंसा के भेद हैं, चोर चुगल विभिचार।
क्रोध कपट मद लोभ फुनि, आरंभ असत उचार ॥६६८॥

चोर डरै निद्रा तजै, कर है खोट उपाय।
नृप मारै मारै धनी, परभो नरका जाय ॥६६९॥

छानै पर-चुगली करैं, उज्जल मेष बनाय।
ते तो बुगला सारिखे, पर अकाज करि खाय ॥६७०॥

लाज धर्म भय ना करै, कामी कूकर एक।
मैंन भानजी नीचकुल, इनके नाहिं विवेक ॥६७१॥

नीति अनीति लखै नहिं, लखै न आप विगार।
पर जारै आपना जरै, क्रोध अगनिकी झार ॥६७२॥

कुल व्योहारकौं तज दिया, गरवीले मनमाहिं।
अवसि परैंगे कूप ते, जे मारगमे नाहिं ॥६७३॥

तन सूधे सूधे वचन, मनमैं राखै फेर।
अगनि ढकी तौ क्या हुवा, जारत करत न वेर ॥६७४॥

बाहिर चुगि शुक उड गये, ते तौ फिरै खुस्याल।
अति लालच भीतर घसे, ते शुक उलझै जाल ॥६७५॥

आरंभ बिन जीवन नही, आरंभमाहिं पाप।
तातै अति तजि अलपसौं, कीजै विना विलाप ॥६७६॥

असत वैन नहि बोलिये, तातैं होत विगार।
वे असत्य नहि सत्य हैं, जातै ह्वै उपकार ॥६७७॥

क्रोधि लोभी कामी मदी, चार सूझते अंध।
इनकी संगति छोडिये, नहिं कीजै सनबंध ॥६७८॥

झूठ जुलम जालिम जबर, जलद जगमैं जान।
जक न धरै जगमैं अजस, जूआ जहर समान ॥६७९॥

जाकौं छीवत चतुर नर, डरै करैं हैं न्हान।
इसा मासका ग्रासतैं, क्यौं नहि करो गिलान ॥६८०॥

मदिरातैं मदमत्त ह्वै, मदतै होत अज्ञान।
ज्ञान विना सुत मातकौं, कहै भामिनी भान ॥६८१॥

गान तान लै मानकैं, हरै ज्ञान धन प्रान।
सुरापान प्लखानकौं, गनिका रचत कुध्यान ॥६८२॥

तिन खावैं चाहैं न धन, नागे कागे जान।
नाहक क्यों मारै इन्हें सब जिय आम समान ॥६८३॥

नृप डडै भडै जनम, खडैं धर्म रू ज्ञान।
कुल लाजै भाजैं हितू, विसन दुखाकी खान ॥६८४॥

वडे सीख वकवौं करैं, विसनी ले न विवेक।
जैसै वासन चीकना, बूद न लागै एक ॥६८५॥

मार लोभ पुचकारतैं, विसनी तजैं न फैल।
जैसै टट्टू अटकला, चलै न सीधी गैल ॥६८६॥

उपरले मनतै करैं, विसनी जन कुलकाज।
ब्रह्मा सुरत भूलै नज्यौं, काज करत रिखिराज ॥६८७॥

विसन हलाहलतैं अधिक, क्यौकर सेत अज्ञान।
विसन विगाडै दोय भव, जहर हरै अव प्रान ॥६८८॥

नरभव कारन मुक्त का, चाहत इन्द्र फनिंद।
ताकौं खोवत विसनमैं, सो निंदन मैं निंद ॥६८९॥

कीनै पाप पहारसे, कोटि जनममैं भूर।
अपना अनुभव वज्रसम, कर डारै चकचूर ॥६९०॥

हितकरनी धरनी सुजस, भयहरनी सुखकार।
तरनी भवदधिकी दया, बरनी षटमत सार ॥६९१॥

दया करत सौतास सम, गुरु नृप भ्रात समान।
दयारहित जै हिंसकी, हरि अहि अगनि प्रमान ॥६९२॥

पथ सनातन चालजे, कहजै हितमित वैन।
अपना इष्ट न छोडजे, सहतैं चैन अचैन ॥६९३॥

जैसो गाढो विसनमैं तैसो ब्रह्म सौं होय।
जनम जनम के अघ किये पल मैं नाखै धोय ॥६९४॥

इति विराग भावना

कवि प्रशस्ति

मधि नायक सिरपच ज्यों जैपुर मधिढूढार ।
नृप जयसिंह सुरिंद तहा पिरजाको हितकार ॥६९५॥
कीनैं बुधजन सातसै, सुगन सुभाषित हैर ।
सुनत पढत समझैं सरव, हरैं कुवुद्धिका फेर ॥६९६॥
सवत ठारासै असी, एक वरसतैं घाट ।
जेठ कृष्ण रवि अष्टमी, हुवौ सतसई पाठ ॥६९७॥
पुन्य हरत रिपु-कष्टकौं, पुन्य हरत रुज व्याधि ।
पुन्य करत ससार सुख, पुन्य निरतर साधि ॥६९८॥
भूख सहो दारिद सहो, सहो लोक अपकार ।
निंद काम तुम मति करो, यहै ग्रथको सार ॥६९९॥
ग्राम नगर गढ देशमैं, राज प्रजा के गेह ।
पुन्य धरम होवो करैं, मगल रहो अछेह ॥७००॥
ना काहूकी प्रेरना, ना काहू की आस ।
अपनी मति तीखी करन, वरन्यौ वरनविलास ॥७०१॥

इति बुधजन सतसई समाप्त

अनुक्रमणिका संदर्भ ग्रन्थ

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तिया ।
२ अनेकान्त ।
३. आदीश्वर फागु ।
४ आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका ।
५ इष्ट छत्तीसी ।
६. उत्तरी भारत की सत परपरा ।
७. कृष्ण जगावन चरित्र ।
८ गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रथ ।
९ छहढाला ।
१० जिनवाणी ।
११ जिनोपकार स्मरण स्तोत्र ।
१२ जैन साहित्य का इतिहास ।
१३ टोडरमल व्यक्तित्व एव कृतित्व
१४ तत्वार्थ बोध ।
१५ तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग-४
१६ तुलसी ।
१७ दोषबावनी ।
१८. नित्य पूजन पाठ सग्रह ।
१९ नदीश्वर जयमाला ।
२० पदावली ।
२१ पद सग्रह ।
२२ परमात्म प्रकाश ।
२३ प्रवचन निर्देशिका ।
२४ पचास्तिकाय ।
२५ प्राचीन हिन्दी जैन कवि ।
२६ प्राचीन हिन्दी नीतिकाव्य ।
२७ पुरातत्व निवधावली ।
२८ बनारसीदास ।
२९. बारह-भावना ।
३० बुधजन-विलास ।
३१ बुधजन-सतसई ।
३२. भारतवर्ष का इतिहास ।
३३ भारतीय इतिहास एक दृष्टि ।
३४. भाषाशास्त्र तथा हिन्दी की रूप-रेखा ।
३५ मध्यकालीन कवि और उनका काव्य ।
३६ मध्यपहाडी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन ।
३७ मोक्षमार्ग प्रकाशक ।
३८ योगसार-भाषा ।
३९ रामचरित मानस ।
४० वर्णी वाणी ।
४१ वर्द्धमान पुराण । सूचनिका ।
४२ विद्यापति ।
४३ विमल जिनेश्वर की स्तुति ।
४४ वदना जखडी ।
४५ सतसुधा सार ।
४६ सस्कृत साहित्य के विकास मे जैन कवियो का योगदान ।
४७ हिन्दी पद सग्रह ।
४८ हिन्दी उद्‌भव विकास और रूप ।
४९ हिन्दी भाषा ।
५०. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि ।

५१ हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास।
५२ हिन्दी भाषा की रूपरेखा।
५३ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन भाग १, २।
५४ हिन्दी ध्वनिया और उनका उच्चारण।
५५ हिन्दी नीतिकाव्य।
५६ हितैषी (पत्रिका)
५७. हिन्दी मे नीति काव्य का विकास।
५८ हिन्दी साहित्य का इतिहास तृ० सस्करण।
५९. हिन्दी साहिन्य का वृहद् इतिहास।
६०. हिन्दी साहित्य प्रथम खड।
६१ हिन्दी साहित्य।
६२ हिन्दी साहित्य का प्रभाव।

पत्र-पत्रिकाएें

१ अहिंसावाणी — वीर सेवा मदिर, दरियागज दिल्ली
२ अनेकान्त — दिल्ली
३ जिनवाणी — जयपुर
४ जैन सदेश शोधाक — दिल्ली
५. विद्या भास्कर — इलाहाबाद
६ वीर वाणी — जयपुर
७ सन्मति सदेश — दिल्ली
८ हितैषी — जयपुर
९ हिन्दुस्तानी त्रैमासिक — इलाहाबाद

अनुक्रमणिका

ग्रन्थ एवं कवि (हिन्दी)

सस्कृत	सस्कृत
१ आशाधर	अनगार धर्मामृत
२. उमास्वामी	तत्वार्थसूत्र
३. जिनसेन	महापुराण
४. पाणिनि	सिद्धात कौमुदी, अष्टाध्यायी
५. पूज्यपाद	सर्वार्थसिद्धि
६ राजमल	पचाध्यायी
७ वादीमसिंह	क्षेत्र-चूडामणि
८. वीरनन्दि	चद्र प्रभू चरित्र
९ समन्त भद्र	रत्नकरण्ड श्रावकाचार
प्राकृत	**प्राकृत**
१. कुन्दकुन्द	रयणसार
२ नेमिचद्र	द्रव्य सग्रह
अपभ्रंश	**अपभ्रंश**
१ देवसेन मुनि	सावय धम्म दोहा
२. रामसिंह मुनि	दोहा पाहुड़

अंग्रेजी	अंग्रेजी
१. जार्ज ए ग्रियर्सन	लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया
२ जे सी पाव्ज	दी मीनिग ऑफ कल्चर
३ कर्नल टॉड	राजस्थान का इतिहास
४ रॉवर्ट ए हॉल	इन्ट्रोडक्टरी लिग्विस्टिक्स
५. प्र०-केम्ब्रिज युनिवर्सिटी डॉ॰ दास एण्ड गुप्त	ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी

बुधजन का उल्लेख–विद्वानों की दृष्टि मे

१. बुधजन सतसई–प नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रथ रत्नाकर, वम्बई।

२. हिन्दी मे नीतिकाव्य का विकास पृ ५५० डॉ रामस्वरूप, दिल्ली पुस्तक सदन दिल्ली।

३. भारतीय इतिहास एक दृष्टि पृ ५९२–९३ डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

४ हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास, प्रथम सस्करण पृ. १९७, डॉ कामता प्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रकाशन।

५ अध्यात्म पदावली पृ १११ डॉ राजकुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन तृतीय सस्करण १९६५।

६ तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परपरा भाग–४ पृ २८८ डॉ नेमीचद्र शास्त्री अ भा. दि जैन विद्वत् परिषद्, सागर।